* श्रीः *

लेखकः—

गणेशदत्त शर्म्मा गौड़।

प्रकाशकः—

रिखबदास वाहिती,

प्रोप्राईटर:—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० वाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।

प्रथम वार } सन् १६२४ { मूल्य २॥) रेशमी ३)

प्रकाशक :—
रिखबदास वाहिती,
आर० डी० वाहिती एण्ड को०,
नं० ४, घोरबगान, कलकत्ता।

मुद्रक—
रिखबदास वाहिती
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, घोरबगान,
कलकत्ता।

हिन्दीमें यद्यपि अन्यान्य विषयोंकी अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, परन्तु सबसे आवश्यक आरोग्यता सम्बन्धी विषयपर लोगोंका बहुत ही कम ध्यान है। जब शरीर ही आरोग्य नहीं, मन शान्त नहीं तथा देह दिनो-दिन दुर्बल, मस्तिष्क शक्तिहीन, बलहीन होता जा रहा है और होता जायगा, उस अवस्थामें अन्य विषयोंका मनन तो अत्यन्त ही कठिन है। भारत इस समय दरिद्रताके जैसे चक्करमें पड़ा है, रोगने भी उसी तरह इसको घेर रखा है। लोग अपनी गाढ़ी कमाईका अधिकांश वैद्य डाक्टरोंकी जेबमें डाल देते हैं, तिसपर भी सुख नहीं है, तिसपर भी आरोग्यता नहीं प्राप्त होती और इतनेपर भी दीर्घायु या वह आयु, जिसे काल-मृत्यु, कह सकें, नहीं प्राप्त होती। थोड़े ही दिनोंमें लोग इहलीला संवरण कर परलोक पयान कर जाते हैं। घर घरमें इसी कारण से हाहाकार मच रहा है—विलापकी ध्वनि सुन पड़ रही है। अतः यह परमावश्यक है, कि लोगोंका उनका सबसे आवश्यक

विषय, अवश्य बता और समझा दिया जाये। दरिद्र भारतके लिये वैद्य डाक्टरोंकी जेब भरना, भूखों मरनेकी निशानी है— अपने हाथों अपने पैर कुल्हाड़ी मारना है। इसीलिये, हमने बड़े परिश्रम और खोजसे, प्रमाण, चित्र तथा नियमों सहित, यह पुस्तक लिखवाकर प्रकाशित की है, जिसमें सरल उपायों द्वारा, बिना विशेष व्यय किये, बिना अधिक झंझट उठाये, प्राकृतिक नियमों द्वारा ही, जन-साधारण वह आरोग्यता प्राप्त कर सकें और उस दीर्घ-जीवनका आनन्द उपभोगकर सकें जो वास्तविक जीवन कहलाता है। आशा है, कि हमारे प्रेमी पाठक इस पुस्तक पर भी अपनी वही कृपा दरसायेंगे, जो अन्य पुस्तकोंपर दिखाते आये हैं।

भवदीय—
रिखबदास वाहिती,
प्रकाशक।

विषय-सूची

विषय— पृष्ठ—

विषय—

पृष्ठ—

दीर्घायु

आत्म-शासन

आत्मा और इस स्थूल शरीरका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। आत्मशून्य शरीरका होना न होना समान है। अतएव शरीरको स्वस्थ और दीर्घायु बनानेके लिये सबसे पहिले आत्म-शासनकी महान् आवश्यकता है। इस जगतमें शासन कई प्रकारके हैं (१) प्रभु-शासन, (२) राज-शासन और (३) जाति-शासन, ये तीन शासन ही प्रबल शासन कहे जा सकते हैं। सर्वेश्वर जगन्नियन्ताका शासन ही सर्वाङ्गपूर्ण है। यह शासन सर्वतोपरि है—इसके अधीन यह अखिल विश्व है। हमारे राजा महाराजा सम्राट्के अधीन हैं, परन्तु वह प्रभावशाली प्रतापी सम्राट् भी उस "प्रभुशासन" के सन्मुख अपना सिर झुकाता है। प्रभु-शासन जीवित और जागरित है—उसके शासनमें ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, राव-रङ्क, और मूर्ख-विद्वानका कोई ध्यान नहीं है। वहाँ तो केवल न्याय होता है और कर्मोंके अनुसार फल दिया जाता है। संसारके बड़ेसे बड़े प्राणीकी शक्ति नहीं जो इस प्रभु-शासनका निरादर कर सके- यही उसकी असीम शक्तिका प्रमाण है।

इस शासनमें ईश्वरके दो प्रबल नियम कार्य करते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं (१) ऋत और (२) सत्य। इन दोनों नियमोंका

कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता। इन्हीं दो नियमोंके आधार-पर यह शासन इतनी सुगमता और शान्ति-पूर्वक चल रहा है कि इसके विपरीत कोई कभी जा ही नहीं सकता। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि ब्रह्मचर्यके समय प्राणीने ब्रह्मचर्यकी रक्षा न करते हुए अपना वीर्यपात करना आरम्भ कर दिया तो इस नियमोल्लंघनका दण्ड उसे जवानीमें कष्ट और अल्पायु-रूपमें अवश्य भोगना पड़ेगा—यह अटल नियम है। मान लीजिये, कि आप नियमोंको लाँघते हुए भूखसे अधिक भोजन पेटमें ठूंस गये तो उसका दण्ड आपको अजीर्ण, कब्ज, अतिसार, संग्र-हणी आदि किसी न किसी रोगके रूपमें अवश्य ही भोगना पड़ेगा। यदि आपने अधिक अपराध किये होंगे तो दण्ड भी कठोर होगा और यदि कम किये होंगे तो फल भी कम होगा—क्योंकि इस "प्रभु-शासन" में न्याय होता है। सम्भव है कि कभी कभी ईश्वरीय नियमोंको न माननेका फल आपको प्रत्यक्ष रूपमें नहीं दिखाई दे परन्तु सूक्ष्म-दृष्टिसे यदि आप देखेंगे तो आपको मालूम हो जावेगा। इसीलिये महात्माओंने इस प्रभु-शासनको सर्वोपरि शासन माना है।

इस प्रभु-शासनके पश्चात् दूसरा नम्बर राज-शासनका है। जिस प्रकार प्रभु-शासनमें मनुष्यको ईश्वरके नियमोंका पालन करना पड़ता हैं, उसी तरह राज-शासनमें राजाके बनाये नियमोंके अनुसार ही मनुष्यको कार्य करना पड़ता है। उस अखिल विश्वके स्वामीके पश्चात् यदि दूसरा नम्बर किसीका है

तो वह राजाका कहा जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने श्रीमुखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको कहा है—

"नराणांच नराधिपम्" (अ० १० श्लो० २७)

कि "मनुष्योंमें राजा उस परमात्मदेवका प्रतिनिधि है।" जिस तरह प्रभुशासनके नियमोंका पालन करना आवश्यक है, प्रायः उसी तरह राजशासनके नियमोंको भी मानना पड़ता है। इस "प्रायः" शब्दसे हमारा तात्पर्य्य यह है कि प्रजाहितकारी अच्छे नियमोंको ही मानना चाहिये न कि प्रजा-पीड़क कानूनको। परमात्माके शासनके कानून कायदे निश्चय, अव्यय, अक्षर और सनातन हैं। उनमें रद्दोबदल करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती क्योंकि वह कानून तो उस सर्वज्ञकी रचना हैं जिसने इस अखिल-ब्रह्माण्डको रचकर अपनी पूर्णता हम अल्पज्ञोंको दिखायी है। मानवी-बुद्धि अल्प होनेके कारण राजशासनके नियमोंमें सृष्टिके आरम्भसे हेर-फेर होते आ रहे हैं और प्रलय पर्य्यन्त इस प्रकार परिवर्तन होते रहनेपर भी वह पूर्णता नहीं पा सकेंगे। यहाँ इस विषयपर लिखनेका सारांश यह है, कि मनुष्य जिस प्रकार प्रभु-शासनमें बँधा हुआ है, ठीक उसी तरह राजशासनमें भी जकड़ा हुआ है। चोरी आदि अपराधोंके करनेसे राजा दण्ड देता है—इस भयसे ही मनुष्य सदाचारी बना रहता है। इस शासनका यही बड़ा भारी लाभ है। जहाँका राज-शासन शिथिल होता है, वहाँ पाप बढ़ जाता है और जहाँ शासक अपने कार्य्योंमें दत्तचित्त रहता है, वहाँ अपराधोंकी

संख्या बहुत कम हो जाती है और प्रजा चैनसे रहती है। ईश्वरका शासन सर्वव्यापी है; परन्तु गुप्त है—राज-शासन एक देशीय है; परन्तु प्रत्यक्ष है। परमात्माके शासनमें कभी कोई अन्याय नहीं होता किन्तु मनुष्यके शासनमें बहुतेरी त्रुटियोंका हो जाना सम्भव है।

इस राज-शासनके बाद तीसरा नम्बर जाति-शासनका है। जाति, परिवार और कुटुम्बके दबावसे मनुष्य भय मानता है और दुराचारमें प्रवृत्त नहीं होता। उक्त तीनों शासनोंमेंसे किसी भी शासनको ले लीजिये, सबमें यही बात दिखाई पड़ती है कि "दूसरेके भयसे अपनी रक्षा करना ही मनुष्योंने अपना कर्त्तव्य सा मान लिया है और इसी भयसे वह अपनेको दुराचारोंसे बचानेकी निरन्तर चेष्टा करता रहता है। यदि यह दूसरेका भय सिरपर सवार न रहता तो मानव-जाति न जाने किस अधोगतिको पहुंच जाती। परमात्माके डरसे पापोंमें प्रवृत्त न होना—राजशासनके डरसे किसी उपद्रवमें भाग न लेना और जातिके डरसे निन्द्य कार्योंसे दूर रहना—ये सब बाह्य भय हैं जो मनुष्योंको पापसे दूर रखते हैं। किन्तु ऐसे भयसे मनुष्य पापशून्य नहीं रह सकता—जब कभी उसे मौका मिलता है, तब आंखें बचाकर कुछ न कुछ पाप कर ही डालता है। इसलिये "आत्म-शासन" की आवश्यकता है, जिससे किसी प्रकारके अपराध होनेकी आशंका ही नहीं रहती। यद्यपि बाह्य डरसे मनुष्य पापोंसे बचता है किन्तु दूसरेके भयसे पाप न

करना एक प्रकारसे अपनी ही कमजोरी प्रकट करना है। इस तरहकी निर्बलता जबतक रहेगी तबतक मनुष्यमें सच्ची मानवताका होना बिलकुल असम्भव है। यहाँपर एक प्रश्न यह उठ सकता है कि "क्या परमात्मासे भी नहीं डरना चाहिये?" इसका उत्तर यही है कि परमात्मा कोई भयका पदार्थ नहीं है, उससे डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो न्यायाधीश है—जो जैसा करेगा, उसे वैसा ही फल देगा। वहाँ न तो रिआयत होगी और न अधिक दण्ड ही मिलेगा इसलिये परमात्मासे भय करनेकी कुछ भी जरूरत नहीं है। वेद कहता है—

"ॐ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानिवेद भुवनानि-विश्वा ॥" यजु० अ० ३२ मं० १०

(सः) वह परमात्मा (नः) हमारा (बंधुः) भाई (जनिता) पिता (सः) वह (विधाता) इच्छित कार्योंका पूर्ण करनेवाला है।

"ॐ विहल्हो नाम ते पिता मदावति नामते माता।

स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥" अथर्व ६।१६।२

हे परमात्मन्! (ते) तेरा (विहल्हः) कँपानेवाला (पिता) पिता (नाम) नाम है और (ते) तेरा (माता) माँ (मदवती) प्रसन्नता देनेवाला (नाम) नाम हैं (सः) वह (हि) ही (त्वम्) तू (असि) है (यः) जिस (त्वम्) तूने (आत्मानम्) हमारे आत्माकी (आवयः) रक्षा की है।

"स नः पिता जनिता स उत बन्धुः।" अथर्व २।१।३

"वह ईश्वर हम सबोंका रक्षक, माता, पिता, भाई, मित्र आदि है।" इन मन्त्रोंसे स्पष्ट है कि माता, पिता, भाई, मित्र, रक्षक आदिसे डरनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। परमात्माके साथ पिता, भाई और मित्रका सा व्यवहार रखना चाहिये—भयभीत होनेकी जरूरत ही क्या है? जो दुराचारी हैं, उन्हें अवश्य डरना चाहिये क्योंकि वे अपने कर्त्तव्यसे पतित हो चुके हैं। जो धीर-वीर मनुष्य होते हैं वे शासन-सुधारके समय ऋत और सत्यका ध्यान रखते हुए निर्भय होकर काम करते हैं। सदाचारका और निर्भयताका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ निर्भयता है, वहीं सदाचार है और जहाँ सदाचार है, वहीं दीर्घायु है। निर्भयता ही अमरत्व है और भय ही मृत्यु है। जो डरता है, वही मरता है। अर्थात् सदाचारी बनकर सबको निर्भय होना चाहिये किन्तु सदाचार-सम्पादनके लिये आत्म-शासनका होना सर्व-प्रथम आवश्यक है।

बाहिरी डरोंसे डरकर जो मनुष्य सदाचारी बनता है वह व्यक्ति उस डरके हट जानेसे शीघ्र ही दुराचारमें प्रवृत्त हो जाता है। नास्तिक विचारोंके होनेसे ईश्वरके अस्तित्वमें सन्देह हुआ कि "प्रभु-शासन" का भय जाता रहा। इसी प्रकार अन्यान्य भयोंके हट जानेपर मनुष्यका दुराचारोंसे बचना अत्यन्त कठिन है। इसीलिये योगशास्त्रमें कहा है कि "आत्म-शासन द्वारा अपनी शुद्धि करनी चाहिये!" अपने ही स्वीकृत नियमों द्वारा अपनी शुद्धि, पवित्रता और पूर्णताका नाम

"आत्म-शासन" है। इसमें किसी वाहिरी भयका लगाव नहीं है किन्तु प्रवल "आत्मिक इच्छा-शक्ति" द्वारा आत्मोन्नति करनेका भाव इसमें मुख्य होता है। नास्तिक व्यक्ति भी आत्म-शासन द्वारा श्रेष्ठ वन जाता है—अराजक मनुष्य भी आत्म-शासन द्वारा राजभक्त वन सकता है—जाति सम्बन्ध तोड़नेवाला भी आत्म-शासन द्वारा दुष्कार्योंसे वच सकता है; "क्योंकि इसमें अपना शासन अपने ही ऊपर होता है।" यही कारण इसकी उत्तमता और सर्वश्रेष्ठताका है। जो लोग अपनी दीर्घायु चाहते हैं, उन्हें सबसे प्रथम आत्म-शासन करना सीखना चाहिये। जो आदमी अपने आत्मापर अथवा शरीरपर ही अपना अधिकार नहीं रख सकते हमारे विचारसे तो वे मनुष्य कहलानेके अधिकारी ही नहीं हैं। आजकल हमारे देशमें "स्वराज्य" का आन्दोलन खूब ही जोरोंपर है। किन्तु, उसमें सफलता मिलना तबतक असम्भव है जबतक कि हमारे देशवन्धु आत्मशासन करना न सीख लेंगे। जो आत्मशासन नहीं कर सकते, ऐसे व्यक्ति "स्वराज्य" के लिये लड़ते झगड़ते हैं, वे लोग, हमारे विचारसे, देशको और भी सङ्कटमें देखना चाहते हैं। अस्तु,

"आत्म-शासन" मनुष्यके लिये कोई कठिन वात नहीं है, चाहिये प्रवल आत्मिक इच्छा-शक्ति! इसके विना आत्मशासन कदापि नहीं हो सकता। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि तमाखू पीना वड़ी ही वुरी आदत है। इस वातको तमाखू

पीनेवाले खूब अच्छी तरह जानते हैं—लेकिन उनसे छोड़ी नहीं जाती! अर्थात् उनमें आत्म-शासन करनेकी शक्ति नहीं है। वे शक्तिशून्य हैं—निर्बल हैं—नामर्द हैं। हमने कई मनुष्योंसे तमाखू पीना छुड़ाया है जिनमें कई तो इतने दुर्बल-हृदय निकले जो कुछ दिन छोड़कर फिर उसका सेवन करने लग गये। और कई ऐसे प्रबल विचारोंके भी निकले जिन्होंने उसे स्पर्श-तक भी नहीं किया! ऐसे लोग आत्म-शासन कर सकनेवाले कहे जा सकते हैं। जो लोग आत्मशासन करनेमें असमर्थ हैं। वे दीर्घजीवी नहीं हो सकते—उनके लिये रातदिन मृत्युपाश खुला हुआ है। अतएव प्रबल आत्मिक इच्छाशक्ति द्वारा आत्मशासन करना हरेक व्यक्तिको सीखना चाहिये—हमारे महात्मा-पुरुषों,-ऋषिमुनियों और ब्रह्मज्ञानियोंने दीर्घायु-पानेका यह मूलमन्त्र अपने अनुभव द्वारा हमें बताया है।

"आत्म-शासन" में अपने दृढ़ निश्चयकी आवश्यकता है। सदाचार और उन्नतिके नियम और अभ्युदयका मार्ग आप स्वयं निश्चित कीजिये अथवा दूसरोंसे सीखिये,- नहीं तो सद्ग्रन्थोंसे ढूँढ़ निकालिये और उन नियमोंके अनुसार चलनेका अत्यन्त दृढ़ निश्चय कर लीजिये। "आत्मशासन" की यही संक्षित व्याख्या है। दूसरोंके बनाये नियम जबरदस्तीसे अथवा भयसे अपनी इच्छाके विरुद्ध होते हुए भी पालन किये जाते हैं परन्तु इस आत्म-शासनके नियम-स्वयं बनाकर किंवा स्वयं स्वीकार करके किसी दूसरेके भयसे भयभीत न होते हुए

पूर्ण निर्भयताके साथ उत्तम रीतिसे पालन करने पड़ते हैं, इसमें यही उत्तमता है।

"आत्मैव ह्यात्मनोबंधुरात्मैव रिपुरात्मन।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमव साग्रयेत्॥ गीता अ० ६।५

आत्माको आत्मासे ही रोको किन्तु उसे अवनतिकी ओर न जाने दो; क्योंकि आत्माका आत्मा ही बन्धु और शत्रु है। मनुष्य स्वयं ही अपना भाई और स्वयं ही अपना शत्रु होता है। जो अपनी परीक्षा करके दृढ़ निश्चयसे पुरुषार्थ करता है वह उद्योगशील मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है, परन्तु वह अकर्मण्य मनुष्य जो अपनी उन्नतिके लिये कुछ भी नहीं करता और दैवके भरोसे आलसी बनकर अपना जीवन व्यतीत करता है, वह स्वयं ही अपना शत्रु है। इस संसारमें अज्ञानके कारण उतनी हानि नहीं हो रही है; जितनी कि आलस्यके कारण प्रायः प्रतिशत निन्यानवे मनुष्य शरीरमें पुरुषार्थ होने-पर भी उसका उपयोग नहीं करते। ये आलसी न तो अज्ञानी ही होते हैं और न उद्यमके लिये बिलकुल असमर्थ ही होते हैं, किन्तु सुस्त होते हैं और हाथपर हाथ रखे बैठना पसन्द करते हैं; यह एक निराशावादी दल है जो भाग्यके सामने पुरुषार्थको तुच्छ समझता है। भारतमें ऐसे सुस्त मनुष्योंकी एक बड़ी भारी संख्या है। ये भाग्यके लिखे हुए पर इतने अंध विश्वासी होते हैं कि बहुत समझानेपर भी इनके मस्तिष्कसे यह विचार नहीं निकाले जा सकते। ऐसे पुरुष

अधार्मिक और अज्ञानी कहे जा सकते हैं। मृत्यु—जिसे सब-लोग अटल और भाग्यमें लिखी हुई मानते हैं, वह भी पुरुषार्थ द्वारा दूर हटाई जा सकती है अर्थात् दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है। देखिये वेदमें लिखा है—

"पुरुष अतः उत्क्राम। मा अत्रपत्था। मृत्योः पड्वीशं अव मुञ्चमानः।"

"O man! rise up from this place! sink not downward, casting away the bonds of death that hold thee.

हे मनुष्य! उन्नत होओ गिरो मत, मृत्युके पाशोंको तोड़ डालो। और देखिये—

"प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगाद्वशम्।"

Submit not to the power of death.

अर्थात्—मृत्युके वशमें मत जाओ! यह आज्ञा अत्यन्त स्पष्ट है और यह बताती है कि यदि मनुष्य उचित रीतिसे प्रयत्न करेगा तो मृत्युको भी हटा सकेगा। जो लोग कहते हैं कि आयु घट बढ़ नहीं सकती, वे भूल करते हैं। जिसका मन बल-वान होगा, वही निश्चय पूर्वक मृत्युको जीत सकेगा। मृत्युपर विजय पाना निर्बल हृदयके वशकी बात नहीं हैं। पाठको! मनमें बल करो—अपनेको दीन हीन मत समझो। याद रखो तुम्हारे आत्मामें मृत्युको जीतनेकी महान शक्ति मौजूद है।

"उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्यवरान्निबोधत।" कठ—३—१४

खड़े हो, जागो और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। और फिर इसके बाद—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवम् त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।"

यजु० ४०।२

खूब पुरुषार्थ करते हुए ही यहाँ सौ वर्ष जीवित रहनेकी महत्वाकांक्षा मनमें रखनी चाहिये। ये भाव तेरे मनमें रहें इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। पुरुषार्थसे मनुष्यको दोष नहीं लगता। वेद कहता है—

"मा पुरा जरसो मृथाः॥" अथर्व ५।३०।१७

"(जरसः) वृद्धावस्थासे (पुरा) पहिले (मा मृथाः) मत मर।"

"नवप्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वायशत शारदाय।"

अथर्व ५।२८।१

अर्थात्—वेदमें ऐसे सैकड़ों मन्त्र हैं जिनमें सौ वर्षतक और इससे भी अधिक जीवित रहनेका उपदेश है। द्विजोंकी संध्योपासनामें—

"पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ॐ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनास्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्

यजु० ३६।२४

यह वेद मंत्र हैं जिसका अर्थ यह है कि "हम सौ वर्षतक देखें, अर्थात् हमारे नेत्रोंकी शक्ति सौ वर्षतक न बिगड़े। सौ वर्षतक जीते रहें। सौ वर्षतक सुनें अर्थात् कर्णेन्द्रिय बधिर

न होने पावे। सौ वर्ष तक बोलें अर्थात् मृत्युपर्यन्त ऐसी कोई बीमारी न होने पावे जिससे कि हमारी वाक्यशक्ति नष्ट हो जावे। सौ वर्ष पर्य्यन्त दीनतारहित रहें! और सौ वर्ष से भी अधिक आनंदके साथ रहें।" इस मन्त्रको द्विजातीय नित्य बोलते हैं किन्तु वे दीर्घायु नहीं होते। इसका कारण यह है कि वे लोग इस मंत्रके अर्थ से अनभिज्ञ हैं। तात्पर्य्य यह कि वेद मनुष्यकी आयुमर्यादा एक सौ वर्ष और इससे भी अधिककी बताता है जो बिना पुरुषार्थ के प्राप्त नहीं हो सकती। और वह अदम्य पुरुषार्थ बिना आत्मशासनके मनुष्यमें नहीं आ सकता।

प्राचीन कालमें अर्थात् आजसे लगभग पाँच हजार वर्ष पहिले जिन लोगोंने सौ वर्ष से अधिक आयु पायी थी उन कुछ महापुरुषोंके पवित्र नामोंको यहाँ लिखकर बता देना ठीक होगा।

१ भीष्मपितामहकी आयु—	१७० वर्ष
२ महर्षिव्यास	१५७ ,,
३ धृतराष्ट्र	१३५ ,,
४ वसुदेव	१५५ ,,
५ श्रीकृष्णचन्द्र	१२६ ,,

विक्रमीय संवत् के २-३ शताब्दी पूर्व जब कि ग्रीक लोगोंका भारतवासियोंके साथ परिचय हुआ था, उस समय भी हमारे देशमें १४० वर्षोंकी आयुवाले सैकड़ों वृद्ध मिलते थे। यह आजसे दो हजार वर्ष पहिलेकी बात है। इस समय

भी कई मनुष्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने सौ वर्षसे अधिक आयु पाई है—

(१) बा० मल्हारी (सावंतवाड़ी)	११५ वर्ष
(२) पं० प्रभाकरशास्त्री (बंबई)	१०८
(३) अंकलजॉनी (Doxintau koj)	१२१
(४) रामशेठ भुरकी सुनार (सातारा)	१०५
(५) महम्मदखान (कोल्हापुर)	१०३
(६) जाफरखान	१०१
(७) लालजी जमादार (आगर कानड़)	११०

इसके अतिरिक्त और भी कई मनुष्य हमारे देशमें मौजूद हैं जिनकी आयु सौ वर्षसे अधिक है। आजकल लोगोंमें एक कहावत सी चली हुई है कि—"जिसने अधिक पाप किये हों वह अधिक जीता है। यह अज्ञान है। फलित ज्योतिष ग्रंथोंमें भी आयु १०८ और १२० वर्षतक लिखी है। तथा यह आयु आत्मशासन द्वारा और अधिक भी बढ़ाई जा सकती है जैसा कि भीष्म और व्यास आदि महापुरुषोंकी १५० वर्षोंसे भी अधिक हुई। ब्राह्मण ग्रंथोंमें भी "शतायुर्वै पुरुषः।"

"मनुष्य शतायु है। यह माना है; किन्तु खेद है कि आजकल आत्मशासनमें इतनी शिथिलता आ गई है कि देशवासियोंके आयुकी औसत ३० वर्ष ही मानी जाती है!!! इतनेपर भी हम अपने देशबन्धुओंको इस विषयमें उदासीन ही देखते हैं। बात तो वास्तवमें यह है कि भारतवासियोंने आत्मशासनके

महत्वको ४-५ हजार वर्ष पहिलेसे भुला दिया है, इसीका यह परिणाम है। यदि हमारे देशवासियोंकी यही दशा पाँच हजार वर्ष और रहे तो यहाँसे मानव जातिका मानों निशान मिट जावेगा। ऐसा गणितज्ञोंका अनुमान है।

आत्मशासन करनेवाले व्यक्तिको आमरण सत्कर्म्म करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करके निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिये। ऐसा करनेवाले अपना स्वयं ही कल्याण नहीं करते बल्कि अपनी भावी सन्तानके लिये भी रास्ता साफ करते हैं। आत्म-शासनके नियमोंको पालन करनेकी परम आवश्यकता है। जो लोग नियम बनाकर फिर उसका पालन नहीं करते वे अपने हाथों अपनेको अल्पायु बनाते हैं। जो जैसा कर्म्म करता है वह वैसा ही फल पाता है, दीर्घायु चाहनेवालोंको यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिये। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको सदा अच्छे कार्य्य ही करने चाहिये जिससे वह अधोगतिसे बच-सके। खुद अच्छे-अच्छे नियम बनाकर उनका पालन करना चाहिये और भूलसे अथवा आलस्यवश यदि नियमोंका पालन न हो सके तो उसी दिन, उसी समय अपने आपको व्रतभङ्गका दण्ड देना चाहिये और अवश्यही उस दण्डको भोगना चाहिये। ऐसा करनेसे फिर कभी भी व्रतभङ्ग नहीं होगा और पूर्णरीतिसे आत्मशासन कर सकेंगे। दूसरेके डरसे डरकर जो व्यक्ति निमयोंका पालन करता है, वह डरके हट जानेसे उन्हीं नियमों-का इतना उल्लङ्घन करने लगता है कि उसकी कोई हद नहीं

रहती। हमने डरा धमकाकर कई पुरुषोंसे मादक द्रव्योंका सेवन छुड़ा दिया था; किन्तु ज्योंही उनके हृदयसे हमारे शासनका भय जाता रहा त्योंही वे विविध मादक पदार्थोंका सेवन करने लगे। इसलिये आत्मशासन द्वारा ही मनुष्य अपना पूर्णरूपसे सुधार कर सकता है। आप अपने अन्दरके दोषोंको ढूँढ़िये और उन्हें आत्मदण्ड द्वारा दूर कर दीजिये। एक कविने कहा भी है———

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।"

जहाँ हम दूसरोंके दोषोंको रात दिन देखा करते हैं, वहाँ सबसे पहले हमें अपने अन्दर घुसे हुए दोषोंको आत्मशासन द्वारा निकाल डालना चाहिये। जबतक आप स्वयं अपना सुधार करनेके लिये कटिबद्ध न हो जावेंगे तबतक आपका सच्चा सुधार कदापि नहीं हो सकता।

इस जगत्‌के लिये निम्न लिखित छः अटल नियम हैं—

(१) उदय = बीजांकुर, मूल उत्पत्ति।
(२) अस्तित्व = पौदा, वृक्ष।
(३) संवर्द्धन, = बढ़ना।
(४) परिपोष = फलना फूलना, पुष्टि।
(५) क्षीणता = कमी होना, घटना, और—
(६) नाश = नष्ट होना, बर्बाद, मिटना।

सब पदार्थोंकी यही अवस्था है। नियमानुसार बर्ताव

रखनेपर पहिली चार अवस्थाएँ दीर्घकालतक रहती हैं। इस उदय और नाशके बीचके संयमका नाम ही आयु है। इन्हें दीर्घकालतक स्थिर रखना, न रखना मनुष्यके हाथमें है। इनमेंसे भी खासकर संवर्द्धन और परिपोष, इन दोनों अवस्थाओंको यथाशक्तिदीर्घ कुछ कालतक सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। दीर्घायुष्य इन दोनोंपर ही अवलंबित है। इन दोनों अवस्थाओंको चिरस्थायी रखनेके लिये "ब्रह्मचर्य्य" की परमावश्यकता है—इस विषयपर हम आगे चलकर एक स्वतंत्र लेख लिखेंगे उसमें पाठकोंको "ब्रह्मचर्य"का महत्व अच्छी तरह समझाया जावेगा।

परमात्माके नियम ऐसे प्रबल हैं कि वे किसीकी भी पर्वाह नहीं करते—वे स्वयम्सिद्ध हैं। यदि आप नियमानुकूल व्यवहार करेंगे तो आपकी दीर्घायु हो सकेगी अन्यथा अल्पायु तो बनी बनायी है ही। स्वच्छ वायुके सेवनसे दीर्घायु और तंग मकानमें रहनेसे अल्पायु अवश्य होगी। ब्रह्मचर्य्य पालन करनेसे पुरुषार्थ और उत्साह बढ़ेगा तथा वीर्यपात करनेसे उत्साहशून्यता, निर्बलता आदि सैकड़ों विकारोंका होना स्वयम्सिद्ध है। ईश्वरीय नियमोंके तोड़नेसे उसको प्रायश्चित्त भोगना ही पड़ता है। पापी अर्थात् प्राकृतिक नियमोंके तोड़नेवालोंको अपने समाजमें, जातिमें, अथवा पड़ोसमें देखिये और फिर उनकी अधोगतिपर विचार करनेके पश्चात् स्वयं शिक्षा ग्रहण कीजिये।

"आत्म-शासन" में स्वावलम्बन और स्वाधीनताकी प्रधानता है। दूसरा भले ही आपका शुभचिन्तक ही हो, जबतक आप उसपर अवलम्बित रहेंगे तबतक आप परवश ही हैं। यह पराधीनता ही दुःखका कारण है और यह दुःख ही अल्पायु है। किसी कविने कहा भी है—

"पराधीन सुख सपने हु नाहीं।
करि विचार देखहु मन माहीं॥"

इसलिये स्वावलम्बन कीजिये। अपने पुरुषार्थ द्वारा आप आगे बढ़नेका उद्योग कीजिये। तत्पश्चात् दूसरोंको उठाइये और सूर्यकी भाँति अपने उदय द्वारा दूसरोंको लाभ पहुँचाइये। आजकल "परोपदेशे पाण्डित्यं" कहावतको चरितार्थ करनेवाले असंख्यों मनुष्य हैं किन्तु स्वयं तदनुसार आचरण करनेवालोंका इस समय अभावसा ही है। एक कवि कहते हैं—

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे।"

आत्मशासनके लिये सबसे पहिले आत्म-बलकी महान् आवश्यकता है; क्योंकि विना बलके शासनका चिरस्थायी होना असम्भव है; अतएव मनुष्यको आत्म-बल सञ्चय करनेका सतत उद्योग करना चाहिये। अपना उद्धार करनेकी प्रबल इच्छा सबसे पहिले अपने मनमें दृढ़ताके साथ धारण करनी चाहिये। "निरन्तर प्रयत्न करके मैं अपना उद्धार करूँगा।" इस प्रकारकी इच्छा और आत्म-विश्वासके द्वारा ही मनुष्य

मृत्युके साथ युद्ध करके विजयी हो सकता है। इच्छा और आत्मविश्वासके न होनेसे ही विविध विघ्न बाधक होते रहते हैं—उनके रहते हुए जो विघ्न आते हैं उनसे उलटी आत्मशक्ति बढ़ जाती है। जो लोग इच्छा-शक्तिके महत्वपर विश्वास नहीं करते; उन्हें उपनिषदोंके निम्न कथन ध्यानसे पढ़ने चाहिये,

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, नान्यत् किंचन
मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥"

ऐ० उ० १।१.

"सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति ॥" छां० उ० ६।२।३

इस जगतके आरम्भमें एक आत्मा थी, दूसरा गतिशील कुछ भी नहीं था! उस आत्माने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ, तब वह केवल अपनी इच्छाशक्तिसे ही बहुत बन गयी। उपनिषद्का यह उपदेश आत्मिक इच्छाशक्तिके असीम बलको बता रहा है। हमारी आत्मामें ऐसी महान शक्ति है जिसके द्वारा संसारमें कुछ भी असंभव नहीं है। अतएव इस इच्छाशक्तिके प्रभावका अनुभव करके देखना चाहिये। आप देखेंगे कि इस संसारमें इच्छाशक्ति कैसे कैसे विलक्षण कार्य कर रही है। आजसे ही आप अपनी इच्छाशक्ति बलवती बनाइये—किन्तु स्मरण रखिये कि संशयको स्वप्नमें भी स्थान न दिया जाये। जहाँ मनमें संशयने जगह पा ली वहाँ सफलताकी आशा त्याग देनी चाहिये। संशयरहित प्रबल आत्मिक

इच्छाशक्ति द्वारा ऐसे ऐसे असंभव काम भी होते देखे गये हैं, जिनका जनताको स्वप्नमें भी सफल होनेकी आशा नहीं थी—यह हमारा निजी अनुभव है। संशय ही शक्तिका घातक है और दृढ़ विश्वास ही बलवर्द्धक महौषधि है। जहां बल है, वहीं आत्मशासन भी है और जहाँ आत्मशासन है। वहीं अमरत्व है।

मनुष्यके सारे पुरुषार्थ उसकी इच्छाशक्तिपर ही अवलम्बित हैं, अतएव दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको संदेह-रहित प्रबल आत्मिक इच्छाशक्तिको बढ़ाना चाहिये। इच्छा-शक्ति बढ़ानेके लिये तर्क-बुद्धिकी हमेशा जरूरत है। कुछ लोग ऐसे हैं जो अज्ञानताके कारण तर्कको बुरा समझते हैं ऐसे लोग "लकीरके फकीर हैं" यदि तर्क कोई बुरी वस्तु ही होती तो तर्क-शास्त्रकी आवश्यकता ही नहीं थी। तर्क-द्वारा विचार करके यह निश्चय कर लीजिये कि हमें अमुक कार्य्य करना है—तर्क द्वारा अपने सन्देहोंको पहिले हटा दीजिये। यदि आप स्वयं तर्क द्वारा अपना निश्चय करनेमें असमर्थ हैं तो किसी बुद्धिमान पुरुषके उपदेशानुसार कार्य करनेके लिये मनमें दृढ़ निश्चय कर लीजिये। जिन्होंने इच्छाशक्ति द्वारा कार्योंमें सिद्धि प्राप्त की है, ऐसे महात्माओंका आदर्श चरित्र अपने सामने रखिये और तदनुसार आचरण कीजिये—आप भी वैसे ही महापुरुष बन जावेंगे।

उदाहरणके लिये "सूर्योदयसे पहिले उठना चाहिये या नहीं ?"

इस विषयपर विचार करना है। अब सबसे पहिले यह देखिए, कि हमारे धर्म-ग्रन्थोंकी क्या आज्ञा है? वेद कहता है—

"अग्ने विवस्वदुपसश्चित्र ॐ राधो अमर्त्य। आदाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवा ॐ उषर्बुधः।" साम०

स्मृतियोंमें लिखा है—

"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौचानुचिन्तयेत्।"

इसके अतिरिक्त प्रभुशासनका नियम भी यही है। आज-तक जितने भी दीर्घायु, महात्मा, विद्वान, बुद्धिमान, बलवान, ऋषि मुनि हो गये हैं, वे सूर्योदयके पूर्व उठकर अपने नित्य-कृत्योंमें लग जाते थे। जो लोग उषा-कालमें निद्रा त्यागकर उठते हैं—उपासना करते हैं, उनकी वृत्ति बड़ी शान्त बन जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक बातपर विचार करनेके पश्चात् उसे करनेका पक्का निश्चय कीजिये। आपने यदि अपनी उन्नतिको तकदीरके भरोसे छोड़ दिया तो आपकी अधोगति होगी, इसे निश्चय समझ लीजिये और यदि प्रयत्न किया तो निस्संदेह आप जो चाहेंगे वही कर सकेंगे। इसलिये दृढ़निष्ठाके साथ साथ आप आत्मशासन करनेका पक्का विचार कीजिये।

यहाँपर यह प्रश्न उठ सकता है कि "आत्मशासन" किस रीतिसे अथवा किस युक्तिसे किया जावे? उत्तरमें हमारा निवेदन है, कि "अपनी प्रबल आत्मिक इच्छा-शक्तिकी प्रेरणासे ही कार्य होगा, अन्य कोई युक्ति नहीं है। आजकल लोग इतनी नीच अवस्थामें पड़े हुए हैं, इसका कारण मूर्खता नहीं है,

बल्कि इच्छाशक्तिकी निर्बलता है, जिसके कारण लोग आलसी और अकर्मण्य बने हुए हैं। इस बातको कौन नहीं जानता कि ईश्वरोपासनासे मनको शान्ति और आनन्द मिलता है परन्तु ऐसे कितने लोग हैं जो नियमसे उपासना करते हैं? इसका उत्तर शून्य ही कहा जा सकता है। सारांश, यह कि आप अपनी इच्छाशक्तिको एकत्र कीजिये! उसे फालतू और व्यर्थके पचीसों कार्य्योंमें विभक्त करके उसका अपव्यय न कीजिये। यही दीर्घायु होनेका सरल और सुगम मार्ग है। अभ्यास और वैराग्य ही इस उद्देश्यकी सफलताके मूल मन्त्र हैं अभ्यासका अर्थ दृढ़तापूर्वक सतत उद्योग करना; तथा वैराग्यका अर्थ अपने उद्देश्यके अतिरिक्त अन्य कार्य्योंकी ओर न जाना। यही अभ्युदयका एकमात्र उत्तम मार्ग है—

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" योगदर्शन १। १२

अर्थात्—अभ्यास और वैराग्यसे मनोवृत्तियोंका निरोध होता है। यह महामुनि पातञ्जलिका उपदेश है—गीतामें भी श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको यही उपदेश किया है। अभ्यास करनेसे कार्य्यकी सिद्धि होती है। एक बारके अभ्यास द्वारा सफलता न मिले तो पुनः पुनः प्रयत्न करनेसे अवश्य सफलता मिलती है। हम लोगोंमें यह बड़ा भारी दोष है कि एक बारके प्रयत्नपर यदि सफलता न मिली तो फिर उसे सर्वथा छोड़कर बैठ जाते हैं—ऐसा नहीं करना चाहिये। बारम्बार प्रयत्न करनेका अभ्यास डालना चाहिये—फिर आप देखेंगे

आप पूर्ण उन्नतिपर कितनी शीघ्रतासे पहुँचते हैं। "वैराग्य शब्दका अर्थ आजकलके धूर्त्त वैरागी नामधारीसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता है और न नववस्त्र पहिनने, वाल वढ़ाने; मूंड मुड़ाने, लङ्गोटी कसने, राख चढ़ाने और गाँजे चरसका दम लगानेसे ही हैं। वास्तवमें वैराग्यका अर्थ है, अन्य वातोंकी ओर ध्यान न देना—विषयोंसे दूर रहना, जो कार्य करना है, उसीमें संलग्न रहना और उसके अतिरिक्त अन्य कार्योंसे उदासीन रहना। उदाहरणार्थ मान लीजिये, कि हमें वेदका स्वाध्याय करना है। फिर उसीमें प्रीति रखकर, इससे भिन्न जो अन्य अध्ययन हैं, उनके लिये उदासीनता रखना इसीका नाम वैराग्य है। विचार और अनुभव द्वारा पता लग सकता है कि अभ्यास और वैराग्य द्वारा सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं और इच्छाशक्ति वलवती हो जाती है।

समय और परिस्थितिके गुलाम वनकर अपनी जीवन नौकाको इस संसार महोदधिमें चलाना अपनी निर्वलताका सूचक है। पुरुषार्थी मनुष्य निर्भय होते हैं और उनमें समय तथा परिस्थितिको अपने अनूकुल करनेकी शक्ति होती है। पुरुषार्थी मनुष्यके सामने जो विघ्न आते हैं वे उसका कुछ भी विगाड़ नहीं सकते; प्रत्युत उसकी शक्तिको वढ़ानेमें सहायक होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मणके सप्तम पञ्चिकामें पुरुषार्थपर वहुत कुछ लिखा हुआ है। मनुष्य अपनी उन्नति विना पुरुषार्थके कदापि नहीं कर सकता, यह एक सनातन सिद्धान्त है। महाराज

हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितको पूर्व समयमें इन्द्रने उपदेश किया कि—

"नानाश्रांताय श्रीरस्तीति रोहित शश्रुम। पापो नृषद्वरोजनः। इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति ॥१॥" (महीदासकृत ऐतरेय ब्रा०)

"हे राजपुत्र रोहित! (अश्रांताय) जो परिश्रम द्वारा नहीं थकता, ऐसे सुस्त मनुष्यके लिये (श्रीः) धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य, बल, प्रभुता आदि (न अस्ति) प्राप्त नहीं होता। (इति शुश्रुम) ऐसा हम सुनते आये हैं (नृषद्वर जनः) जो मनुष्य आलसी होता है, वही (पापः) पापी होता है (इत) निश्चयसे (इन्द्रः) प्रभु (चरतः सखा) उत्साही मनुष्यका मित्र है। इसलिये (अतएव) पुरुषार्थ करो।" जो सुस्त मनुष्य सोता रहता है, उसे आप पापी समझिये। अकर्मण्यता, सुस्ती, निरुद्योगता, ढालापन, आलस्य, निकम्मापन, और आरामतलबी आदि ही पाप हैं। जो निकम्मा रहता है वही पापी होता है। पुरुषार्थ करना ही पुण्य है। जो महान् प्रयत्न करते हैं वे ही पुण्यात्मा और धर्मात्मा मनुष्य हैं।

"इन्द्र इच्चरतः सखा।"

"God helps those who help themselves."

ईश्वर प्रयत्नशील पुरुषोंकी ही सहायता करता है और अकर्मण्योंको शाप देता है; अतएव प्रत्येक मनुष्यको पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। पुरुषार्थ करनेवालेकी आत्मामें आत्म-विश्वास होता है और उसमें आत्मशासन करनेकी महान्

शक्ति भी होती है। मैं आत्मोन्नति अवश्य करूंगा, ऐसा विश्वास प्रयत्नशील मनुष्यके अन्तःकरणमें सदा रहता है। पुरुषार्थी कभी हताश और निरुत्साही नहीं होता—सदैव अपने प्रयत्नकी धुनमें मस्त रहता है और अन्तमें फलको प्राप्त कर लेता है—उसे अपने प्रयत्नका मधुर फल मिल जाता है।

"आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेतेनिपद्यमानस्य चराति चरतो भगः
चरैवेति चरैवेति॥"

(आसीनस्य) जो बैठा रहता है उसका (भगः) ऐश्वर्य्य (आस्ते) बैठा रहता है। (तिष्ठतः) जो खड़ा रहता है उसका ऐश्वर्य्य भी ऊपर खड़ा रहता है। (निपद्यमानस्य) जो सोता रहता है उसका ऐश्वर्य भी (शेते) सो जाता है। और (चरतः भगः) पुरुषार्थ करनेवालेका ऐश्वर्य्य (चरति) उसके साथ साथ चलता है। इसलिये (चरएव) पुरुषार्थ करो, अवश्यमेव पुरुषार्थ करो।" जो मनुष्य पुरुषार्थ करते हैं उन्हें ही ऐश्वर्य, धन, प्रभुत्व, और दीर्घायु प्राप्त होती है—आलसी मनुष्यकी आयु रात दिन क्षीण होती रहती है। कविने कहा भी है कि—

"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान्रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वानावसीदति।" "भर्तृहरि"

आलस्य मनुष्योंके शरीरमें बड़ा भारी शत्रु विराजमान है। आलसी मनुष्य ऐश्वर्य्योंका अधिकारी ही नहीं है। सोनेवालेका

धन भी सोता है। भाग्य आकर दे जावेगा, ऐसा कभी न तो हुआ है और न होगा। क्योंकि भाग्यके भरोसे बैठनेवालोंका धन और ऐश्वर्य भी सोता रहता है अतएव वह उनके पास पहुँच ही नहीं सकता।

"कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥
चरैवेति चरैवेति॥"

(शयानः) सोना ही कलियुग (भवति) है। (संजिहानः) आलस्य त्याग देना ही द्वापर है। (उत्तिष्ठन्) उठना त्रेतायुग और (चरन्) पुरुषार्थ करना ही सतयुग (संपद्यते) बन जाता है। इसलिये (चरएव) पुरुषार्थ करो, दृढ़ निश्चयसे पुरुषार्थ करो। जो लोग "समय" और परिस्थिति" को व्यर्थ दोष दिया करते हैं, उन्हें यह उक्त उपदेश ध्यानमें रखना चाहिये। आप चाहें जिस युगका आनन्द ले सकते हैं, यह आपके हाथकी बात है—दूसरोंको दोष देना अपनी ही भूल है। लोग कहा करते हैं कि यह कलियुग है, इसमें अन्य युगोंके समान आयु नहीं हो सकती! ऐसा कहनी ही कलियुग है। यह अकर्मण्य और अन्ध विश्वासियोंका कथन है। आलस्यमें पड़े रहकर सड़नेवालेके लिये तो सतयुग भी कलियुग है और जो कर्मवीर हैं उन्हें घोर कलियुग भी पवित्र सतयुगके समान है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि अपने अन्तःकरणको पुरुषार्थके उत्तम साँचेमें ढाल रखे

और कलियुगको अपने पुरुषार्थ द्वारा सतयुग बनाकर, सतयुगके अनुकूल अपना दीर्घायु बनावे।

"आत्मा" शरीर धारण करके कर्म करना है। उसका स्वभाव इस शब्दसे ही ज्ञात होता है। "अत् सातत्यगमने" इस धातुसे यह शब्द बना है। सततगमन, सततकर्म, सतत-पुरुषार्थ करना इस "आत्मा" शब्दका अर्थ है। यह आत्मा सततकर्म करनेवाला और शरीर उसके पुरुषार्थका साधन है। 'आत्मा' का दूसरा नाम "क्रतु" है। इसका अर्थ "कर्म" है। आत्माका स्वाभाविक धर्म ही कर्म करना है। "इन्द्र" भी इस जीवात्माका नाम है—क्योंकि यह कर्त्तव्यपरायण इन्द्रियोंका अधिपति है। जीवात्माको "शतक्रतु" भी कहते हैं क्योंकि सौवर्षतक इस शरीरमें रहकर कार्य करना इसका कर्त्तव्य है। जिस प्रकार आत्मा अर्थ सूचक शब्दोंका अर्थ पुरुषार्थ करना है, उसी तरह "मनुष्य" शब्दके अर्थ सूचक शब्दोंका भी यही अर्थ है—देखिये—

मनुष्यः—विचारशील, मनन करनेवाला।

नरः—नेता, अगुआ, लीडर (Leader)

धनः—स्वामी बनकर उद्योग करनेवाला।

विशः—जोखिमके तथा कठिन कार्योंमें प्रयत्न करनेवाला।

कृष्टयः
चर्षणयः } नित्य प्रयत्न करनेवाला। सतत उद्योगी।

व्राताः—समूह बनाकर रहनेवाला; ऐक्य संपादन करनेवाला।

तुर्वशः—शीघ्रतापूर्वक सबको वशमें रखनेवाला।

आयुः—दीर्घायु, पुरुषार्थद्वारा आयु वृद्धि करनेवाला।

पूरवः—पूर्णता करनेवाला।

जगतः—गतिशील, हलचल करनेवाला।

पञ्चजनाः—पाँच तरहके लोगोंका संघ बनाकर रहनेवाले।

विवसन्तः—विशेष प्रकारसे रहने-सहनेका प्रयत्न करनेवाला।

पृतनाः—योद्धा, पुरुषार्थी; युद्ध करनेवाला।

ये मनुष्य वाचक वैदिक शब्द स्पष्ट बता रहे हैं कि मनुष्यका धर्म पुरुषार्थ करना ही है न कि आलसी बनकर भाग्यके भरोसे बैठे रहना? अतएव यदि आप मनुष्य हैं तो आलस्य त्यागकर पुरुषार्थ द्वारा मृत्युको धक्का मारकर दीर्घायु प्राप्त कीजिये! आप पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना आपका मुख्य धर्म है।

आत्मविश्वास एक बड़ी विलक्षण शक्ति है। जो आत्म-विश्वासी नहीं हैं, वे आत्मघातकी हैं। आत्मघातकी लोग कभी भी दीर्घायु नहीं हो सकते।

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः॥"

(यजुर्वेद ४०। ३)

आत्मघाती लोग अवनति पाते हैं, यह इस मन्त्रका भावार्थ है। अपने आत्मबलपर जिनका विश्वास नहीं है, वे लोग कदापि दीर्घायु नहीं हो सकते। जिस समय मनुष्यके

हृदयमें अपनी शक्तिके विषयमें सन्देह होता है, उसी समयसे उसकी शक्ति नष्ट होने लगती है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा शक्ति बढ़ती है तथा संशय द्वारा निर्बलता बढ़ती है। आत्मविश्वासी सदा आनन्दित रहते हैं। आपत्तिमें उनका धैर्य्य बढ़ जाता है। दुःखके समय भी उन्हें सुखका अनुभव होता है। क्लेशोंसे भी आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ दूसरे लोग हताश हो जाते हैं वहाँ आत्मविश्वासीके मुख-मण्डलपर उत्साह और तेज चमकने लगता है। जो विपत्ति दूसरोंके लिये अवनतिकारक होती हैं, वे ही आत्मविश्वासी मनुष्योंको आगे बढ़ानेमें सहायक होती हैं। जिन लोगोंमें आत्मविश्वास नहीं है, वे छोटी-मोटी आपत्ति-विपत्तियोंको देखकर भयभीत हो जाते हैं और इस प्रकार अल्पायुमें ही इस लोकसे विदा हो जाते हैं। तात्पर्य्य यह कि आप ही अपनी अधोगतिके कारण हैं—यदि चाहें तो आप कुछ मासके अभ्यास-द्वारा ही अपनी इस दशाको सुधार सकते हैं।

नश्वः श्वमुपासीत। कोह्मिनुष्यस्यश्वोवेद।

शतपथ ब्रा० २।१।३।६

"कल करूँगा, ऐसा न कहिये, कौन जानता है कि कल क्या होगा?" इसलिये पवित्र कार्योंमें आलस्य करना और उन्हें कलपर छोड़ना पाप है। किसी कविने कहा है—

"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पलमें परलय होयगी, बहुरि करेगो कब्ब॥"

जो अच्छा कार्य हो, उसे शीघ्र ही आरम्भ कर देना चाहिये क्योंकि—

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"

सत्कार्योंमें अनेक विघ्न बाधक हो जाते हैं। आत्मशासन द्वारा अपनी उन्नति करनेवाला उद्यमी और संयमी पुरुष निरंतर उन्नतिकी दिशामें ही बढ़ता रहता है। आप अनुभव करके देखें तो आपको मालूम हो जायगा कि सारी सिद्धियाँ उसकी तरफ ऐसे दौड़ती हैं—

जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं, यद्यपि ताहि कामना नाहीं।
इमि सुख सम्पति बिनहि बुलाये, धर्मशील पहँ जाहिं पराये॥

उसके पास किसी बातका टोटा नहीं रहता। उसके चेहरेसे प्रसन्नता और प्रफुल्लता टपकती है—चिड़चिड़ापन उसके पासतक नहीं फटकने पाता। सुस्ती और आलस्य उससे कोसों दूर रहते हैं। वह अपनी शक्तियोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित रखता है; मनका संयम और इन्द्रियोंका दमन करता है। नियमित व्यायामसे अपने शरीरको स्वस्थ रखता है। उसकी रहन-सहन, कामकाज, विश्राम इत्यादि सब नियमपूर्वक और व्यवस्थित होते हैं। नित नूतन ज्ञानका सम्पादन करके उसे अपने जीवनमें ढालता रहता है। वह सब कार्य निश्चित समयमें ही करता है—किसी प्रकारकी गड़बड़ी नहीं होने देता। काम करनेके पहिले ही उसके करनेका मुहूर्त्त निश्चय कर लेता है। अभ्यास और वैराग्यके समय उसका मन संदेहशून्य—

निश्चय—अटल होता है। इसलिये वह निडर होकर कार्य करता है और अपने मंजिले मकसूदपर पहुँच जाता है। लोग समझते हैं कि उसमें कुछ अलौकिक शक्ति है, किन्तु यह केवल भ्रम है। जैसी शक्तियाँ अन्य मनुष्योंमें होती हैं वैसी उसमें भी हैं—भेद केवल इतना ही है कि उसने अपनी शक्तिका सदुपयोग करके लोगोंको आश्चर्य-सागरमें डाल दिया है और दूसरे आलसी बन कर बैठे हुए हैं। जिन्हें लोग आज देवता और अवतार नामसे पुकारते हैं और जिनके कार्योंको देख सुन-कर दाँतों तले अंगुली दबाते हैं—उन लोगोंमें यही आत्मिक इच्छाशक्ति और आत्म-शासन करनेकी प्रबल शक्ति न थी। अनुभव द्वारा हमारे इस कथनपर विश्वास लाइये। निर्बल आत्माओंको कोई अधिकार नहीं है कि वे बिना सोचे समझे दुनियाको धोका देनेके लिये हमारे इस लेखको एकदम झूठा कह दें; क्योंकि वे दुर्बलात्मा आलसी हैं, सुस्त हैं और पृथ्वीपर भाररूप हैं।

संक्षिप्त रूपसे हमने आपकी सेवामें यह "आत्म शासन" का महत्व वर्णन किया है। इस जगतमें जो पुरुष अथवा स्त्री विशिष्टता पा चुकी हैं उन्होंने इन नियमोंका बड़ी दृढतासे पालन किया है। हमारा यह समझना भूल है कि उनमें कोई खास दैवी शक्ति थी और वह हममें नहीं है। यदि आप ध्यानपूर्वक देखें तो उतनी ही शक्ति आपमें होगी जितनी कि उनमें थी या है। अंतर सिर्फ इतना ही है कि उन्होंने पुरुषार्थ और प्रयत्नसे आत्म

शासनकी रीतिके अनुसार उद्योग करके अपना अभ्युदय किया और आप जहाँके तहाँ ही खड़े हैं! इस बातको आप अच्छी तरह अपने हृत्पटपर लिख लीजिये कि–"अपना भविष्य अच्छा या बुरा बनाना आपहीके अधीन है।" अतएव आप आजसे ही–

"बीती ताहि बिसार दे, आगेकी सुधि लेहु।"

पहिले हुआ सो हुआ, उसका पश्चात्ताप करनेसे कुछ भी लाभ नहीं है; किन्तु अब भविष्यमें अपनी उन्नतिके लिये आजसे ही उचित और आयुवर्द्धक नियमोंका पालन करनेका—पवित्र संकल्प कर लीजिये। ऐसा करनेके आप निस्सन्देह दीर्घायु होंगे इसपर आप निश्चयपूर्वक विश्वास रखिये।
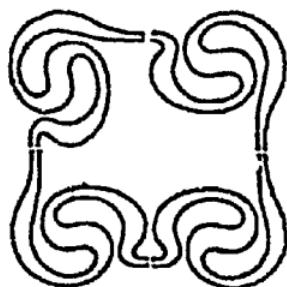
ब्रह्मचर्य्य

ॐ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नतः
इन्द्रोहब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व १ रा भरत् ॥ १६ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥
आचार्यो ब्रह्मचर्य्येण ब्रह्मचारिणमिच्छति १७ ॥
अथर्व ११ । ५ ।

अर्थ—"ब्रह्मचर्य्यरूपी तप द्वारा सब देवताओंने मृत्युको दूर किया। ब्रह्मचर्य्य द्वारा ही इन्द्र देवताओंको तेज देता है। ब्रह्मचर्यरूपी तपके साधनेसे राजा राष्ट्रका पालन करता है।" ६० वेदका उक्त मंत्र हमें यह स्पष्ट कह रहा है कि यदि मृत्युपर विजय प्राप्त करना है तो प्रथम ब्रह्मचर्य्यरूपी महान् तपका अनुष्ठान करो। अथर्व वेदके ग्यारहवें काण्डमेंके पाँचवें सूक्तमें २६ मंत्र हैं, वे सब ब्रह्मचर्य्य विषयक हैं—वह सूक्त ही ब्रह्मचर्य-सूक्त है। यहाँ हमारे पाठकोंको देवता शब्द अवश्य ही संदेहमें डालेगा। क्योंकि आजकल मनुष्योंमें आत्म विश्वासके न रहनेसे वे देवताको कोई अद्भुत वस्तु समझते हैं और मनुष्यसे अलग ही कोई योनिविशेष मानते हैं। उनका ऐसा निश्चय विश्वास है कि देवता किसी लोकविशेषमें रहते हैं और मनुष्य देवता नहीं बन सकता इत्यादि। ये सब बातें आत्मविश्वासहीन—दुर्बलहृदय मनुष्योंकी हैं। इस विषयपर

विस्तारपूर्वक इस पुस्तकमें लिखनेका हमें अधिकार नहीं है इस लिये हम संक्षिप्त रूपमें ही यहाँ इस विषयपर प्रकाश डालेंगे।

पाठकोंको निश्चय कर लेना चाहिये कि देवता कोई योनि-विशेष नहीं हैं—वे इस मानव-लोकमें भी हैं—मनुष्य भी देवता—सुर—अमर हैं। यह हमारी ही कल्पना नहीं है बल्कि वृहदारण्यकमें भी लिखा है कि—

ये कर्मणा देवत्वमभिसंपद्यन्ते।.

जो कर्म अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा देवत्वको प्राप्त होते हैं। अर्थात् पुरुषार्थसे सफलता पाकर मनुष्य भी देव हो सकता है और देखिये अथर्ववेदमें कहा है—

संसिचो नामते देवा ये संभरान्त्समभरम्।

सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ ११।८।१३

अर्थात्—"जो सब साधनोंको इकट्ठा करते हैं उन्हें संसिच देव कहते हैं। ये देव मनुष्यमें प्रविष्ट हुए हैं।" तात्पर्य्य यह कि मनुष्यका शरीर देवताओंका निवासस्थान माना गया है। फिर भी मनुष्य अपनेको क्षुद्र, अल्प, हीन, अयोग्य, तुच्छ समझता है। यह उसकी आत्म-निर्बलताका प्रमाण है। प्रत्येक मनुष्य देवता बन सकता है बशर्त्ते कि वह दैवत्व प्राप्त करनेका उचित पुरुषार्थ करे। अस्तु,

मानव-संसारका ही नहीं बल्कि इस जगत्का आधार एकमात्र ब्रह्मचर्य ही है। बिना ब्रह्मचर्य्यके इसकी स्थिति ही नहीं हो सकती। इस बातकी सत्यताका प्रमाण आपको अनुभव

द्वारा ही मिल सकता है। जब आपकी दृष्टि ब्रह्मचर्य्यमय बन जावेगी तब आकाश और पृथ्वीके मध्यमें आपको सर्वव्यापक ब्रह्मचर्य ही दिखाई पड़ेगा। यह ब्रह्मचर्य शब्द "ब्रह्म" और "चर्य" इन दो शब्दोंसे बना हुआ है। अब यहाँ इनका अर्थ भी देखिये—

ब्रह्म—परब्रह्म, वेदमंत्र, वेदसूक्त, पवित्रमंत्र, वेद, ओंकार, ब्राह्मण, ब्रह्मशक्ति, ज्ञानशक्ति, ज्ञान, तप, धर्माचरण, पवित्रता, मुक्ति, स्वतंत्रता, धर्मज्ञान, अन्न, आत्मा, सत्य, धन, जल, ईश्वर, भक्त उपासक, सूर्य, शक्ति, बुद्धि, मननशक्ति, महत्व बड़प्पन, अध्यात्मविद्या, ब्राह्मण ग्रंथ, भोजन, सम्पत्ति, अर्थात् The divine substance as well as cause of the universe.

चर्य—चलना, प्रयत्न करना, उत्साह बढ़ाना, पुरुषार्थ करना आचरण करना, जीवनके लिये यत्नवान होना, जाना, आन्दोलन करना, आचरण करना इत्यादि।

ब्रह्मचर्य—ज्ञान-वृद्धिके लिये यत्न करना, वेद प्रचारके लिये कार्य करना, पवित्रतापूर्वक उद्योग करना, सत्य-निष्ठाके लिये व्यवहार करना, बुद्धिके विकासका यत्न करना, धन, अन्नादिकी वृद्धि करना, तप, ईश्वर भक्ति, ब्रह्मशक्तिको धारण करना, पुरुषार्थ करना और दीर्घायु प्राप्त करना।

इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों अर्थ हैं—मननकी आवश्यकता है। आर्य-ग्रंथोंमें तो ब्रह्मचर्यकी महिमा बहुत

ही विस्तारपूर्वक और उत्तम रीतिसे बतायी गयी है। यदि उसको यहाँ लिखने बैठें तो हजारों पृष्ठकी एक इसी विषयकी पुस्तक बन जाये। क्योंकि ब्रह्मचर्य इस जगतका आधार-स्तम्भ है और चारों आश्रमोंमें प्रथम है। जिस प्रकार वर्णोंमें ब्राह्मण, युगोंमें सतयुग, और देवताओंमें अग्नि प्रथम है, उसी भाँति चारों आश्रमोंमें ब्रह्मचर्य ही प्रधान है। बिना ब्रह्मचर्याश्रमके गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास निरानन्दमय—दुःखमय और बिना नींवके भवन-निर्माणकी भाँति हैं। जिसने ब्रह्मचर्यको पूर्ण रीतिसे पालन किया, उसने अपनी मृत्युको अपने वशमें कर लिया, समझिये। यदि यह झूठ है तो राजर्षि भीष्मपितामहके चरित्रको ध्यानसे पढ़ जाइये और हमें उत्तर दीजिये कि "वे इच्छामरणी" किस कारण हुए थे ? वे १७० वर्षके बुड्ढे होकर भी अर्ज्जुन जैसे जगद्विख्यात गाण्डीवधारी योद्धाको महाभारतके युद्धमें किस शक्ति द्वारा नीचा दिखाते थे। महीनोंतक हजारों बाणोंसे विद्ध होकर भी उनपर पड़े हुए उत्तरायण सूर्य्यमें प्राणोंको त्यागनेकी इच्छासे जीवित रहे थे; वह शक्ति कहाँसे आयी थी? हमलोगोंके शरीरमें तिलके बराबर भी यदि एक काँटा चुभ जाये तो उसकी पीड़ासे छटपटाने लगते हैं किन्तु वह वृद्ध भीष्माचार्य्य तीखे, पैने तथा शरीरमें प्रविष्ट हजारों बाणोंपर आनन्दपूर्वक लेटे हुए थे—मुखपर दुःखका चिह्नतक नहीं दीख पड़ता था। यद्यपि सर्पोंकी भाँति सहस्रों निशित बाण उस बूढ़ेके रक्तको चूस रहे थे तथापि वह महापुरुष उस बाण

–शय्यापर पड़ा हुआ, वहाँपर आये हुए सेकड़ों ऋषि-मुनियोंको अपने अन्त समयतक नित्य धर्मोपदेश करता रहा था—यह कौनसी शक्ति थी ? यह "आमरण" ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेका ही वरदान था—यह ब्रह्मचर्यका ही प्रताप था। जहाँ भीष्मजीने दीर्घायु पानेके कई उपाय बताये हैं, वहाँ उन्होंने वीर्य रक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्यके लिये बारम्बार उपदेश किया है।

"ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात् ।"

महाभारत अनु० अ० १०४ श्लो० ३०

मनुष्यकी "आयु" कितनी मानी जावे, इस विषयपर पहिले थोड़ा सा विचार किये विना आगे बढ़नेमें रुकावटें होंगी; अतएव यहाँ इसपर अपनी बुद्धि लड़ाना आवश्यक है। वेद ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो इस भूलोकके समस्त ग्रन्थोंमें बहुत प्राचीन माना गया है, इसलिये वेद क्या कहता है, यह देखिये :—

"जिजीविषेच्छतं समाः ।" यजु० ४० । २

"भूयश्च शरदः शतात् ।" यजु० ३६ । २४

"जीवेम शरदः शतम् ।" ऋ० ७ । ६६ । १६

"भूयसीः शरदः शतात् ।" अथर्व १९ । ६७

"शतंजीव शरदोवर्द्धमानः ।" ऋ० १० । १६ । ४

"शतंहिमा सर्ववीरामदेम ।" अथर्व १२ । २ । २८

"शतं च जीव शरदः पुरूची ।" अथर्व २ । १३ । ३

"शतंजीवेम शरदः सर्ववीराः ।" अथर्व ३ । १२ । ६

"शतंजीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।"

ऋ० १० । १८

"शतशारदायायुष्मान जरदष्टिर्यथाऽसत।" अथर्व ८।५। २१

"इमं बिभर्मि वरण मायुष्मान छतशारदः।" अथर्व १०।३। १२

"कृण्वन्तुविश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्।" अथर्व २। १३।४

"पतिर्जीवति शरदः शतम्।" अथर्व १४। २। २

"दीर्घायुत्वाय शत शारदाय।" अथर्व १८। ४। ५३

"शतंवर्षाणि जीवतु।" साममन्त्र ब्राह्मण १। २। २

"शतं शरदआयुषोजीवस्व।" कौशतकी ब्राह्मण उप० २।११

"शतंच जीव शरदः सुवर्चाः।" सामब्राह्मण १। १। ६

"शतंजीव शरदो लोके अस्मिन्।" आश्व० गृ० सू० १।१५।१

इन मन्त्रोंसे यह सिद्ध हो चुका कि साधारण आयुका प्रमाण वेदोंमें सौ वर्ष माना है और परमायुका प्रमाण दो सौ वर्षोंसे कम अर्थात् १९९ वर्षतक वेदने माना है। अर्थात् सौ वर्षसे पूर्व मृत्यु होना अकाल मृत्यु है तभी तो वात्स्यायन कामसूत्रमें—

"आषोड्शात् सप्तति वर्षपर्यन्तं यौवनम्।"

सोलह वर्षकी आयुसे सत्तर वर्षतक यौवनावस्था है। जवानीमें मरना अर्थात् सत्तर वर्षमें मरना कनिष्ठ आयु मानी जानी चाहिये। अब आप स्वयं विचार लीजिये कि मनुष्यकी आयु कितनी मानी जानी चाहिये। वेद ७० वर्षकी आयुको कनिष्ठ १०० वर्षकी आयुको मध्यम और सौसे ऊपर अर्थात् १५०

के लगभगकी आयुको उत्तम बताता है। हम फलित ज्योतिषकी गणनाके अनुसार १२० वर्ष आयुकी औसत पीछे लिख आये हैं। सारांश यह, कि कमसे कम मनुष्यको १०० वर्षकी आयु अवश्य प्राप्त करनी चाहिये। पूर्व कालमें उन-क्षत्रियोंको छोड़कर जो युद्धमें अपना शरीर त्यागते थे—प्रायः सभी सौ वर्ष और इससे भी अधिक आयु पाते थे। किन्तु हाय, खेद है कि आज भारतवासियों कि आयु गणना-औसतसे ३० वर्षसे अधिक नहीं आती !! इसका कारण क्या है? देश वही है, प्रकृति भी वही है, सूर्य भी वही है, वायु, जल, भूमि आदि सब कुछ वही है—लोग भी वही हैं फिर क्या कारण है कि आयु छोटी होती जाती है? इसका उत्तर एकमात्र यही है कि दीर्घायुके साधनको अर्थात् ब्रह्मचर्यको हमलोगोंने भुला दिया। आज देशमें ब्रह्मचारियोंका अभाव है। वैसे तो ब्रह्मचारी नामधारी—ब्रह्मचर्यके महत्वको लोगोंकी दृष्टिमें गिराने वाले—सैकड़ों ठग और धूर्त्त मनुष्य लोगोंको धोका देते फिर रहे हैं। मेरे देखनेमें ऐसे कई ब्रह्मचारी आये हैं जो अपनी स्त्रीके मर जानेपर जटा बढ़ाकर या मुंड मुँड़ाकर अपनेको जनतामें ब्रह्मचारी बतलाते हुए व्यभिचारमें रातदिन लगे हैं—ऐसे ब्रह्मचारियोंके लिये कोटि कोटि धिक्कार है। इन ब्रह्मचारियोंसे देशके कल्याणकी आशा करना औदुम्बरपुष्पके समान है। अब देशको धूर्त्त और पाखण्डी ब्रह्मचारी नामधारी मनुष्योंकी आवश्यका नहीं है बल्कि सच्चे अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत

तपस्वियोंकी आवश्यकता है। यह आयुके प्रथम भागमें करने योग्य अत्यंत ही पवित्र और यथेच्छ फलका देनेवाला सर्वश्रेष्ठ तप है। दीर्घायुका यह मूल मन्त्र है। विना इसके दीर्घायुके सारे प्रयत्न निष्फल हैं। केवल ब्रह्मचर्यद्वारा ही मनुष्य अपनी मृत्युपर विजय प्राप्त कर सकता है। यमके अस्त्रशस्त्रोंके प्रहार झेलनेके लिये यह ब्रह्मचर्यरूपी विशाल और दृढ़ ढाल जिस व्यक्तिके पास है, वही अमर है, देव है और महात्मा है। ऐसे पुरुषार्थी मनुष्य इस भूतलपर अत्यन्त सम्माननीय और पूज्य हैं।

अब यहाँ यह देखना है कि मनुष्यकी यदि एक सौ वर्षकी आयु भी मान ली जावे तो "ब्रह्मचर्य कितने वर्ष रखा जावे? इसका बड़ा ही सरल उत्तर महर्षि मनु देते हैं—

चतुर्थमायुषो भाग मुषित्वाद्यं गुरौद्विजः।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्॥ अ० ४ श्लो० १

अर्थात्—आयुका चतुर्थांश "ब्रह्मचर्य व्रतके लिये और दूसरा भाग इसके पश्चात् गृहस्थाश्रमके लिये मनुष्य सुरक्षित रखे। ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम और आयुके भी पच्चीस पच्चीस वर्षके ४ भाग हैं; अर्थात् मनुष्य-को २५ वर्षकी आयुपर्यन्त ब्रह्मचर्यकी बड़ी ही सावधानीके साथ रक्षा करनी चाहिये। यह मध्यम श्रेणीका ब्रह्मचर्य है क्योंकि १०० वर्षकी आयु भी मध्यम श्रेणीकी मानी गयी है। उत्तमश्रेणीके ब्रह्मचर्यके विषयमें मनुजी कहते हैं—

"षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतं।
अ० ३ श्लो०

ब्रह्मचारीको गुरुगृहमें ३६ वर्ष रहकर तीनों वेदोंको अच्छी प्रकार पढ़ना चाहिये। यहाँ छत्तीस वर्ष और तीन वेद, यह सूचित करते हैं कि हरेक वेदके अध्ययनमें बारह वर्ष रखे गये हैं अर्थात् चारों वेदोंके पंडित होनेके लिये ४८ वर्षके परम ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता है। प्राचीन समयमें प्रत्येक भारत-वासी कमसे कम २५ वर्ष पर्यन्त कई ३६, ४८ वर्ष पर्यन्त और कई आमरण ब्रह्मचारी रहते थे। स्त्रियाँ भी १६ से २४ वर्ष-तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती थीं। सारांश यह, कि किसी भी पुरुषको २५ वर्षकी उम्रके पहिले और स्त्रीको १६ वर्षकी वयके पूर्व गृहस्थाश्रममें पड़नेकी आज्ञा नहीं थी। परन्तु हा! खेद कि आज उसी पवित्र-भूमि भारतमें लाखों ऐसी बाल-विधवाएँ बैठी हैं जिनकी उम्र अभी पाँच वर्षसे भी कम है! कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसके हृदयमें इस बातको सुनकर दुःख न होता होगा? लेकिन आजतक इसपर किसीने भी विचार नहीं किया। यह संख्या घटनेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही है। हमारे देशमें इस प्रकार विधवाओंकी संख्याके बढ़ने तथा करोड़ों जवान स्त्री पुरुषोंके मरनेका एकमात्र कारण "ब्रह्मचर्यका अभाव है।"

ऊपरका श्लोक "चतुर्थमायुषोभाग" से एक ध्वनि और भी निकलती है कि मनुष्य जिस वयमें अपना वीर्यपात

आरम्भ करेगा, वह उससे चौगुनी आयुके लगभग ही जीवित रह सकेगा। मान लीजिये कि एक व्यक्तिने अपना वीर्य चौदह वर्षकी उम्रसे ही खर्च करना आरम्भ कर दिया तो वह १४×४ =५६ वर्षसे अधिक उम्र नहीं पा सकेगा। सारांश यह, कि जिसे जितना दीर्घायु चाहिये वह उतना ही अधिक अखण्ड ब्रह्मचर्य तपका अनुष्ठान करे। स्त्री-प्रसङ्ग द्वारा ही वीर्यनाश होता है, ऐसा मानना भूल है। हमारे कई नासमझ भाई अपनी बहुत छोटी उम्रमें ही हस्तक्रिया, गुदमैथुन आदि कई बुरी बुरी आदतों द्वारा अपना वीर्य खर्च करने लगते हैं। यह अपने पैरों आप ही कुल्हाड़ी मारना है—यहींसे अल्पायुका भयङ्कर सूत्रपात है। जवानीके पूर्व मरनेवाले मनुष्योंकी संख्याका भारतमें बढ़नेका एकमात्र यही कारण है। लोग कोषकी पूर्णताके पूर्व ही उसमेंसे खर्च करने लगते हैं—भला ऐसी दशामें सिवाय दीवालेके और क्या हो सकता है? देखिये शुश्रुत सूत्रस्थानमें लिखा है—

"शरीरमें धातुओंकी वृद्धि १६ से लगाकर २५ वर्षकी उम्रतक होती है। २५ वें वर्षसे यौवनकी प्राप्ति होती है और २५ से ४० वर्षकी उम्रतक यौवनका पोषण होकर शरीरस्थ धातु पुष्ट होती है। तत्पश्चात् धातु पूर्णता प्राप्त करके बाहिर निकलने योग्य होती है।"

तात्पर्य्य यह, कि शुश्रुतकारने भी ब्रह्मचर्य काल ४० वर्षका माना है। इस बातका समर्थन यूरोप अमरिका आदि

पश्चिमीय देशोंमें होने लगा है किन्तु इस ओर अभी हमलोगोंका ध्यानतक भी नहीं गया है। यहाँ तो ४० वर्षके पूर्व ही शरीरमें वृद्धावस्थाके प्रायः समस्त चिह्न दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसका मुख्य कारण ब्रह्मचर्य्यका अभाव है।

वीर्यरक्षाका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है। विना वीर्य-रक्षाके "ब्रह्मचर्य" कैसा? इसलिये हमें यहाँ वीर्यके सम्बन्धमें भी थोड़ा बहुत लिखना चाहिये। वीर्य क्या है? इसका संक्षेप उत्तर यही है कि "हमलोगोंके भोजनका अन्तिम सत्व वीर्य है।" अर्थात् जैसा हम खाते हैं, वैसा ही वीर्य्य भी बनता है। हमलोग जो कुछ भी खाते हैं, वह सात धातुओंमें बनता है। पहिले भोजन का रस बनता है, फिर उस रसका रक्त बनता है, रक्तके बाद मांस, मांसके पश्चात् मेद, मेदके पश्चात् अस्थि, अस्थिके बाद मज्जा और मज्जाके पश्चात् वीर्य बनता है। यह आप समझ गये होंगे, कि वीर्य कितनी क्रियाओंके बाद बनता है। इस प्रकारकी क्रियाके होनेमें पूरे ३० दिन लगते हैं अर्थात् जो कुछ भी आज हमने खाया है उसका वीर्य पूरे तीस दिनमें थोड़ासा बनेगा। शरीर-शास्त्रके ज्ञाताओंका कहना है कि ८० बूँद शुद्ध रक्तका एक बूंद शुद्ध वीर्य बनता है। जठराग्निके यंत्रमें भोजन डाल-कर जो एक इत्र तैय्यार होता है, वही वीर्य है। प्रत्येक धातुके बननेमें ४॥ दिनके लगभग लगते हैं। इस प्रकार छब्बीसवें दिन प्रकृतिके यंत्रमें पड़े हुए भोजनका वीर्य बनना आरंभ होता है। वीय कहाँपर रहता है? यद्यपि यह एक गुप्तभेद है तथापि

इतना जान लेना जरूरी है कि "वह सारे शरीरमें रहता है।" जिस प्रकार दूधमें घृत और गन्नेमें रस गुप्त रूपसे उसके अस्तित्वतक रहता है, ठीक उसी प्रकार शरीरमें वीर्य भी रहता है। जिस तरह दधि-मंथन करनेके पश्चात् उसमेंसे घृत अलग हो जाता है, उसी तरह वीर्य शरीरमें आकर्षित होकर एक जगह एकत्र हो जाता है। जहाँ यह इकट्ठा होता है, उसे वीर्याशय कहते हैं। यह स्थान मूत्राशयके पास ही है। मलद्वार और मूत्रद्वारका मध्यका भाग वीर्याशयका स्थान है। गुदा और अंडकोषोंके मध्यमें जो चार पाँच अंगुलका अन्तर है, उसे ही वीर्याशय समझिये।

आहार-विहारका ब्रह्मचर्य्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। यह बात अच्छी तरह ध्यानमें रखनी चाहिये। डाक्टर ट्राल लिखते हैं—

"The more nearly the practice live in accordance with Physiological habits, especially in the matters of food, clothing and exercise, the more nearly normal will be their sexual inclinations, and the less need have they of subjecting their desires to the restraints or control of reason."

पुरुषोंके वीर्य और स्त्रियोंके रजपर आहार-विहारका प्रभाव अधिक होता है। मनोनिग्रह और ब्रह्मचर्यका भी उसके ऊपर

अधिक आधार है। इसलिये बचपनसे ही इस विषयमें साव-धानी रखनी चाहिये। जो बालक अज्ञान अवस्थामें ही खराब आदतों द्वारा ब्रह्मचर्यका भंग करते हैं, उनकी दशा बड़ी ही करुणाजनक होती है। किन्तु इस विषयमें वह बालक उतना उत्तरदायी नहीं है, जितना कि उनके पालकगण हैं। यदि माता पिताने ब्रह्मचर्य पालन नहीं किया है, तो संतानका ब्रह्मचारी होना भी कठिन है। इसका कारण यह है कि दुर्बल मनुष्यों-की निर्बल संतान कामके प्रबल वेगको दमन कर सकनेमें असमर्थ होती है। इससे कोई यह न समझ ले कि ब्रह्मचर्यभ्रष्ट माता-पिताकी औलाद ब्रह्मचारी रह ही नहीं सकती। रह सकती है किन्तु विशेष पुरुषार्थकी आवश्यकता है। हाँ भविष्यमें जो ऐसे ब्रह्मचारी द्वारा संतान होगी वह अच्छी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर सकेगी और इस तरह तीसरी या चौथी पीढ़ीमें पूर्ण ब्रह्मचर्य द्वारा पूर्णायु पानेवाली संतानें इस भारतमें दृष्टिगोचर होने लगेंगी।

कुछ बालकोंका तथा कुछ समझदार बड़ोंका ऐसा खयाल बना हुआ है कि, बारह तेरह वर्षकी अवस्थातक वीर्य न होनेसे उसका खर्च तो होता ही नहीं फिर मैथुनादि करनेसे हानि ही क्या है? यह भारी भूल है—बालकमें भी वीर्य रहता है, किन्तु वह अपक्व होता है। फूलकी कच्ची कलियोंमें गन्ध होती है, परन्तु वह गन्ध सूँघनेपर भी मालूम नहीं होती! यही बात बालकके वीर्यके विषयमें भी समझनी चाहिये। पुष्पके

खिलनेपर ही उसकी सुन्दर गन्ध प्रकट होती है—बालकके पूर्ण अवयव होनेपर ही उसमें सच्चा वीर्य्य प्रकट होता है। ब्रह्मचर्यका घातक एक और भी विचार हमारे नवयुवकोंको ही क्या बल्कि कई बूढ़े मनुष्योंकी मूर्ख खोपड़ीमें घुसा हुआ है, वह यह कि—"यदि-वीर्यपात न किया जावेगा तो बीमारी हो जावेगी। आँखें खराब हो जावेंगी। यह तो शरीरस्थ मल है इसका निकलना ही अच्छा। दूसरे तीसरे दिन वीर्य निकाल देना चाहिये। यदि नहीं निकला तो जब वह बहुत हो जावेगा तब स्वप्नदोष प्रमेह आदि द्वारा निकलने लगेगा। इत्यादि—।" ये सब बातें मूर्खतापूर्ण हैं। समझदार मनुष्योंको ऐसे ज्ञानी पुरुषोंसे दूर ही रहना चाहिये। इस विषयमें मेरा तो केवल यही पूछना है कि यदि चिराग़मेंसे तेल निकालकर फेंक दिया जावे तो दीपककी दशा क्या होगी? बुझ जावेगा न? तो यदि इस शरीरसे वीर्य निकाल दिया जावेगा तब यह नष्ट होगा या बचेगा। सारांश यह कि दीर्घायु चाहनेवाले व्यक्तिको वीर्य-रक्षा—ब्रह्मचर्य रखना उतना ही आवश्यक है, जितना कि जीवनके लिये भोजन और जलकी जरूरत है।

आजकल भारतवर्षमें ब्रह्मचारी रहना एक प्रकारसे कष्ट-साध्य सा हो गया है—इसका कारण वायुमंडलका प्रतिकूल होना है। यहाँ वायुमंडलका अर्थ हवा नहीं है, बल्कि आस-पासकी संगति है। जिधर देखिये उधर ब्रह्मचर्यका अभाव है। और ब्रह्मचर्यके विरोधी कार्य दृष्टिगोचर होते हैं। घरमें देखें तो

माता पिता बड़ा भाई चाचा आदि गुरुजन ब्रह्मचर्यहीन हैं। पड़ोसी इन्द्रिय-लोलुप और व्यभिचारी हैं। शब्द भी कानोंमें निरंतर ऐसे पड़ते रहते हैं जिनमें ब्रह्मचारी रहनेमें थोड़ा बहुत धक्का अवश्य लगता है। स्पर्शके लिये भी हमारे आस पास ऐसी वस्तुएँ होती हैं, जो कामोत्तेजक होती हैं—गुदगुदे बिछौने, मखमलके तकिये, कमानीदार पलंग, कुर्सी इत्यादि ऐसे कई ब्रह्मचर्य बाधक साधन होते हैं। ब्रह्मचारीको तो मृदुस्पर्शसे सदैव दूर और कठोर-स्पर्श वस्तुओंको निरन्तर पास रखना चाहिये। रूप अर्थात् दृश्य भी आँखोंके आगे आजकल जितने भी आते हैं, सभी ब्रह्मचर्यके घातक हैं। स्त्रियोंके हावभाव, हिजड़ोंकी अंगभंगी, नाचनेवाले लौंडोंका स्त्रीवेश, वेश्याओंका नगर निवास, और उनका सायं प्रातः नगरमें घूमने निकलना, वेश्या नृत्य, नाटक, सीनेमा, गन्दे चित्र, गन्दा साहित्य, और अखबारोंकी कामोत्तेजक औषधियोंकी विज्ञापन बाजी प्रभृति विविध दृश्य ब्रह्मचर्यके बाधक हैं। रस विषयक मामला भी गड़बड़ ही है—घरसे लगाकर बाजारू दूकानों तक चटपटे, मिर्चमसालेदार, उत्तेजक पदार्थ भरे रहते हैं। सात्विक भोजनोंका अभाव है। नरम नरम मिठाइयोंने और चटपटे पदार्थोंने हमारे देशवासियोंके पेटको बिगाड़ कर सदारोगी बना दिया है। चा, काफी, कोको, भङ्ग, मदिरा, चंडू, चरस, अफीम, तमाखू, सोड़ा, लेमन, आइस्क्रीम आदि सभी पदार्थ ब्रह्मचर्यके शत्रु हैं। आज·

कल जिस नगरमें, होटल, उपहार गृह, ढावा, सोडा लेमन आदि पेय पदार्थोंकी दूकानें अधिक होती हैं, वह नगर उन्नत और सभ्य माना जाता है परन्तु वास्तवमें ये हमलोगोंके ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यको जलानेवाले स्मशान हैं। ब्रह्मचर्य व्रतकी इच्छा रखनेवालोंको ऐसे स्थानोंसे कोसोंदूर रहना चाहिये। गन्ध भी हमारे चतुर्दिक् ऐसा रहता है जो हमें वीर्य रक्षासे विचलित करता रहता है। इत्र, फुलेल, गुलावजल, सेंट, लेवें-डर, हेयर आयल, आदि पदार्थ कामोत्तेजक हैं। इनके अतिरिक्त वड़े वड़े शहरोंके दूषित वायुयुक्त स्थान, गटर, मोरी, नालियाँ, पाखाने, पेशावघर गन्दे और वदबूदार स्थान ब्रह्मचर्यके घातक हैं। फीनाइल आदि कृमिनाशक पदार्थोंको डालकर उन्हें शुद्ध रखा जाता है परन्तु देखा जावे तो फिनायल ही वेचारा स्वयम् दुर्गंधयुक्त है—उसकी वदवू भी मस्तिष्कको हानि पहुंचाने वाली है। एक व्यक्ति जो जन्मसे जङ्गलकी खुली हवामें रहा हो, उसे यदि कलकत्तेके किसी फिनायलसे धुले हुए पाखानेमें ले जाकर शौचके लिये विठा दिया जावे तो वह वेचारा चक्कर खाकर गिर पड़ेगा अथवा वहांसे आधा वीमार होकर निकलेगा। लिखनेका सारांश यह कि हमारे शरीरकी समस्त इन्द्रियोंके लिये आजकल ऐसे कार्य मिल रहे हैं जो वीर्यरक्षाके अवलम्बनको धक्का पहुंचा रहे हैं। अतएव ऐसे स्थानोंसे और कार्योंसे दूर रहने पर ही वीर्यरक्षा हो सकती है अन्यथा कष्टसाध्य है। इसके लिये या तो प्राचीन प्रणालीके अनुसार

गुरु कुलोंमें वास करना चाहिये या ऐसे छोटे ग्राममें रहना चाहिये जहाँ ऊपर कही हुई बाधाएँ आड़ी न आवें। ब्रह्मचर्य काल यदि घरोंमें अर्थात् नगर ग्राम आदिमें न बिताया जावे तो ही उत्तम है। क्योंकि इसके पश्चात् दूसरा आश्रम गृहस्थ है, जिसका अर्थ ही घरमें रहना है।

हम देखते हैं कि हमारा मानव समाज रातदिन सुखकी खोजमें और दुःखसे छुटकारा पानेके लिये चिन्तित रहता है किन्तु वह सच्चा सुख अभीतक नहीं मिला है। आजकल तो लोगोंने अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहिनना ओढ़ना, ऊँचे ऊँचे गगनचुम्बी मकानोंमें रहना, नलद्वारा पानी प्राप्त करना, बटन दबानेसे प्रकाश और वायुका आनन्द लूटना, घरके अन्दर ही पाखाना जाना, वहाँपर ही थोड़ासा साबुन चुपड़ कर स्नान करना, गद्दोंपर पड़े रहना, मोटर, सायकल, ट्राम, रेलप्रभृति यानोंमें बैठकर पंगुकी भाँति घूमना और ऐशो आराममें निरन्तर लिप्त रहना ही सुखकी पराकाष्ठा मान ली है। परन्तु वास्तवमें यह सच्चा सुख नहीं है। बल्कि, महान दुःख है क्योंकि उनके गाल या तो पिचके हुए हैं या मेद बढ़ जानेसे अत्यन्त फूले हुए हैं। शरीरके वस्त्र खुलवाकर देखेंगे तो या तो अतिशय दुर्बल या मटकी की भाँति पेट लटका हुआ पावेंगे। उनके शयनागारमें ओषधियोंकी शीशियाँ रखी हुई मिलेंगी। भोजनके पश्चात् किसी लवणकी या चूर्णकी फाँकी लिये बिना उनकी जठराग्नि भोजन नहीं पचा सकती!

सोते समय नींद आनेकी दवा लिये बिना निद्रा नहीं आती !!
इसे सुख कहें या दुःख? मेरे खयालसे तो सभी इसे दुःख
कहेंगे। क्योंकि जब शरीर ही स्वस्थ नहीं है तो यह सारा सुख
धूल है। जो शरीर रोगी बनकर अल्पायु बन जाता है उसके
लिये तो महात्मा तुलसीदासजीने अच्छा उपदेश दिया है—

अर्ब खर्ब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज।
जो तुलसी निज मरण है, तो आवे केहि काज॥

एक उर्दू कविने भी कहा है कि "एक तन्दुरुस्ती हजार
नियामत।" सच्चा सुख एक मात्र स्वास्थ्य ही है। जिसका
स्वास्थ्य खराब है, वह स्वर्गके समस्त ऐश्वर्योंको पाकर भी
सुखी नहीं माना जा सकता। क्योंकि "शरीरमाद्यं खलुधर्म-
साधनम्।" जो आदमी तन्दुरुस्त है—जिसके शरीरमें बल,
पुरुषार्थ, उत्साह और वीर्य है, जिसे डाक्टर हकीम, वैद्योंके
द्वारपर नहीं जाना पड़ता है, वही सच्चा सुखी है। किन्तु हा!
आज ब्रह्मचर्यके महत्वको भूल जानेके कारण ६० प्रतिशत
भारतवासी अपने स्वास्थ्यको अपने ही हाथों भूलसे बर्बाद कर
चुके हैं। जो लोग ब्रह्मचारी रहे हैं या हैं, उन्हींका स्वास्थ्य
उत्तम रह सकता है। ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति कदापि सुखका
अधिकारी नहीं है।

जो सुख परिणाम तक सुखरूप है। वही सच्चा सुख है।
यही सुखकी व्याख्या है। जो अलग अलग मनुष्य अथवा
समाजने अपने अपने लिये सुख-सम्पत्तिको इकट्ठा किया है वे

क्षणिक सुख है—स्थायी नहीं होते। प्राणीमात्रके सुख दुःखमें हमारा भी सुखदुःख है, ऐसा विचार और ऐसी बुद्धिवाला ही सच्चा सुखी है, यह उदार बुद्धि प्रत्येक प्राणी नहीं रख सकता। क्योंकि शरीर शास्त्रज्ञोंका कहना है कि मनुष्यकी बुद्धि और विचार उसके शरीरकी रचनाके अनुसार और शक्तिके अनुसार ही होते हैं। हमारे यहाँ इस शास्त्रको सामुद्रिक विद्याशास्त्र कहा है। शरीरकी रचना परसे ही स्वभाव आदिका पता लगाया जा सकता है। आप यदि विशेष ध्यानसे लोगोंकी आकृति देखकर प्रकृति जाननेका भाव मनमें धारण करके कुछ समय तक अभ्यास करेंगे तो कुछ समयके बाद आप मुँह देखकर मनुष्यका स्वभाव बता सकेंगे। निर्दय मनुष्य और सदय मनुष्यकी मुखाकृति एक कदापि नहीं हो सकती। चञ्चल और शान्त स्वभावके मुखोंमें भिन्नता दीख पड़ती है। मूर्ख और विद्वानकी शक्ल छिपी नहीं रहती। सारांश यह कि मुख देखकर ही बहुत सी मनकी बातें जानी जा सकती हैं। केवल अभ्यास और अनुभवकी आवश्यकता है। इन बातोंको यहाँ लिखनेसे हमारा यह मतलब है कि शरीरकी रचना स्वभावके अनुकूल ही होती है। अतएव दूसरोंके सुखमें सुख और दुःखमें दुःख माननेवाले व्यक्तिका सङ्गठन बड़ा ही उत्तम पुरुषार्थी और वीर्यवान होना चाहिये। तभी वह सच्चे सुखका अनुभव कर सकता है। विना ब्रह्मचर्यके मनुष्य पुरुषार्थी और वीर नहीं हो सकता। अतएव समस्त सुखोंको

भोगनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको ब्रह्मचर्य तपका अनुष्ठान करना परमावश्यक है।

आजकलके विद्याभ्यासका ढङ्ग इतना बुरा है कि उससे मनुष्य ब्रह्मचारी कदापि नहीं रह सकता, क्योंकि शिक्षाप्रणाली ही ऐसी है। जहाँके शिक्षक वेतन पाना ही अपना कर्त्तव्य समझते हों, वहाँसे ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंका पढ़कर आना असम्भव है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्कूल और कालिजोंमें अयोग्य अध्यापकोंकी भरमार है। उन्हें मानसिक, शारीरिक और नैतिक ज्ञान बिलकुल ही नहीं है। जैसा उन्होंने अपने अध्यापकसे सीखा या पढ़ा है, वैसा ही वे भी अपने शिष्यको सिखा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। भला ऐसे अध्यापकोंसे देशका क्या कल्याण हो सकता है? अधिकांश अध्यापक वर्ग प्रायः सदाचारी नहीं होते। चा, तम्बाकू, भङ्ग, जरदा, गांजा, सिगरेट, बीड़ी वगैरह सेवन करते हैं। चटकीला रहना उन्हें पसन्द होता है। माँग पट्टीदार बाल रखते हैं—इत्र फुलेलसे उनका शरीर महँकता है। लिखते हुए लेखनी लज्जित होती है, कि अपने उन पुत्र समान् शिष्योंसे कुकर्मद्वारा अपनी कामवासना शान्त करते हैं!! सायंकालको गली कूचोंमें धूल खाते और वेश्याओंके यहाँ रात-दिन अड्डा जमाये पड़े रहते हैं। कहिये, ऐसे पतित अध्यापकों द्वारा शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी क्या ब्रह्मचारी रह सकते हैं? यही कारण है कि स्कूल कालिजोंके विद्यार्थी, हस्तमैथुन, गुदामैथुन, परस्त्रीगमन आदि नीच

कार्यों में फँसे हुए देखे जाते हैं। विद्यार्थी सदा अपने गुरुका अनुकरण करता है—मान लीजिये कि गुरुजी गाँजा भाँगका सेवन करते हैं तो उनका शिष्य भी अब नहीं तो आगे चलकर अवश्य गँजेड़ी भँगेड़ी बनेगा। ऐसे अध्यापक वर्ग हमारे देशको मिट्टीमें मिलानेवाले अत्यन्त पापी माने जाने चाहियें। पालकोंको तथा समझदार बच्चोंको ऐसे गुरुजीके पास जाकर बैठना भी नहीं चाहिये। पाठशालाओंके मास्टर सदाचारी, पवित्रात्मा, और परोपकारी व्यक्ति ही होने चाहियें। ऐसे अध्यापक भी हैं किन्तु वे इतनी कम संख्यामें हैं कि जिनका होना न होना एकसाही है। सैकड़ों मीठे जलकी नदियाँ समुद्रमें गिरती हैं किन्तु उनके कारण समुद्र मीठा नहीं माना जा सकता! अब देशको ब्रह्मचर्यघातिनी शिक्षामें सुधारकी आवश्यकता है।

संभव है, हमारे देशका अध्यापक समाज हमपर आँख भौं चढ़ावे, किन्तु जो बात सत्य है उसे किसी कोपके भयसे छुपा लेना भी तो पाप है। हमारा अनुभव है कि आजकलकी शिक्षा और शिक्षक ब्रह्मचर्यके लिये बाधक हैं। जब कभी हमने देखा है, तब स्कूल कालिजोंसे निकले हुए विद्यार्थियोंको ही वीर्य-रोगमें फँसे देखा है। वैद्यों चिकित्सकों और डाक्टरोंके हाजिरी रजिस्टर हमारे इस कथनकी साक्षी दे रहे हैं। हमारे इन विद्यार्थी युवकोंके पैसे द्वारा ही अधिकांश विज्ञापनबाज अपना जेब गर्म करते हैं। सबसे प्रथम स्कूल छोड़नेके बाद

यदि कोई चिन्ता हमारे विद्यार्थी भाईको होती है तो वह वीर्य सम्बन्धी रोगसे छुटकारा पानेकी होती है।" वे इस चिन्तामें इतने तल्लीन रहते हैं, कि अखबारको पढने लायक बातें पहिले न पढकर बल वद्धक चूर्ण, नपुंसकताकी ओषधि, स्वप्न-दोष मिटानेकी दवा, प्रमेह नाशक वटी आदिके विज्ञापनों-को आँखें फाड़ फाड़ कर देखेंगे और उन्हें बड़े ही ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे। उन विज्ञापनोंकी लच्छेदार चटकीली भड़कीली, हृदय-ग्राही भाषासे दिल पिघल उठेगा और दवा मंगाकर उसे लुक छुपकर सेवन करेंगे। इसका फल यह होगा कि रोग अपनी जड़ और गहरी जमाता जावेगा। सारांश यह कि हमारा वायु मंडल अत्यन्त दूषित होगया है—इसमें ब्रह्मचर्य रखना पुरुषार्थी मनुष्योंका ही काम है। देखिये मनुजी ब्रह्मचारी विद्यार्थीके लिये क्या उपदेश देते हैं —

> वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
> शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैवहिंसनम् ॥१७७॥
> अभ्यंग मञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
> कामं क्रोधंच लोभंच नर्त्तनं गीत वादनम् ॥१७८॥
> द्यूतंच जनवादंच परिवादं तथानृतम्।
> स्त्रीणांच प्रेक्षणा लम्भमुपघातं परस्यच ॥१७९॥
> एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
> कामाद्धि स्कन्दयेन्द्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०॥

(अध्याय द्वितीय)

अर्थात्—शहद, मांस, सुगन्धितद्रव्य, पुष्प हार, रस, स्त्री, सिरकेकी भाँति बनी हुई वस्तु, हिंसा, उबटन, अंजन, जूते, छत्री, काम, क्रोध, लोभ नाचना, जुआ, झगड़ा, निन्दा, झूंठ स्त्रियोंको देखना और आलिंगन करना ब्रह्मचारीको त्याग देना चाहिये। सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्यपात न करे, कामेच्छा द्वारा वीर्य गिरानेवाला ब्रह्मचारी अपने व्रतको नष्ट कर देता है।" देखिये ब्रह्मचारीके लिये कैसे कड़े कड़े नियम बनाये गये हैं। क्या स्कूल कालिजोंमें इन नियमोंका पालन होता है? वहाँ तो इनके विरुद्ध आचरण होता है—वे मर्द नहीं बनाये जाते हैं बल्कि ज़नाने बनाये जाते हैं। हमारे प्राचीन ब्रह्मचर्यमें सुगंधित द्रव्य, हार, रस, अंजन, जूते, छत्री, उबटन आदि वर्जित हैं तो आजकलके ब्रह्मचर्यमें इन समस्त वर्जित कार्योंका पूर्णतया साम्राज्य है। जब हम मांग पट्टीदार वालोंमें "कामनिया आयल" लगाये, गलेमें फूलोंकी माला डाले, आँखोंमें सुरमा लगाये, पैरोंमें जूते ही नहीं बल्कि जुराबों पर लांग बूट अड़ाये, पौष माघके महीनेमें भी सिरपर छाता झुकाये एक विद्यार्थीको मदरसेमें पढ़ने जाता देखते हैं तब भारतकी इस अधोगति पर दुःख होता है। इस पाश्चात्य वेश भूषाने तो हमारे देशवासियोंकी मर्दीपर पानी फेरकर जनाना बना दिया !! ब्रह्मचर्यको खोकर देशने नज़ाकतमें भी खूब उन्नति प्राप्त की है—इसी कारण लोग अल्पायु हो गये। तात्पर्य्य यह, कि जबतक प्राचीन प्रणालीके अनुसार देशमें

ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याभ्यासका क्रम स्थापित नहीं किया जावेगा तबतक देशमें दीर्घायुषी लोगोंका होना असम्भव साही है।

पूर्व कालमें वीर्य रक्षा करना ब्रह्मचारीका प्रथम कर्त्तव्य होता था—इसके साथ ही विद्याभ्यास भी चलता था। शुक्र नीति अध्याय ४ में लिखा है कि—

"विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात्।"

विद्याधन संचयार्थ ही ब्रह्मचर्य तपका अनुष्ठान करना चाहिये। धर्मशास्त्रोंके आज्ञानुसार ९।१० वर्षमें उपनयन संस्कारके बाद बालकको गुरु-गृहमें विद्याभ्यास और अखण्ड ब्रह्मचर्य पालनके लिये भेज दिया जाता था—हमारे बालक धर्म, सदाचार और नीतिके ज्ञाता गुरुओंके हाथमें ही सौंपे जाते थे। कन्याओंका भी लगभग इसी उम्रसे विद्याभ्यास आरम्भ हो जाता था। कन्याओंके लिये अलग और लड़कोंके लिये अलग, कहीं बस्तीसे दूर गुरुगृह होते थे—वहाँ आजकलके स्कूल कालिजोंकी भाँति ऊँची ऊँची अट्टालिकाएँ नहीं होती थीं, बल्कि फकीरोंकी साधुसन्तोंकी, ऋषि-मुनियोंकी पर्ण कुटियाँ होती थीं। हमारे अगाध ज्ञान भण्डार भारताचार्य उन पत्तोंकी झोपड़ीमें अपना सादा सीधा पवित्र जीवन व्यतीत करते थे, फिर भला उनके शिष्य कैसे होंगे? इसका अनुमान अब पाठक ही स्वयं लगालें। ये आश्रम बस्तीसे दूरीपर होते थे। अतएव विविध लालसाएँ, इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेवाले पदार्थ, विचार, बातें, चिन्ताएँ वहाँ फटकने नहीं पाती थीं।

गुरु शिष्य दोनों सदैव एक ही आश्रममें निवास करते थे। इस लिये शिष्य भी गुरु जैसा ही सदाचारी, धर्मात्मा, नीतिज्ञ, और दीर्घायुषी हो जाता था—उन्हें अत्यन्त ही सात्विक भोजन दिया जाता था। दुर्व्यसन, दुराचार क्या है—इन बातोंको वे बिलकुल नहीं जानते थे। वीर्य क्या है—उसका रङ्ग क्या है—कैसा होता है इत्यादि बातोंको वे बिलकुल समझते ही न थे। इस तरह बालकोंको कमसे कम २५ वर्षतक ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक विद्याभ्यास कराया जाता था। इसके पूर्व उन्हें गृहस्थमें प्रवेश होनेकी तो क्या बल्कि घर पर जाकर अपने मातापिता प्रभृति घरके लोगोंसे मिलने तककी सख्त मनाही होती थी। यही कारण था कि उस समय भारतवर्षमें वीर मनुष्योंकी कमी नहीं थी। अल्पायुमें मरजाना एक नवीन बात थी। पिताके होते पुत्रका मरना बड़ा ही बुरा माना जाता था। सौ वर्षकी उम्र पाये बिना मृत्यु पानेवाला पापी माना जाता था। जिन्हें हमारे इस कथनपर विश्वास न हो, वे रामायण उठाकर देखले' कि "रामचन्द्रजीको भला बुरा कहता हुआ एक ब्राह्मण उनके पास आया और बोला कि "राम! तू पापी है यही कारण हैं कि मेरे होते मेरा पुत्र मर गया है। यह पहिला ही मौका है। इत्यादि।" इन सब बातोंसे स्पष्ट होता है, पहिले सभी लोग दीर्घायु पाते थे—इसका कारण एक मात्र अखण्ड ब्रह्मचर्यका पूर्ण रीतिसे पालना ही था।

बालविवाहकी एक बुरी प्रथाने हमारे देशमें हिमालयसे

कन्या कुमारी तक और ब्रह्मपुत्रसे सिन्धु नदीतक मानवजातिमें अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया है। ब्रह्मचर्यकी जड़में यह वज्रकीटकी तरह काम कर रहा है। असंख्य बालविधवाएँ इसकी बदौलत देशमें गर्म आँसू बहा रही हैं। हमारे करोड़ों बालक और नवयुवक इसी बुरी प्रथाके कारण अकाल मृत्यु पा चुके हैं—भारत माताके करोड़ों लाल कालके कराल गालमें चले जा रहे हैं! इतने पर भी देशकी निद्रा नहीं खुली। इस बालविवाहने ब्रह्मचर्यका नामोनिशान मिटा दिया। ब्रह्मचर्य शारीरिक और मानसिक उन्नतिका प्रथम साधन है और बालविवाह ब्रह्मचर्यका घातक है। सुश्रुताचार्य जहाँ ४० वर्षकी उम्रमें विवाह करनेकी सलाह देते हैं, वहाँ चौदह पन्द्रह वर्षके लौंडोंको लड़के लड़की होने लगते हैं। यह देशके लिये कैसी नाशकारी बात है? जहाँ सोलह वर्षकी उम्रसे शरीरकी धातु-वृद्धि होती है, वहाँ चौदह वर्षके बच्चोंके सन्तान पैदा होना सर्वनाश नहीं तो और क्या है? आजकल तो ४० वर्षकी अवस्थामें लोगोंको वृद्धावस्था धर दबाती है और कालमें हमारे पूर्वज ४० वर्षतक ब्रह्मचारी रहकर बादमें अपना विवाह करते थे। वाग्भट्टने जल्दीसे जल्दी विवाहका समय

"षोड़श वर्षायां पञ्चविंशतिवर्षः पुत्रार्थं यतेत्।"

२५ वर्षका पुरुष और सोलह वर्षकी कन्याको ही सन्तान उत्पन्न करने योग्य बताया है। ऐसे जोड़ेसे जो सन्तान पैदा होती है, वही दीर्घायु पाती है। वर्त्तमान कालमें लोगोंने

विवाहके पवित्र हेतुको भुला दिया। यही कारण है कि १५।१६ वर्षके लड़के आज पिता बनकर अपने दिलमें फूले नहीं समाते!! भारतवर्ष किस अधोगतिको पहुंच चुका है, इसको बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गई है—विचारशील पाठक स्वयम् विचार लें और अपनी आंखोंसे भी देख लें। यहाँ हम एक चित्र देते हैं। यह १४ वर्षकी कन्याका चित्र है, जो दो बच्चे प्रसव कर चुकी है। देशके लिये इससे बढ़कर दूसरा बुरा समय और क्या होगा? देखिये इस विषयमें आयुर्वेद स्पष्ट कह रहा है—

> "ऊनषोडश वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्।
> यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविनश्यति॥
> जातोवा न चिरं जीवेद् जीवेद्वा दुर्वलेन्द्रियः।
> तस्मादत्यन्त वालायां गर्भाधानं नकारयेत्॥"

अर्थात्—सोलह वर्षसे कम उम्रकी लड़कीमें २५ वर्षसे कम उम्रका लड़का यदि गर्भाधान करेगा तो वह गर्भ माताकी कुक्षमें ही नष्ट हो जायेगा। यदि उत्पन्न भी हुआ तो कदापि जीवित नहीं रह सकता और यदि दैव कृपासे जीवित भी रहा तो दुवला पतला वलहीन तथा अल्पायु होगा। इसलिये १६ वर्षसे कम उम्रकी स्त्रीमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये। "यह कमसे कम समय, गर्भाधानका आयुर्वेद बता रहा है; परन्तु हा शोक कि १५।१६ वर्षकी उम्रवाले पिताकी पदवीको प्राप्त होते हैं और माताकी अत्यन्त पवित्र जवाबदेहीको अदा करनेका

दीर्घायु

दो सन्तानों की माता।

१४ वर्ष की कन्या दो सन्तान प्रसव कर चुकी है।

(देखिये—पृष्ठ संख्या ७४)

भार एक १२।१३ वर्षकी बालिकाके सिर आ पड़ता है। कहिये, यहाँ बेचारे ब्रह्मचर्यकी पूछ कहाँ ? शोक है कि मनुष्य जातिकी अधमावस्थाका इससे अधिक अधम, अधिक निर्लज्ज और अधिक नीच दर्जेका दूसरा दृश्य और आपके सामने क्या हो सकता है ? छोटे छोटे बालक गृहस्थ धर्म पालन करें, क्या यह मनुष्य जातिकी अधमावस्थाका चिह्न नहीं है ? क्या उन्हें इतनी छोटी उम्रमें यौवनावस्था प्राप्त हो जाती हैं ? क्या ऐसे कम उम्रके लड़के लड़की दीर्घायु बालक उत्पन्न कर सकते हैं ? क्या प्रकृतिने अपने नियमोंमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया है ? क्या प्रजा उत्पन्न करने योग्य रज-वीर्य इस कच्ची उम्रमें तय्यार होने लग गया ? प्रातःकालके सूर्यको मध्यान्हका सूर्य कहना जितनी मूर्खता है। उतनी ही एक बच्चेके लिये यौवन प्राप्त हो गया है ऐसा कहना भी अत्यन्त अज्ञानता है। जिस प्रकार पुरुषके शरीरकी धातुएँ ४० वर्षकी अवस्थामें पूर्णता प्राप्त कर लेती हैं, उसी प्रकार स्त्रियोंके लिये भी महर्षि मनु कहते हैं कि—

"त्रीणीवर्षाण्युदिक्षेत कुमार्यु तुमती सती।
उर्ध्वं तस्मात्तु कालाच्च विन्देत सदृशपतिन्॥"

अ० ९ श्लो० ९०

कन्याके ऋतुमती होनेके बाद तीन वर्ष तक अपनेसे अधिक गुण वाले पतिकी प्रतीक्षा करे और यदि योग्य पति न मिले तो समान गुणवालेके साथ ही विवाह कर ले। पितामह भीष्मने भी धर्मराज युधिष्ठिरको यही उपदेश दिया है।

"माताचैव पिताचैव ज्येष्ठ भ्राता तथैवच।
त्रयश्च नरकं यांति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम्॥"

(काशीनाथ)

इस श्लोकके अनुयायियोंको मनुका उक्त उपदेश जरा आँखे खोलकर पढ़ना चाहिये। लिखनेका सारांश यह कि हमारे धर्माचार्योंने जहाँ देखिये वहाँ ब्रह्मचर्यके गुणोंको मुक्तकण्ठसे गाया है क्योंकि समस्त सुखोंका मूल एक मात्र यह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही उन्नति है और उसकी अवहेलना ही अवनति है—यह बात हमारे देशवासियोंको प्रतिक्षण ध्यानमें रखनी चाहिये।

श्रीयुत भावमिश्र अपने भाव प्रकाशमें ब्रह्मचर्यकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

"आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विता।
स्थिरोपचित मांसश्च भवन्ति स्त्रीषु संयता।"

अर्थात्—स्त्रियोंके विषयमें संयत रहना,—मनको अंकुशमें रखना ही ब्रह्मचर्य है।" कुछ लोग इस विषयमें इसलिये उदासीनता दिखाते हैं कि ब्रह्मचर्य विरोधी वायुमंडलमें ब्रह्मचर्य व्रतका पूर्ण होना असंभव है? इसका उत्तर यही है कि "जिस क्रमसे ब्रह्मचर्य भङ्ग करती हुई मनुष्य जाति अल्पायु हो गई है, उसी क्रमसे ब्रह्मचर्य पालन द्वारा पूर्व कालके अनुसार दीर्घायु पा सकती है।" इसलिये हमें दृढ़ निश्चयसे आजसे ही ब्रह्मचर्य पालन करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। आप यदि गृहस्थी

हैं तो कोई चिन्ता नहीं। आप गृहस्थ धर्मका पालन करते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रतका अनुष्ठान कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य ही नहीं बल्कि गृहस्थी दशामें ही राजा जनककी भाँति महान योगी भी बन सकते हैं—केवल दृढ़ विश्वास, आत्म-शासन, अदम्य उत्साह, और भीम पुरुषार्थकी आवश्यकता है। गृहस्थ किस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर सकता है? इस विषयको हम अपने अगले "गृहस्थाश्रम" प्रकरणमें समझानेकी चेष्टा करेंगे।

यहाँपर पाठकोंको वीर्य रक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्य रखनेके लिये युक्तियोंके जाननेकी आवश्यकता बोध होती होगी, किन्तु हम उन्हें यहाँ लिखना विषय-विरुद्ध समझ कर अन्यत्र कहीं आगे चलकर लिखेंगे। वीर्य-रक्षा, संयम, दमन, इन्द्रिय-निग्रह, ऊर्ध्वरेता होना, अमोघ वीर्य बनाना, आदि शब्द सभी ब्रह्मचर्यके सूचक हैं। यद्यपि ब्रह्मचर्यमें समस्त इन्द्रियोंपर विजय पानेकी आवश्यकता है, तथापि मुख्यतया लिंगेन्द्रियकी वासनाको ही दमन करना इस व्रतमें कर्त्तव्य होता है। कामको मनुष्यका शत्रु माना है, अतएव इस शत्रुसे युद्ध करनेके लिये व्यक्तिको कटिबद्ध होकर खड़े हो जाना चाहिये। जो मनुष्य अपने वाह्य शत्रुओंको मारपीट, खून खराबी, नालिश फर्याद द्वारा बर्बाद करनेमें रात दिन भिड़े रहते हैं, उन्हें सबसे पहिले अपने शरीरस्थ कामादि छः शत्रुओंपर विजय पानेका प्रयत्न करना चाहिये। इन शरीरस्थ महा रिपुओंपर विजय पानेवाला ही इस भूतलपर

एक दिन "अजात शत्रु" वन जाता है। परन्तु शत्रु से मुकाविला करनेके लिये पुरुषार्थकी पहिले आवश्यकता है जो विना ब्रह्मचर्य के असम्भव है। पाठको! आजकलकी परिस्थिति और दूषित वायुमंडलको देखकर आप मत घवराइये। ऐसे विकट समयमें धैर्य पूर्वक अपने मार्गपर चले जाना ही वीरता है। आपमें आत्मशक्ति है, वीर्य होनेके कारण वीर भी हैं, पुरुषार्थ भी है। इतना होनेपर भी आप अपनेको हीन, दीन, क्यों समझते हो? मनुष्य यदि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर पूर्ण निश्चय करेगा तो वह इस परिस्थितिको वदल देगा, यह विलकुल निश्चय है। इसलिये आप आज ही, इसी समय, ऐसा निश्चय कीजिये और उस परमात्माको अपना न्यायाधीश मानकर यह इकरार नामा Bond एक कागज पर लिखकर ऐसी जगह लगा दीजिये जहाँ आपकी उसपर रातदिन दृष्टि पड़ती रहे।

"हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन्, परमात्मदेव! तुम्हारा ध्यान रखकर आज मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं स्वयम् अपने ब्रह्मचर्य घातक कार्योंको त्यागकर नियमानुसार इस तपका आचरण करूँगा। विविध कष्टों और आपत्तियोंके आने पर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं होने दूँगा। मैं अपने मित्रोंको ब्रह्मचर्य पालन करनेमें जीजानसे सहायता दूँगा तथा अपना दूषित वायुमण्डल, ब्रह्मचर्य के पवित्र भाव फैला कर सुधारनेका प्रयत्न करूँगा।

भगवन्! मैं यह अच्छी प्रकार जानता हूं कि मेरे द्रढ़ निश्चयसे और पूर्ण पुरुषार्थसे ही मैं इस व्रतको पूर्ण करके दीर्घायु हो सकूंगा। क्योंकि आप जैसे सर्व-शक्तिमान सहायकके होते हुए मुझे इस विषयमें असफल होनेका जरा भी सन्देह नहीं है। ॐ।"

तिथि— | हस्ताक्षर— स्थान—

एक बात यहाँ और जान लेने योग्य है कि एक बारके वीर्य पातसे मनुष्यकी साधारणतः १० दिनकी आयु घट जाती है। यदि एक मास वीर्यपात किया तो १० महीने और एक वर्ष किया तो १० वर्ष आयु क्षीण हो जायेगी। यह लगातार वीर्यपातका हिसाब नहीं है—लगातार वीर्यपात तो एक सालमें मनुष्यकी १० वर्ष क्या बल्कि ५० वर्ष आयुको बरबाद कर सकता है। अब आप चाहें जितनी उम्र घटायें बढ़ायें यह आप हीके हाथकी बात है। अज्ञानावस्थामें अर्थात् बचपनमें कुसंस्कारों अथवा बुरी संगतिके कारण जो कुछ भी दोष हो गया हो; उसे ज्ञाना-वस्थामें सुधारनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। यदि उचित रीतिसे सुधार किया गया तो बचपनमें हुए समस्त दोषोंका परिमार्ज्जन हो सकता है। यदि बचपनमें कुछ भी दोष न हुआ हो तो इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या हो सकती है?

इस समय देशको ऐसे मनुष्योंकी बड़ी भारी आवश्यकता

हैं जो वीर्य-नाशके भयङ्कर परिणामोंको समझाकर लोगोंमें ब्रह्मचर्य की धुन सवार कर दे। माता पिता और गुरुजनोंका यह प्रथम कर्त्तव्य है। साधु सन्त, महन्त लोगोंको अब ऐशो आराम त्यागकर देशको रक्षाके लिये कार्यक्षेत्रमें कूद पड़ना चाहिये। क्योंकि हमारे देशवासियोंकी अल्पायु हो गई है, उन्हें दीर्घायु प्राप्त करानेके लिये कर्मवीरोंकी देशको जरूरत है! वीर्यरक्षा, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रहका महत्व देशके बच्चे बच्चेको समझाये विना ब्रह्मचर्यके पहिले सी स्थितिपर पहुँचना असम्भव है। इसलिये आओ, हम सब एक होकर ब्रह्मचारी बनें और दूसरोंको बनावें।

ब्रह्मचर्याश्रमके बाद दूसरा नम्बर गृहस्थका है। गृहस्थ शब्द ही इस बातको सूचित करता है कि "घरमें रहना ही इस आश्रमका मुख्योद्देश है"—क्योंकि आगे वाणप्रस्थाश्रम है। ब्रह्मचर्याश्रममें नगरसे तथा घरोंसे दूर रहना पड़ता है, अब ब्रह्मचर्यकी समाप्तिपर ब्रह्मचारी नगरमें आकर गृहवास करता है और पितृऋणसे उऋण होनेके लिये समान गुणवाली ब्रह्मचारिणी कन्याके साथ अपना विवाह संस्कार करता है। मनुजी कहते हैं—

"प्रजनार्थंस्त्रियः सृष्टाः संतानार्थंच मानवाः।
तस्मात्साधारणोधर्मः श्रुतौपत्न्या सहोदित.॥"

अ० ७ श्लो० ७६

"गर्भके धारणार्थ स्त्रियाँ और गर्भाधानके लिये पुरुष उत्पन्न हुए हैं।" यह श्लोक स्पष्ट कहता है, कि केवल उत्तम संतान पैदा करनेके लिये ही स्त्री पुरुषोंकी सृष्टि हुई है—गृहस्थाश्रम विषय सुखके लिये नहीं है। उत्तम संतान बिना ब्रह्मचर्य पालनके कदापि नहीं हो सकती, इसीलिये स्मृतिकार कहते हैं—

"अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।"

अर्थात्—अखण्ड ब्रह्मचर्यको पूर्ण करके ही मनुष्य गृहस्थाश्रममें

प्रवेश करे अर्थात् अपना विवाह करे। आजकल देशमें विवाह जैसे पवित्र संस्कार की जैसी मिट्टी पलीद हो रही है, उसे देखकर आँखोंमें आँसू आते हैं। इस देशमें लड़के लड़कियोंको गोदमें उठाकर उनके माता पिता उनकी अज्ञानावस्थामें ही विवाह कर देते हैं—उन्हें मालूम तक भी नहीं कि हमारा विवाह हुआ था या नहीं !! अधिकांश आठ आठ दस-दस वर्षके बालकोंके विवाह भारतवर्षमें बड़े ही आनन्दके साथ होते हैं—जिस समयमें गृहस्थ-वासनाका नामोनिशान बच्चोंमें नहीं होता, उसी समय उनके मातापिता उनका विवाह कर देते हैं—इन्हें माता-पिता कहें या सन्तान-भोजी निशाचर निशाचरी? जो लोग अपने बच्चोंका विवाह १५ । १६ वर्षकी अवस्थामें करते हैं, वे तो मानों अपना कर्त्तव्य पूर्णतया पालन कर चुके—ऐसा मान बैठे हैं। कहीं अस्सी वर्षके बूढ़ेके साथ ८ १० वर्षकी कन्याका विवाह हो रहा है तो कहीं १० वर्षकी लड़कीके साथ ७ ८ वर्षके लड़केका पाणिग्रहण संस्कार हो रहा है !! विवाह संस्कारमें ऐसी अँधाधुंधी चल रही है, कि जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं। इस उत्तरदायित्व पूर्ण संस्कार की यह दुर्दशा देखकर कौन ऐसा समझदार मनुष्य होगा जिसके हृदयको दुःख न हो? जितनी मृत्युसंख्या इस विवाह संस्कारकी गड़बड़से बढ़ी है, उतनी प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएञ्जा आदि रोगोंसे भी नहीं बढ़ी है। करोड़ों नवयुवक अल्पायुमें अपनी मानव लीला पूर्ण कर चुके, करोड़ों बाल-विधवाएँ

कोनोंमें बैठी अपनी आहोंसे देशको दग्ध कर रही हैं। हालमें "इन्टरनेशनल बर्थकंट्रोल कान्फरेन्स" की रिपोर्ट जो लन्दनमें प्रकाशित हुई है—उसमें भारतीय बालविवाहका वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि "बालविवाहके कारण भारतमें बच्चोंकी मृत्यु संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। क्या अभी समय नहीं आया कि भारतके पोलीटीशयन्स अपना चित्त इस महत्व पूर्ण प्रश्नकी ओर लगावें?" इस विवाह-संस्कारके बिगड़ जानेसे भारतवर्षको जो हानि पहुंचती है वह किसीसे छुपी नहीं है। भारतीयोंकी हर प्रकारकी अवनतिका मुख्य कारण आजकलके विवाहका बुरा ढङ्ग ही है।

आज कलके बेमेल विवाहने तो भारतवासियोंकी दीर्घायु पर पानी फेर दिया। बेमेल विवाहका बाजार सर्वत्र गर्म्म है। प्रतिशत मुश्किलसे एक विवाह ही योग्य होता होगा। लड़का लड़कीको नहीं देखता, और लड़की लड़केको नहीं देखती लेकिन उन दोनोंमें आमरण प्रेम एक तीसरा मनुष्य ही पैदा करनेवाला होता है!! यह कितने आश्चर्य्यकी बात है? आज कल अपनी सन्तानका विवाह करनेवाले मातापिता अच्छा जोड़ा नहीं तलाश करते। अपनी गौपर अच्छा साँड़ छुड़ानेकी हमें चिन्ता रहती है—भैंस पर उत्तम पाड़ा डालनेका खयाल रहता है, अपनी घोड़ीके लिये अच्छा घोड़ा ढूंढ़ते हैं—यहाँ तककी अपनी पालतू कुतियाके लिये भी अच्छा कुत्ता तलाश करते हैं परन्तु शोक है, कि हम अपने पुत्र-पुत्रियोंका जोड़ा

मिलानेमें अपनी बुद्धिका दीवाला निकाल देते हैं। नाई और ब्राह्मणके भरोसे हम लोगोंकी विवाह शादियाँ चल रही हैं। ये लोग निरे निरक्षर भट्टाचार्य और मूर्ख होते हैं, यदि ऐसा न होता तो ये लोग ऐसा कार्य ही क्यों करते और इस उन्नतिके युगमें कहीं उच्चकार्यकर्त्ता न बन जाते। कुछ लोग कहेंगे, कि हम नाई ब्राह्मणोंपर विश्वास न रखकर, अपनी आँखोंसे लड़के लड़कियोंको देखकर ही विवाह करते हैं—तो क्या हम भी बेमेल विवाह करते है? इसका उत्तर यही है कि—किसी दूसरेका मित्र—जन्म भरका मित्र ढूंढनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं हैं। लड़के लड़की स्वयं अपने अपने योग्य जोड़ा चुन लेंगे। सच्चे अधिकारी वे ही हैं—क्योंकि उन्हें जीवन भर साथ रहना है। जिसे जैसे प्रेमीकी जरूरत होगी वह वैसा ही तलाश कर लेगा। "स्वयम्वर" की प्रथा ही उत्तम जोड़ा तलाश करनेकी बढ़िया प्रथा है। हमारे इतिहास प्राचीन कालके ऐसे सैकड़ों विवाहोंका वर्णन कर रहे हैं। जिन दिनों ऐसे उत्तम विवाहकी प्रथा देशमें प्रचलित थी, उन्हीं दिनों देश सब प्रकारसे फला-फूला, सुखी और आनन्दित रहता था—लोग दीर्घायु पाते थे। हा शोक, कि आज इस अनमेल विवाहने देशमें एक अवनतिके नये युगका आरम्भ कर दिया है।

विवाहके पूर्व जन्मपत्र कुण्डली, ग्रह, गण, नाड़ी, योनि आदि मिलाते हैं। संभव है यह सत्य हो, लेकिन वर्त्तमान कालमें हजारों उदाहरण और अनुभवों द्वारा हम इस निश्चय

पर पहुंच चुके हैं, कि यह ज्योतिषका कोरा ढोंग ढकोसला और लोगोंको धोका देना है। सबसे पहिले तो ज्योतिष शास्त्रोंके संशोधनकी आवश्यकता है। क्योंकि ग्रहोंकी चालमें अब अन्तर आ गया है। शीघ्र बोध, मुहुर्त्तचिन्तामणिको रटकर ज्योतिर्विद् बनने वाले धूर्त्त पण्डितोंने ही लोगोंकी इस शास्त्र-परसे श्रद्धा हटाई है। हमारे कथनपर यदि लोग रुष्ट हों तो—उनसे हमारा पूछना है कि "आजतक जितने भी विवाह संस्कार हुए हैं, सभी ज्योतिष शास्त्रके आधारपर और बहुत ही छान-बीनके साथ हुए हैं परन्तु हम करोड़ों विधवाओंको पतिवियोगा-नलमें रातदिन दग्ध होते देखते हैं तथा घरघरमें गृह-कलह और अशान्तिको पाते हैं, इसका क्या कारण है? इसका कुछ भी उत्तर है? सिवा दैवको भला बुरा बतानेके और कुछ भी जवाब नहीं है। किन्तु परमात्माको दोष देना मूर्खता है। थोड़ी देरके लिये यदि यह भी मान लें कि ईश्वरकी इच्छाके आगे सबको सिर झुकाना ही पड़ता है तो फिर जन्मग्रह, कुण्डली, नाड़ी, योग, गण आदि मिलानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इस ज्योतिषके उठते हुए तूफानने और खासकरके "शीघ्रबोध" ने तो भारतवर्षको बरबाद करनेमें कुछ उठा नहीं रखा है—

"अष्टवर्षा भवेद्गौरी नव वर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्द्ध रजस्वला॥
माताचैव पिताचैव ज्येष्ठ भ्राता तथैवच।
त्रयश्च नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम्॥"

इन श्लोकोंने ब्रह्मचर्याश्रमको देश निकाला दे दिया और—

"स्ववर्गात्पञ्चमे शत्रुः चतुर्थे मित्र संज्ञक।
उदासीनं तृतीयश्च भेदवर्ग त्रिधोच्यते।"

में शत्रु मित्र बनानेका फैसला कर दिया। कैसे आश्चर्यकी बात है कि नामके आद्यक्षरसे ही शत्रु मित्र पहिचान लिये? ऐसे अज्ञानने ही बेमेल विवाहकी जड़को पुष्ट कर वास्तविक भारतीय पवित्र विवाह-संस्कारके महत्वको समूल नष्ट कर दिया। लिखनेका तात्पर्य यह है, कि अनमेल विवाहने बड़ा ही उत्पात मचा रखा है। कहीं लड़का छोटा तो लड़की बड़ी; कहीं पति वृद्ध है तो पत्नी दुधमुँही बालिका है! कहीं लड़का कुरूप है, तो कन्या रूपलावण्य-सम्पन्ना है, और कहीं लड़का अत्यन्त रूपवान है तो लड़कीकी सूरत प्लेगको भी भड़कानेवाली है!! मूर्ख पतिके पल्ले विदुषी भार्या और विद्वानके हाथ अत्यन्त मूर्खा स्त्री सौंपी गई है। इस बेजोड़ विवाहका जो परिणाम हो रहा है, वह किसीसे छुपा नहीं है। इसकी बदौलत हमारे सैकड़ों युवक और युवतियां प्रतिवर्ष आत्म हत्या करके इस दुःखसे छुट्टी पाती हैं। बहुतेरे घरबार छोड़कर भाग जाते है—देवियाँ विधर्मों अथवा शूद्र पुरुषोंके साथ विदेश भाग जाती हैं या वेश्यावृत्तिको स्वीकार कर अपने पवित्र जीवनको नारकी जीवन बना लेती हैं। प्रत्येक घरमें कलह, झगड़ा, फसाद, लड़ाई आदि होता रहता है—जो घर स्त्री पुरुषके प्रेमके कारण स्वर्गसे भी अधिक आनन्ददायक बनने चाहियें, वे ही नरक बने हुए

हैं—युवक और युवतियोंके जीवित शरीर भस्म करनेवाले स्मशान हैं !! इस अनमेल विवाहने ही देशमें व्यभिचार बढ़ा रखा है क्योंकि पति पत्नियोंमें प्रेम नहीं, मेल नहीं, अच्छा जोड़ा नहीं। इसलिये पुरुष परस्त्री-गामी और स्त्रियाँ परपुरुषगामिनी हो जाती हैं। उनसे जो संतानें पैदा होती हैं, वे दम्पतिमें प्रेमका अभाव होनेके कारण क्रूर, मूर्ख, निर्बल और अल्पायु होती हैं। यहाँ यह बतलानेकी जरूरत ही नहीं कि उक्त सब कारण हमलोगोंको अल्पायु बना रहे हैं।

एक समय वह था कि महाराजा जनकने अपनी पुत्री देवी सीताके योग्य पति ढूंढ़ निकालनेके लिये एक अत्यन्त मजबूत धनुष चढ़ाकर तोड़नेके लिये रखा था—क्योंकि कन्यासे अधिक गुणोंवाला ही पति ढूंढ़ना था। हजारों राजकुमारोंने अपना बल आजमाया परन्तु सीतादेवीको कोई भी नहीं व्याह सका। अन्तमें सर्वगुण सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको तोड़कर उनका पाणिग्रहण किया। द्रौपदीके स्वयम्वरकी कथा भी इसी प्रकारकी ही है। इनके अतिरिक्त नल, दुष्यन्त, श्रीकृष्ण आदिके स्वयम्वर इस बातके प्रबल प्रमाण हैं, कि स्त्री पुरुष एक दूसरेकी इच्छाके अनुकूल ही चुने जाते थे। आजकलके लोग यह कहेंगे कि आज यह बात नहीं हो सकती, यह बेशर्मोंका धन्धा कैसे हो सकता है ? पिताके सामने कन्या यह कभी नहीं कह सकेगी कि मेरा अमुक पुरुषसे विवाह कर दो। ये बातें निस्सार हैं—यदि मातापिता अपने पुत्र पुत्रियोंकी विवाह

शादीकी चिन्ता छोड़ दें और यह काम उन्हींके सिपुर्द कर दें तः सारा झगड़ा ही तय हो जावे! जब उनकी उम्र आवेगी—वे गृहस्थाश्रमके योग्य होंगे, उनमें वीर्य रजकी पूर्णता होगी, तब स्वयम् अपने लिये पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको विवाहके लिये चुन लेगी। जैसा कि पहिले होता था। इस तरह यह सारा झगड़ा ही निपट जावेगा।

वे मातापिता जो अपनी सन्तानके विवाह संस्कारकी चिन्तामें सूखा करते है, मेरे विचारसे अज्ञानी हैं। हाँ पूर्ण वय प्राप्त होनेपर यदि कुंवारे रहे तो चिन्ता करना आवश्यक है। माता पिताको कोई अधिकार नहीं है कि वह अपने पुत्रपुत्रियोंके लिये जोड़ा तलाश करे। मेरे लिए एक वस्तुको दूसरा आदमी ही ढूंढ़ने जावे, यह कैसी असङ्गत बात है? यहाँ एक उदाहरण है कि सुरेन्द्रनाथ, व्रजेन्द्रकुमारका एक अभिन्न हृदयी मित्र है। सुरेन्द्रको एक वस्तुकी आवश्यकता हुई तो व्रजेन्द्र उसे बाजारमें जाकर अच्छीसे अच्छी लाया। उधर सुरेन्द्र भी उसी वस्तुको बाजारसे ले आया। जब दोनोंकी वस्तु मिलाई गई तो व्रजेन्द्र की उत्तम ठहरी किन्तु दूसरेके हाथकी खरीदी हुई होनेके कारण सुरेन्द्रको वह अच्छी भी उतनी प्रिय नहीं लगी जितनी कि उसे अपनी लाई हुई वस्तु सन्तोषप्रद हुई। यही बात विवाहके लिये भी लागू है—मातापिता कैसी ही अच्छी जोड़ी मिलादें किन्तु वह स्वयम् ढूंढ़ी हुई एक बुरी जोड़ीसे कदापि अच्छी नहीं हो सकती! यह एक मानी हुई, तथा स्वाभाविक बात

है। अपनी वस्तुको मैं खुद ढूंढूँ और प्राप्त करूँ इससे बढ़कर और आनन्दकी बात क्या होगी? अतएव माता पिताको चाहिये कि विना अपनी सन्तानकी पूर्ण सम्मतिके उनका विवाह संस्कार भूल कर भी न करें। आजकलके मा बाप जहाँ लड़कीके योग्य वरकी तलाश करने जाते हैं, वहाँ घरके आदमी कितने हैं? उसके यहाँ ढोर कितने हैं?—जेवर कितना है? मकान जायदाद कितनी है? बरतन भाँड़े कितने हैं? रुपया पैसा कितना है? इत्यादि ऊपरी बातोंकी बड़ी ध्यानसे जाँच पड़ताल करनेके बाद लड़के पर दृष्टि डालते हैं। यदि ऊपर लिखी बातें मन्शाके मुआफिक हुईं तो फिर लड़का छोटा है, कमजोर है, मूर्ख है, अङ्गहीन है, रोगी है, इत्यादि किसी भी बातका विचार न करके सगाई मङ्गनी कर दी जाती है—मानों अपनी लड़कीका विवाह घरके मनुष्यों, ढोरों, जेवरों, बरतनों और रुपयोंकी थैलियोंके साथ करते हों!!! धिक्कार है ऐसे वर-शोधनपर! लानत है ऐसे नीच पितापर! विवाह जैसे पवित्र संस्कार की दुर्दशा क्या हुई देश बर्बाद हो गया! सुख ऐश्वर्य कूचकर गया और हम लोगोंका अल्पायु हो गया!!!

महर्षि मनु कहते हैं कि—

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवतिप्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥"

अ० ३ श्लोक ४२

"उत्तम विवाहसे उत्तम सन्तान पैदा होती है और अधम

विवाहसे अधम प्रजा उत्पन्न होती है, इसलिये निन्दित विवाह नहीं करना चाहिये।" जहाँ रुपया पैसा ही विवाहका मुख्य साधन हो वहाँ उत्तम विवाहकी आशा करना ही भूल है। जहाँ सात सात आठ आठ वर्षकी भोली भाली कन्याओंके दसदस हजार रुपये लेकर उनके मातापिता ६० । ७० वर्षके वृद्धके पल्ले बाँध देते हैं, वहाँ क्या दशा होनी चाहिये इस बातका पाठक स्वयं विचार करलें। आप भारतवर्षकी वर्त्तमान विवाह प्रथाका थोड़ा बहुत हाल जान चुके हैं अतएव अब दूसरे देशोंके विवाह करनेके ढङ्ग भी देख लीजिये—

१ आसीरिया, देशमें प्रान्त भरकी कन्याएँ एकत्र करके उनका नीलाम सा किया जाता था। जो ज्यादः दाम लगाते वे ही ले जाते थे।

२ मूर लोग कन्याका विवाह बचपनमें ही कर देते हैं।

३ चीना लोग बेचनेकी वस्तुओंकी तरह अपनी कन्याएँ बेचते हैं।

४ सुमात्रामें पुरुष स्त्रीको मोल लेते हैं। बादमें यदि उन्हें यह विचार हो कि वह ठगाया है तो उस स्त्रीको जुएके खेलमें दूसरेको दे देते हैं। या बेच भी देते हैं।

५ तुर्क लोग एक साथ ४ स्त्रियाँ तक रख सकते हैं।

६ पश्चिम मार्त्तरींमें कन्याका मूल्य लगभग १५०) तक होता है।

७ तार्तर लोगोंकी एक दूसरी जातिमें—औरत घोड़ेपर चढ़

जाती हैं और विवाह करनेवाला उसे पकड़कर अपने घर ले जाता है।

८ साइबेरियामें विवाहकी रसोई होनेके बाद पत्नी अपने पतिकी जूती उसके पैरसे निकाल लेती है। अर्थात् मैं इसकी दासी हूँ।

९ साइबेरियाके एक दूसरे प्रान्तमें श्वसुर अपने जामाताको चाबुक देता है और बाद उस चाबुकसे अपनी पत्नीको खूब मारता है।

इस प्रकार अलग अलग देशोंके अलग अलग रिवाज हैं। हमारे शास्त्रकारोंने ८ प्रकारके विवाह बताये हैं, वहाँ ऐसे विवाहोंको निंद्य और त्याज्य कहा है। किन्तु हम देखते हैं, कि भारतवासियोंकी दशा उक्त प्रकारके विवाहोंसे गिरी हुई है !!

विवाह करनेके पूर्व वरवधु गुणसे स्वभावसे और वयसे विवाह संस्कारके योग्य हैं या नहीं इस बातका ध्यान अवश्य रखना चाहिये। उन दोनोंमेंसे एक भी अयोग्य हुआ कि सन्तान कदापि उत्तम पैदा नहीं हो सकती! इसी प्रकारके अयोग्य विवाहोंद्वारा आजकल सन्तान पैदा हो रही है, फिर भला दीर्घायु कैसे हो सकती है? लड़के लड़कीकी बहुत परीक्षाके बाद ही विवाह करना चाहिये क्योंकि यह कुछ दिनके लिये करारनामा (Agreement) नहीं है या विषय सुखका सट्टा नहीं है; प्रत्युत मरणपर्यन्त साथमें रहकर उत्तम सन्तान पैदा करने तथा पवित्र कार्यों के करनेका पवित्र अवसर है। विवाह

मनुष्यका कर्त्तव्य है—यह प्रकृतिकी भी आज्ञा है; इसलिये अविवाहित पुरुष आधा है—अपङ्ग है। घरमें रहना ही गृहस्थ धर्म नहीं हैं बल्कि भार्यासहित २५ वर्षतक सुख पूर्वक रहना ही गृहस्थ धर्म है। तात्पर्य यह है कि विवाह संस्कार बहुत ही सोच विचारकर करना चाहिये। अपने स्वार्थके लिये लड़के लड़कियोंके जीवनको नष्ट नहीं करना चाहिये। विवाह करनेके पहिले यह जान लेना चाहिये कि, कुल, विद्या, वय, शील, धन, रूप, और देश कैसा है। शुक्रनीतिमें भी यही कहा है

"आदौ कुलं परीक्षेत ततोविद्यां ततो वयः।
शीलं धनं ततोरूपं देशं पश्चाद्विवाहयेत्॥"

महर्षि मनु कहते हैं कि—

"अव्यंगांगी सौम्यनाम्नीं हंसवारण गामिनीम्।
तनु लोम केशदशनां मृद्वंगी मुद्वहेत् स्त्रियम्॥"

अ० ३ श्लो० १०

जो अङ्गहीन न हो, जिसका सुन्दर सीधा नाम हो, हंस और हाथीके समान चाल हो और जिसके रोम, केश, और दाँत छोटे हों ऐसी कोमल अङ्गवाली कन्याके साथ विवाह करना चाहिये। इसी प्रकार मनुजी इस विषयमें बहुतसे उपदेश देते हैं जिन्हें देखना हो वे मनुस्मृति अध्याय तीसरेमें देख सकते हैं। हमलोगोंको चाहिये कि हम अपने शास्त्रकारोंकी आज्ञानुसार अपने आश्रमोंमें सुधार करें।

अब आप आज कलके वर्त्तमान विवाहकी दशासे भी परि-

चित हो चुके हैं, ऐसी दशामें दीर्घायु पानेके लिये एक गृहस्थीका क्या कर्त्तव्य है इस बातका यहाँ विचार करना परम आवश्यक है। विदुर नीतिमें कहा है—

"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।"
(महाभारत उ० ३२ : ७०)

"काम, क्रोध, और लोभ ये तीनों नरकके द्वार है। इनसे हमारा नाश होता है अतएव इन्हें त्यागना चाहिये।" काम-वासनाको यहाँ नरक बताया है। यह बात बिलकुल सत्य है। यहाँ हमारे पाठकोंके मनमें यह प्रश्न होगा कि "यदि काम वासना नरक ही है तो गृहस्थी भी नरकका द्वार समझनी चाहिये। इसका उत्तर यह है कि जिसे हमलोग गृहस्थ माने बैठे हैं, वह वास्तवमें गृहस्थ नहीं हैं—वह तो व्यभिचार है, जो हम लोगोंको अल्पायु बनाकर मौतके मुखमें खींचकर ले जा रहा है। यह कामवासना ऐसी वस्तु है कि जितना इस ओर बढ़ा जावे उतनी ही उत्तरोत्तर लालसा बढ़ती जाती है। प्रकृतिने प्राणिका नाश भी उसीमें रख दिया है जो काम वासनाके रूपमें उन्हें सदा अपने वशीभूत रखती है। महर्षि मनु कहते हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्मेव भूय एवाभि वर्धते॥
अ० २ श्लो० ९४

"विषय भोगसे विषयकी वैसे ही शान्ति कदापि नहीं

हो सकती जैसे कि अग्निमें घृत डालनेसे अग्नि नहीं बुझ सकती!" अर्थात् विषयको कदापि नहीं बढ़ने देना चाहिये। आजकलका गृहस्थाश्रम तो गृहस्थाश्रम कहलाने योग्य ही नहीं है—इसको यदि "व्यभिचाराश्रम" या अधमाश्रम" कह दें तो अत्युक्ति न होगी। विवाह संस्कारके बाद स्त्रीपुरुष मैथुनमें संलग्न होते हैं—यदि कुछ समझदार या नासमझ युवक इससे बचना भी चाहते हैं तो उनके निर्लज्ज मातापिता या घरके अन्य लोग उन्हें जबरदस्ती किसी एक निर्जन कमरेमें बन्द कर देते हैं!!! कहिये क्या इसीका नाम गृहस्थाश्रम है? जो कार्य पति-पत्नी की इच्छासे प्रसन्नता पूर्वक होना चाहिये, उसी कार्यको आज हमारे इस अधम समाजमें जबरदस्ती कराया जाता है! कभी कभी हमारे अज्ञानी पतिपत्नी वीर्यकी अमूल्यताको न जानकर इसके खर्च करनेमें इतने भिड़ जाते हैं कि नित्य एकबार मैथुन किये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ती!! इन्द्रिय विषय जितना बढ़ाया जावे उतना ही वह बढ़ता जाता है—यह एक प्रकृतिका नियम है। फल यह होता है कि पहले वीर्य खर्च होता है, जब वह नहीं रहता तो अपक्क वीर्य जाने लगता है और जब आमदनीसे अधिक खर्चा हो जाता है तब उस जगह खून जाने लगता है और दम्पत्तिको वही आनन्द (!!) आता है जो वीर्य स्रावसे आता था। यह दशा घर घर देखी जाती है। विवाह जैसे पवित्र और उत्तर दायित्वपूर्ण संस्कारकी ऐसी अधोगति देखकर जितना दुःख होता है, वह लिखकर प्रदर्शित नहीं किया

जा सकता। कुछ लोग इससे भी बढ़े हुए हैं—एक रातमें दो तीन चार मैथुन करना उनका नित्य कर्म है—ये लोग अत्यन्त नीच और पतित हैं—इन लोगोंने दवाइयां खाखाकर अपना वीर्यपात करना ही अपने जीवनका उद्देश मान रखा है। मानव समाजमें ऐसे लोग धिक्कारने तथा मुँह न दिखाने योग्य हैं। स्त्री जातिके साथ इन अधम पुरुषोंका अन्याय है! स्त्री जातिको इन लोगोंने ऐशो आरामकी मैंशीन सी समझ रखा है। ऐसे लोगोंकी आयु विवाहके पश्चात् ४।५ सालसे अधिक नहीं होती। शीघ्र ही क्षय तथा अन्य दूसरे राज-रोगोंके शिकार बनकर इस लोकसे अपना मुँह काला करते हैं!

अब हमें यहाँ यह विचारना है कि "विवाह संस्कारके पश्चात् मैथुन कितने कितने दिनके अन्तरसे करना चाहिये?" इस विषयमें हमारे महर्षियोंकी आज्ञा है कि—

"ऋतौ भार्या मुपेयात्।"

मनुष्यको ऋतुगामी होना चाहिये। जब स्त्री रजस्वला हो और स्नान करके शुद्ध हो तभी उसे गर्भाधानके योग्य समझना चाहिये। कई जघन्य मनुष्य इतने नीच होते हैं कि ऋतुमती स्त्री से भी संभोग करनेमें नहीं चूकते। ऐसे मनुष्य अल्पायु तथा रोगमें पड़े हुए सड़ सड़कर प्राण त्यागते हैं। ऋतुमतीसे सम्भोग आयुनाशक है। अतएव रजदर्शनसे तीन दिनतक उसे स्पर्शमात्र नहीं करना चाहिये। यह एक साधारण नियम है कि स्त्री चौथे दिन शुद्ध हो जाती है परन्तु कभी कभी देखा

गया है कि इससे कम या अधिक दिन भी लग जाते हैं। सारांश यह कि ऋतुस्रावके दिनोंमें स्त्री प्रसङ्ग वर्जित है। अब वह शुद्ध हो तभी उसके साथ समागम होना चाहिये। समागम भी रजोदर्शनसे सोलह दिन तक ही होना चाहिये क्योंकि इन दिनों पुष्प, अर्थात् गर्भस्थानका मुख खुला रहता है बादमें बन्द हो जाता है। मुख बन्द होनेके पश्चात् वीर्यपात करनेसे सिवाय हानिके कुछ भी लाभ नहीं—मूर्खता है—नीचता है। मनुजी कहते हैं—

"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां, रात्रयः षोड़श स्मृताः।"

केवल सोलह रात्रियां ही ऋतुकाल माना गया है। उनमेंसे

"तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशीचया।
त्रयोदशीच शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः।"
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥

आदिका चार और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं, रात्रियाँ निन्दित हैं; शेष १० अच्छी हैं। युग्म अर्थात् छठी आठवीं, दसवीं, बारहवीं चौदहवीं और सोलहवीं रात्रिमें सङ्गम करनेसे पुत्र तथा ५ वी, ७ वीं ९ वी और १५ वीं रात्रिमें सङ्गम करनेसे कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। इन रात्रियोंके अतिरिक्त पर्व्व दिनकी रात्रियां भी वर्ज्जित हैं। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि हमारे भारतीय बन्धु पर्व दिनोंको पवित्र दिन या खुशीका दिन समझकर स्त्री सङ्गम करते हैं! यह कैसी भयानक भूल है! क्या ऐसे गर्भसे उत्पन्न बालक दीर्घायु पा सकते हैं? अमावस्या

पूर्णिमा और ग्रहण आदिके दिनोंको बचानेका ध्यान अच्छो प्रकार रखना चाहिये। नियम पूर्वक चलनेवाला गृहस्थ भी ब्रह्मचारी होता है।

"निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन्॥"

मनु० अ० ३ श्लो० ५०

जो मनुष्य निन्दित छः और अन्य आठ रात्रियोंमें स्त्री संसर्गको त्यागता है, वह ब्रह्मचारी ही होता है। गृहस्थ भी यदि चाहे तो ब्रह्मचारी हो सकता है। यह भाव इस श्लोकसे स्पष्ट हो रहा है।

ब्रह्मचारिणी कन्याका पाणिग्रहण संस्कार यदि ब्रह्मचारी ही के साथ किया जावे और वे ऋतुगामी ही होवें तो एक ही वारके सङ्गमसे उनके सन्तान हो जावेगी। यदि एक वारमें गर्भ नहीं रहा तो २। ४ वारमें अवश्य ही गर्भाधान हो जायगा। ऋतुस्नाता भार्यासे सङ्गम करनेके पश्चात् उसी मासमें २। ४ वार स्त्री समागम नहीं करना चाहिये। दूसरे समय रजस्वला होने तक प्रतीक्षा कीजिये। यदि वह रजस्वला न हो तो समझ लीजिये कि गर्भ रह गया, और रजस्वला हो जावे तो फिर गर्भाधान कीजिये कि इस प्रकार एक ब्रह्मचारी पुरुष ब्रह्मचारिणी स्त्रीमें अधिक से अधिक २। ४ वारके सङ्गम द्वारा ही गर्भस्थापित कर सकता है। जो ब्रह्मचारी नहीं हैं, उनके विषयमें कुछ भी निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता।

गर्भ रह जानेके पश्चात् कभी भी स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये। वे लोग अत्यन्त नीच और अधम हैं जो गर्भस्थितिके पश्चात् भी स्त्री जातिके साथ अन्याय करनेमें जरा भी लज्जित नहीं होते। लिखते हुए लेखनी लज्जित होती है, कि कई मूर्ख नृशंस बच्चा पैदा होनेके समयके कुछ पहिले तक भी अपनी पत्नीके साथ काला मुँह किये बिना नहीं रह सकते। गर्भावस्थामें स्त्रीके साथ मैथुन करनेका इतना भयङ्कर परिणाम होता है, कि गर्भस्थ सन्तान तो अल्पायु होती ही है बल्कि पतिपत्नी भी अपनी आयुको नष्ट कर देते हैं। अतएव सदैव ऋतुगामी रहिये। यदि आप ऋतुगामी ही रहेंगे तो आप गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मचारी ही हैं। जिन भाइयोंका ब्रह्मचर्य अज्ञानतासे नष्ट हो चुका है, उन्हें विवाह संस्कारके पश्चात् ब्रह्मचर्यसे रहनेका बहुत ही ध्यान रखना चाहिये। ऐसा करनेसे भी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त हो सकती है।

"रजस्वलां न गच्छेत गर्भिणीं पतिता तथा॥"

गर्भवती स्त्रीके साथ सम्भोग वर्जित करनेका यहाँ यह तात्पर्य्य नहीं है, कि उसको छोड़कर परस्त्री गमन आरम्भ कर दिया जावे। यह तो बड़ा ही बुरा काम है। पुरुषको सदा एक पत्नीव्रत और स्त्रीको सदा पतिव्रता रहना दीर्घायुका देनेवाला है। ऐसे जितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये संसारकी समस्त सिद्धियाँ सहजहीमें प्राप्त हो जाती हैं। सारांश यह कि अपनी पत्नीमें गर्भस्थापन करनेके पश्चात् ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है, कि ब्रह्मचर्य कबतक पालन करना चाहिये? इसका उत्तर यह है, कि जिस प्रकार गर्भवती स्त्री के साथ सङ्गम मना है, उसी तरह जबतक वह बच्चेको दूध पिलाती है तबतक उसके साथ विषय भोग नहीं करना चाहिये। स्तनपानके समयमें जो लोग इस नियमका अतिक्रमण करते हैं, उनकी सन्तान, रोगी, अल्पायु, निर्लज्ज और मूर्ख होती है। अतएव गर्भके ९ महीने तथा बालकके दुग्धपान तक अर्थात् दाँत न आनेतकके कमसे कम १२ महीने भी मान लिये जावें तो इस प्रकार २१ महीनों तक ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक दम्पतिको अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। बहुतसे अनुभवी डाक्टर वैद्य और हकीमोंका कहना कि "बालकोंको स्तनपान करानेके कारण स्त्री निर्बल बन जाती है—इतना ही नहीं, बल्कि उस समय स्त्री के सभी गर्भस्थान सम्बन्धी अवयव अच्छी प्रकार परिपक्व नहीं हो चुकते हैं, इसलिये स्त्रीको अधिक आराम देनेकी आवश्यकता है। इसकी अवधि कमसेकम १२ महीनेकी होनी चाहिये। इस प्रकार २१+१२=३३ महीने तक—पौने तीन वर्षतक पतिपत्नीको ब्रह्मचर्यसे रहकर बादमें गर्भाधान करना चाहिये। जो मनुष्य "प्रभुशासन" के इस नियमको पालते हैं, वे ही दीर्घायु पाते हैं और जो लोग इसकी परवाह नहीं करते, वे अपने कियेका फल भोगते हैं।

हमारे विषयी पाठक, गृहस्थाश्रममें रहकर ३३ महीनोंका अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेकी पढ़कर न जाने अपने

दिलमें क्या क्या सोचेंगे, परन्तु हमने तो जो बात आयुर्वेदमें तथा अनुभवी डाक्टरों, शरीर-शास्त्रज्ञोंके द्वारा सुनी, उसीको यहाँ लिखा है। साथ ही प्रकृतिका नियम भी ऐसा ही देखनेमें आता है। इस धर्मानुकूल ब्रह्मचर्य साधन पूर्वक गृहस्थाश्रममें रहकर मनुष्य सौवर्षसे भी अधिक आयु पा सकता है। जो लोग एक पत्नीव्रत रहते हुए नियम पूर्वक चलते हैं, वे अवश्य दीर्घायु पाते हैं। हमारे ग्राम आगर मालवामें एक ओंकारजी नाई नामक वृद्ध है, उसकी वय इस समय १०२ वर्ष की है। उससे बातचीत करने पर उसने हमें बार बार यह कहा कि—"मैं वीर्यरक्षाका बहुत ध्यान रखता था। मेरा विवाह संस्कार २० वर्ष की वयके लगभग हुआ था। कुछ वर्षों बाद ही मेरी पत्नीका देहान्त हो गया तब मैंने लोगोंके विशेष अनुरोध करने पर भी विवाह नहीं किया और ब्रह्मचर्य पूर्वक अपना जीवन बिताया। यह व्यक्ति अब भी मौजूद है। बिना चश्मेके खूब अच्छी तरह देखता है। कानोंसे खूब सुनता है। नित्य दोचार कोसकी मंज़िल भी करता है। दाढ़ें गिर गई हैं—आगेके दाँत अभीतक मौजूद हैं। वह स्वस्थ्य है। नीरोग है। यह दीर्घायु उसने एक पत्नीव्रत द्वारा प्राप्त की है। तात्पर्य्य यह कि मनुष्यको चाहिये कि जिसके साथ विवाह-संस्कार हुआ है, उसे छोड़कर अन्य स्त्रियोंमें—यदि बड़ी हों तो मातृभाव, छोटी हों तो पुत्रीभाव और बराबरवाली हों तो भगिनी भाव रखे। इससे बढ़कर आयु वृद्धिका दूसरा नुस्खा इस जगतमें कहीं नहीं

मिल सकता ! यहाँ एक उदाहरण देखिये—"कृषक भूमिमें बीज डालनेके पूर्व उसको जोतकर, खाद देकर तय्यार करता है—उत्तम बीजकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है। यह भूमि तथा बीजका ब्रह्मचर्य हुआ। बादमें ऋतु आनेपर ही उत्तम बीज खेतमें बोता है। यह ऋतुस्नानके साथ गर्भाधान समझिये। तत्पश्चात् वह बीजके द्वारा वृक्ष पैदा होने, पनपने और फलने फूलने तक उस भूमिमें कुछ नहीं बोता—बीज नहीं बोता—यहाँ तक कि फसल कट जानेके बाद कुछ महीनोंतक भूमिको पड़त रखकर उसकी नष्ट हुई शक्तिको उसमें पुनः उत्पन्न होने तक, उसमें बीज नहीं बोता। यह गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्य है। इसी प्रकार गर्भाधानसे लेकर ३३ महीने तक पुरुषको स्त्री-प्रसङ्ग नहीं करना चाहिये। नहीं तो उत्तम दीर्घायुषी सन्तान भी पैदा नहीं होगी और स्त्रीपुरुष भी अपनी अपनी आयु क्षीण कर लेंगे।

इसी प्रकरणमें हम पीछे लिख आये हैं कि आयुके ४ भाग चार आश्रमोंके लिये रखने चाहियें। २५ वर्ष ब्रह्मचर्यमें पूर्ण करनेके बाद २५ का गृहस्थ आश्रम है। २६ वें वर्ष यदि ब्रह्म-चारीका विवाह संस्कार हुआ तो उसके वानप्रस्थाश्रममें जाने तक उसका पुत्र भी २५ वर्षका ब्रह्मचारी होकर बादमें गृही बन जावेगा। वानप्रस्थाश्रममें सन्तान उत्पन्न करनेका कार्य करना वर्जित है। सारांश यह कि सारे जीवनमें आठ या नौ बारसे अधिक अपनी भार्यामें वीर्यपात नहीं करना चाहिये। क्योंकि धर्मशास्त्र और आयुर्वेद तीन वर्षमें एक बार स्त्री-

संगमकी आज्ञा देता है। ऐसे ब्रह्मचारी दम्पतिके एक वार सम्भोगसे गर्भ रहना अनिवार्य है। वाग्भट्ट लिख गये हैं कि—

"शुद्धं शुक्रार्त्तवंस्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः।
स्नेहैं पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शीलित वस्तिकम्।"

जिनके शुक्र और आर्त्तव शुद्ध हों, जो रोग रहित हों, परस्पर अच्छी प्रकार प्रेम करनेवाले हों; स्नेहन और पुंसवनके द्वारा स्निग्ध एवं शुद्ध हुए हों तथा वस्ति लेनेका अभ्यास हो, ऐसे जोड़ेसे ही उत्तम सन्तान पैदा हो सकती है। वहुतसे मनुष्योंका विश्वास है कि "अच्छी बुरी सन्तान तकदीरके हाथमें हैं, हम क्या कर सकते हैं।" आत्मशासन प्रकरणमें हमने इस विषयपर वहुत कुछ लिखा है। भली बुरी सन्तान, रूप कुरूप सन्तान, बुद्धिमान या मूर्ख सन्तान, रोगी या निरोगी सन्तान अल्पायु या दीर्घायु सन्तान, सारांश, यह कि शूर, डरपोक, कवि, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, गायन वादन विशारद जैसी इच्छा हो वैसी ही सन्तान मनुष्य पैदा कर सकता है। यहाँतक कि इच्छानुसार पुत्र और पुत्री तक पैदा करना भी मनुष्योंके हाथकी ही वात है—चाहे पुत्र पैदा करो या पुत्री! यह हमारा विषय नहीं हैं अतएव इसपर कुछ अधिक लिखना अनधिकार चेष्टा है। हमारे देशसे इस विद्याका चिरकालसे लोप हो चुका है अतएव लोग हमारे उक्त कथनपर वहुत ही कम विश्वास लावेंगे। देखिये सुश्रुतमें लिखा है कि—

"अहाराचार चेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपितादृशः।"

"जिस तरहके आहार विहार, आचार, और चेष्टा द्वारा स्त्रीपुरुष संयोग करेंगे, उसी प्रकारके आहार विहार और चेष्टा वाला बालक भी उत्पन्न होता है।" इन श्लोकोंपर विश्वास रखिये। यह बात अक्षरशः सत्य है। पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंको इस विद्याका पूर्ण ज्ञान था—गुरु इस विद्याकी भी शिक्षा देता था। इसी कारण वे सर्वगुण सम्पन्न होते थे। आज न तो वे गुरूजी ही हैं और न वैसे शिष्य हैं! आजकलके गुरुजी बेचारे स्वयं इस विषयमें मूर्ख हैं, शिष्योंको सिखावें क्या खाक? महाभारतमें जिन्होंने अभिमन्युके चक्रव्यूह भेदनकी शिक्षाकी कथा पढ़ी है, वे इस महत्वपूर्ण बातको अच्छी तरह जानते होंगे कि—"अभिमन्युके पिता अर्जुनने गर्भमें ही अपने पुत्रको चक्रव्यूह जैसे विकट व्यूहका तोड़ना सिखा दिया था!"

मनुष्यको मनमें यह निश्चय रखना चाहिये कि—"ब्रह्मचर्याश्रमकी अपेक्षा गृहस्थाश्रममें ब्रह्मचर्य रखनेका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।" क्योंकि यदि गृहस्थमें घुसकर वीर्यका अपव्यय आरम्भ कर दिया तो ब्रह्मचर्य रखा जैसा न रखा। प्रकृतिकी भी यही आज्ञा है, कि व्यर्थ ही वीर्यको नष्ट नहीं करना चाहिये। किसी भी पशुको देख लीजिये वह ब्रह्मचारी है, ऋतुगामी है और नियमित रीतिसे चलता है। गर्भवतीसे पशु कदापि सम्भोग नहीं करता। पशु हो कर भी वे इन नियमोंका

पालन करते हैं। यह मनुष्यके विचारने योग्य विषय है। वे अज्ञानी और मूक प्राणी जिस ईश्वरीय नियमके विरुद्ध आचरण नहीं करते। उसी प्रकृतिकी अवहेलना हम बुद्धिधारी मनुष्य करते हैं यह कितना अन्याय है? वृक्ष वनस्पतियाँ समय पर ही फलती फूलती हैं इत्यादि प्राकृतिक दृश्य हमें ब्रह्मचारी रहनेका निरन्तर उपदेश दे रहे हैं किन्तु शोक कि हम लोग इतने स्वार्थान्ध हो रहे हैं। परन्तु "ईश्वरीय शासन" को न माननेवाला व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। यही कारण हुआ, कि आज हमलोग अल्पायु रूप महादण्डको भोग रहे हैं। दीर्घायु पानेवाले व्यक्तिको प्रभुशासनका भय रखकर ही अपना प्रत्येक कार्य करना चाहिये।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्यके लिये वायुमण्डल दूषित है, उसी तरह गृहस्थाश्रमके लिये भी वायुमण्डल खराब है। जिधर देखिये उधर गृहस्थाश्रम व्यभिचार रूप बन रहा है। मातापिता भाई बन्धु, अड़ोसी पड़ोसी, कोई भी वास्तविक सच्चे गृहस्थ-धर्मका पालक नहीं है। आजकलके मित्रोंकी मित्रता उचित गृहस्थधर्म पालनके लिये न होकर व्यभिचारके लिये होती देखी जाती है। जब कभी मिलते हैं, तब वे ब्रह्मचर्यघातिनी चर्चा करते हैं, जिससे उनके मन दूषित हो जाते हैं, जो गार्हस्थ ब्रह्मचर्यके पालन करनेमें बाधक होते हैं। आजकलके वीर्य रोगोंसे दुखी होकर भी हमारे नवयुवक स्त्रीप्रसंग बहुत करते हैं, एक व्यक्तिको "स्वप्नदोष" का रोग है—उसे प्रति सप्ताह १

बार स्वप्नदोष होता है। वह व्यक्ति अपने वीर्यको स्वप्नमें व्यर्थ ही बर्बाद होता देखकर उसे शीघ्र शीघ्र स्त्री प्रसङ्ग द्वारा निकाल कर बड़ा ही प्रसन्न होता है। परन्तु यह उसकी भूल है। "स्वप्नदोष" के कारण मनुष्यको उसके डरसे डरकर वीर्यपात नहीं करना चाहिये बल्कि स्वप्नदोषको जड़से उखाड़-फेकनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। स्वप्नदोष जैसा रोग मिटानेके लिये आप विज्ञापनोंको मत ढूंढ़िये बल्कि बिना ओषधिके हटानेका प्रयत्न कीजिये। मुझे तो अफसोस है ऐसे वैद्यों और डाक्टरों पर, जो स्वप्नदोष रोगको अनिवार्य बतलाकर उसकी दवा स्त्री-प्रसङ्ग ही बताते हैं, ऐसे मूर्खोंसे सलाह लेना भी अनुचित है। लिखनेका तात्पर्य्य यह है कि विरोधी वायुमण्डलको ठीक करते हुए अपने सिद्धांतोंपर अटल हो जाइये। सच्ची लगनसे स्वप्नदोष, प्रमेह आदि वीर्य दोषोंको मिटानेकी चेष्टा कीजिये। इनके भयसे गृहस्थधर्मके ब्रह्मचर्यका नाश मत कीजिये। जो दोष हो उन्हें हटाइये और जो गुण हों, उन्हें ग्रहण कीजिये। ऐसा करनेसे आप अवश्य दीर्घायु पावेंगे।

इसके लिये आप मेरी लिखी हुई "स्वप्नदोष" नाम्नी पुस्तक देखिये।
—लेखक

प्राणायाम

"प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा।"

(२।१६।१)

अथर्व वेदका उक्त मन्त्र प्राण और अपान दोनों वायुका महत्व वर्णन कर रहा है अर्थात् "प्राण अपान मुझे मृत्युसे बचावे'।" दीर्घायु दिलानेकी ताकत अपान और पान वायुमें है, यह इससे स्पष्ट हो रहा है। और देखिये—

"प्राणायनमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।"

अथर्व ११-४-६

"जिसके आधीन (इदं सर्वं) यह सब जगत है, उस प्राणके लिये मेरा नमन है! वह प्राण सबका ईश्वर (भूतः) है और उसमें सब जगत (प्रतिष्ठितं) वर्त्तमान है।" यहाँ यह "प्राण" शब्द परमात्माकी विश्वव्यापक-जीवनशक्ति (Life energy) का सूचक है। परमात्माकी इस जीवन-शक्तिके अधीन यह सारा संसार है। प्राणीमात्रके प्रत्येक शरीरमें जो जो इन्द्रियादिक शक्तियाँ तथा विभिन्न इन्द्रियां और अवयव हैं, वे सभी प्राणके वशमें हैं। प्राणके आधीन ही सब शरीर है। शरीरमें प्राण ही इन्द्रियों और सब अवयवोंका ईश्वर है—क्योंकि वही इस जगतका

आधार है। प्राणके विना इस शरीरकी स्थिति नहीं है। प्राणको वशमें करनेसे सब शरीर सुदृढ़ और निरोग रह सकता है। जब प्राण ही वशमें हो गये तो मृत्यु भी वशमें ही समझिये।

अपने शरीरमें श्वास प्रश्वास की जो क्रिया निरन्तर होती रहती है, इसीका नाम प्राण है। जन्मसे मरणपर्यन्त प्राण अपना कार्य करता है। समस्त इन्द्रियों और अवयवोंके मर जानेके पश्चात् भी कुछ देरतक प्राण अपना कार्य करता रहता है—अतएव सबमें प्राण ही मुख्य है और वह सबका आधार है। जो लोग अपने प्राणको साधारण श्वास समझते हैं, वे भूलते हैं। इसे दिव्यशक्तिका पवित्र अंश समझना चाहिये। मनकी इच्छा शक्तिसे प्रेरित प्राण समस्त शरीरको आरोग्यता प्रदान करनेमें समर्थ होता है; इस कारण प्राणका महत्व इस शरीरमें अधिक है। प्रत्येक मनुष्यको अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि—

"प्राणके आधीन मेरा यह सारा शरीर है। प्राणके कारण ही यह स्थिर है—इसकी समस्त हलचल प्राणकी प्रेरणासे ही होती है—ऐसे प्राणकी मैं उपासना करूँगा और इसे अपने वशमें करूंगा। प्राणायामसे उसे प्रसन्न करूंगा और वशीभूत प्राणद्वारा इच्छानुसार अपने शरीरमें कार्य करूंगा। इस प्रकार एक न एक दिन मैं मृत्युपर विजयी बनकर दीर्घायु प्राप्त करूंगा।" इस भावनाको मनमें धारण करके प्राणशक्ति को अपने काबूमें करना चाहिये। इस अत्यन्त बलवान प्राणको

अपने काबूमें करनेके लिये एकमात्र यदि कोई उपाय है तो वह "प्राणायाम" ही है।

जिस तरह एक मदोन्मत्त हाथीको एक छोटासा लोहेका अङ्कुश अपने वशमें रखकर नाच नचाता है, उसी तरह प्राणको अपने वशमें करनेके लिये प्राणायाम ही अंकुशका काम देता है। प्राणायामका अर्थ केवल श्वासका निरोध ही नहीं है बल्कि जिस जीवनशक्तिके द्वारा फेफड़ोंको गति मिलती है, उस शक्तिको अधीन करना है। अतएव जितना प्राणका नियम होता जायगा, उतना ही शरीरके स्नायुओंपर हमारा अधिकार जमता जावेगा। जीवात्माकी शक्ति देहपर आकर कार्य करने लगती है, उस समय देहाकाशसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। यही प्राणश्वास और उच्छ्वासके रूपमें हमें दृष्टि आता है। प्राणका आयाम अर्थात् विस्तार करना ही प्राणायाम है। प्राणकी मर्यादाको विस्तृत करनेका नाम ही प्राणायाम है। प्राणायामकी क्रियामें प्रान और अपानका संयोग होता है और इससे प्राण अपानकी शक्ति बढ़ती है। यही कारण है कि याज्ञवल्क्यादिने प्राणायामका लक्षण प्राण तथा अपानका संयोग ही किया है। इस विषयमें अथर्वका यह मन्त्र विचारने योग्य है।

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य १ न्यो वातु यद्रपः।"

४।१३।२

(इमौ) यह (द्वौ) दोनों (वातौ) प्राण और अपान वायु (असिन्धोः) वहनेवाले इन्द्रिय देशतक और (आपरावतः) बाहिर दूरस्थानतक (वातः) चलते रहते हैं। (अन्यः) एक अर्थात् प्राणवायु (ते) तेरा (दक्षम्) वृद्धि करनेवाले बलको (आवातु) वहाकर लावे और (अन्यः) दूसरा अपानवायु (यत् रपः) जो दोष है इसे (विधातु) वहाकर निकाल देवे। प्राण बाहिरसे अन्दर जाता है यह उसकी "आन्तरिक गति है बादमें जो श्वास अन्दरसे बाहिर आता है यह उसकी "बाह्य-गति" है। इसका नामही श्वासोच्छ्वास है। उच्छ्वासको प्रश्वास भी कहते हैं। इन दोनों गतियोंसे यह प्राण, देहका सञ्चालन कर रहा है। प्राण निरोधसे अपनी सञ्चालक शक्तिकी स्वाधीनता होती है। "यह हमारा प्राण, विश्वव्यापक सञ्चालक शक्तिका ही एक अंश है।" इस भावनाको हृदयमें धारण करके ही प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये।

जिस प्रकार इस शरीरमें प्राण है, उसी प्रकार बाहिर भी सर्वत्र प्राण है। अर्थात् यह प्राणमय जगत है। बिना प्राणके इस जगतकी स्थिति ही नहीं। हमारे शरीरमें प्राण उस वायुका नाम है, जो नासिकाद्वारा छातीमें पहुंचता है। अपान उस वायुका नाम है जो नाभि देशसे नीचे गुदातक कार्य करता है। प्राणको स्वाधीन रखनेका मतलब प्राण और अपानको वशमें रखनेसे है। अपानपर आधिपत्य स्थापित करनेसे मल-मूत्रोत्सर्ग उत्तम रीतिसे होता है और प्राणकी स्वाधीनतासे

रक्त शुद्धि होती है—इस प्रकार दोनोंपर अधिकार प्राप्त कर लेनेसे शारीरिक स्वास्थ्य अत्युत्तम रहता है। इस तरह प्राणके वशीभूत होनेपर यह अनुभव होने लगता है, कि हमारा सारा शरीर प्राणके अधीन है। शरीरका कोई भाग प्राणशक्तिके विना कार्य नहीं कर सकता अतएव शरीरके सब अवयवोंमें सब प्रकारका कार्य करनेवाले प्राणका सदा ही सत्कार करना चाहिये। हरएक व्यक्तिको उचित है, कि वह प्राणकी शक्तिका ध्यान करे—विश्वास पूर्वक इस शक्तिको स्मरण रखे क्योंकि दीर्घायु इसीपर अवलम्बित है। इस प्राणशक्तिका इतना महत्व है कि इसकी मौजूदगीमें ही दवाइयां भी काम करती हैं परन्तु इसकी शक्तिके निर्बल होनेपर कोई औषधि भी असर नहीं करती। यह प्राण ही सब औषधियोंका औषध है—महौषध है। वेद कहता है—

"याते प्राण प्रिया तनुर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥" (अथर्व)

"हे प्राण! जो तेरा (प्राणमय) प्रिय शरीर है और जो तेरे (प्राणापानरूप) प्रिय भाग हैं; तथा जो तेरा औषध है वह (जीवसे) दीर्घजीवनके लिये हमें दो।" अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पाँच कोश हैं। इन्हें ही पाँच शरीर भी कहते हैं। इन पाँचोंमेंसे 'प्राणमय' शरीरका वर्णन इस मन्त्रमें किया है। "प्रियतनु" का अर्थ यह प्राणमय कोश ही है। सभी इसपर प्रेम करते हैं; सब चाहते हैं कि यह

प्राणमय शरीर रहे। प्राण और अपान ये इस शरीरके दोनों प्रेममय कार्य है। प्राणसे शक्तिकी वृद्धि होती है और अपान द्वारा विषको दूर करके स्वास्थ्यका संरक्षण होता है। प्राणके अन्दर एक प्रकारका "भेषजं" अर्थात् औषध हैं। औषध और भेषज शब्दोंका अर्थ दोषोंको दूर करनेकी शक्ति है। शरीरके दोष दूर करना और शरीरमें आरोग्यता स्थापित करना यह पवित्र कार्य प्राणका ही है। "प्राण ही महौषध है" वेदके इस उपदेशपर अवश्य विश्वास रखना चाहिये। क्योंकि यह विश्वास झूँटा विश्वास—अन्ध विश्वास नहीं हैं। मानस चिकित्साका यह मूल है—यह बात ध्यानमें रखकर इस वेद-मन्त्र पर विचार करना चाहिये। अपनी प्राणशक्तिसे अपनी ही चिकित्साकी जा सकती है। मैं अपनी प्राणशक्तिसे रोगोंका अवश्य निवारण करूंगा, यह भाव मनमें धारण करनेसे बड़ा ही लाभ होता है। अपनी प्राणशक्तिपर निश्चय विश्वास रखनेवाला व्यक्ति ही दीर्घायु होता है।

जिस प्रकार पुत्रकी, पिता रक्षा करता है उसी तरह प्राण सबकी रक्षा करता है। प्राणियोंके शरीरमें नस नाड़ियों द्वारा जाकर वहाँ उनकी रक्षा करता हैं। न केवल प्राणियोंकी ही यह प्राण रक्षा करता है बल्कि स्थावर पदार्थोंका रक्षक भी यही हैं। अर्थात् श्वासोच्छ्वास वाले प्राणी ही प्राणधारी हैं यह समझ लेना भूल है; प्रत्युत वृक्ष वनस्पति पत्थर आदि पदार्थोंमें प्राण है—इन सब पदार्थोंमें रहकर भी प्राण सबकी रक्षा करता

है। प्राणको पिताके समान पालक मानना चाहिये और उसे सर्वव्यापक समझना चाहिये। जिस समय प्राण नहीं रहता, उसी अवस्थाका नाम मृत्यु है। शरीरमेंसे प्राणशक्तिके निकल जानेपर मृत्यु होती है। जबतक शरीरमें प्राण कार्य्य करता है, तभी तक शरीरमें सहनशक्ति और सामर्थ्य रहती है। सारांश यह कि प्राण ही जीवन है और प्राणका अभाव ही मृत्यु है। समस्त इन्द्रियाँ प्राणकी उपासना करती हैं—प्राणके साथ रह-कर अपने अन्दर बल प्राप्त करती हैं। जो इन्द्रिय प्राणके साथ रहकर बल वृद्धि करती है, वह कार्यक्षम बन जाती है परन्तु जो इन्द्रिय प्राणसे विमुक्त होती है, वह मर जाती है—यही प्राणकी उपासना है।

वेदमें प्राणको "रुद्र" कहा है। प्राणकी उपासना ही रुद्र, महादेव, शम्भु आदिकी उपासना है। सब देवताओंमें महादेवकी शक्ति कितनी बलवान है, यह बात प्राणकी उपासनासे प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है। मनुष्यके शरीरमें प्राण ही शङ्करकी विभूति है। सब जगतमें उसका विश्वव्यापक रूप प्राण ही है। इस व्यापक प्राणशक्तिके आश्रय ही इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवता अपना कार्य करते हैं। प्राणोपासनाका मुख्य अङ्ग प्राणायाम ही है। प्राणकी उपासनासे उत्तम लोक अर्थात् श्रेष्ठता प्राप्त होती है अतएव मनुष्योंके लिये प्राणायाम एक आवश्यक बात है।

गर्भस्थजीव भी वहाँ प्राण और अपान द्वारा जीवन धारण

करता है। माताके गर्भमें जीव प्राणरूप रहता है, इसी लिये प्राणको "मातरिश्वा" भी कहते हैं। प्राणका विचार करनेसे ऐसा पता लगता है, कि उसके आधारसे भूत, भविष्य और वर्त्तमानका सभी जगत रहता है। प्राणके विना जगतमें किसीकी भी स्थिति नहीं हो सकती! पूर्वजन्म, यह जन्म और पुनर्जन्म ये सब प्राणहीके कारण हैं अर्थात् भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालमें जो कर्मके संस्कार प्राणमें सञ्चित होते हैं, उसके कारण यथायोग्य रीतिसे पुनर्जन्मादि होते हैं। जो मनुष्य प्राणकी शक्तिका वर्णन श्रद्धासे सुनता है, प्राणके बलको विश्वाससे जानता है, प्राणका बल प्राप्त करनेमें यशस्वी होता है और जिस मनुष्यमें प्राण उत्तम रीतिसे प्रतिष्ठित और स्थिर रहता है, उसका ही सब सत्कार करते हैं, उसकी स्थिति उत्तम लोकमें होती है और उसीका सर्वत्र यश फैलता है। प्राणायाम द्वारा जो अपने प्राणको प्रसन्न और स्वाधीन करता है, उसकी आयु कीर्त्ति, यश और बल बढ़ता है। देवता लोग भी प्राणकी ही उपासना करते हैं। इस बातका अनुभव अपने शरीरमें ही किया जा सकता है—नेत्र, कर्ण, नासिका आदि सभी देव प्राणकी ही पूजा करते हैं। इसकी पूजासे ही वे शक्ति सम्पन्न होते हैं। इसी प्रकार प्राणायामका साधन करनेवाले व्यक्तिका अन्य सज्जन सत्कार करते हैं और उसके उपदेशसे प्राणोपासनाका मार्ग जानकर स्वयं बलवान बन सकते हैं। यही कारण है, कि प्राणायाम करनेवाले योगीकी सब लोग प्रशंसा करते हैं।

इस शरीरमें आठ चक्र हैं—जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है। मूलाधार, स्वाधिपान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्राक्षर ये आठ चक्रोंके नाम हैं। ये आठों क्रमशः गुदा स्थानसे लगाकर मस्तकके ऊपरके भाग तक अपने अपने स्थानोंमें स्थित हैं। पृष्ठके मेरुदण्डमें इन सबकी स्थिति है। प्राण इन प्रत्येक चक्रोंमें जाता है और वहाँ अपना काम करता है। जो सज्जन प्राणायामका अभ्यास करते हैं, उनको प्राणके चक्रोंमें पहुँचनेका अनुभव होने लगता हैं—वहाँकी स्थिति भी मालूम पड़ने लगती है। सबसे ऊपर सहस्राक्षर चक्रका स्थान है—यही मस्तिष्कका मध्य और मुख्य भाग है। प्राणका एक केन्द्र हृदयमें है। इस प्रकार एक केन्द्रके साथ आठचक्रोंमें यह सहस्र आरोंद्वारा आगे और पीछेकी तरफ गतिवाला यह प्राणचक्र है। श्वासोच्छ्वास—प्राण अपान द्वारा, प्राणचक्रकी आगे और पीछे गति होती है। पाठकोंको चाहिये कि वे इन बातोंको जानने और अनुभव करनेका प्रयत्न करें। प्राणका एक भाग शरीरकी शक्तिके साथ सम्बद्ध है और दूसरा आत्माकी शक्तिके साथ सम्बन्ध रखता है। शारीरिक शक्तिके साथ सम्बन्ध रखनेवाले प्राण भागका ज्ञान प्राप्त कर लेना बड़ा ही सुगम है परन्तु आत्म-शक्तिके साथ मिले हुए प्राण भागका जान लेना बहुत ही मुश्किल हैं!

सब इन्द्रियाँ आराम लेती हैं, आलसी बनती हैं, सो

ज़ाती हैं और नीचे गिर जाती हैं परन्तु प्राण रात-दिन खड़ा रहकर जागता है। मानो इस शरीररूपी गृहमें रातदिन जागकर पहरा देता है। कभी सोता नहीं, कभी आराम नहीं लेता और अपने कार्यसे भी कभी मुँह नहीं छुपाता। सब इन्द्रियाँ सोती हैं, परन्तु प्राणका सोना आजतक किसीने भी नहीं सुना! अर्थात् जरा सी देर भी आराम न लेता हुआ यह प्राण निरन्तर कार्य करता रहता है। रातदिन उद्योगमें भिड़े रहनेके कारण ही इसने इतनी उच्चता प्राप्त करली है।

जब मनुष्यकी प्राणशक्ति बलवती होती है, तब वीर्य बढ़ता है और स्थिर होता है। वीर्य और प्राण ये दोनों शक्तियाँ साथ साथ रहती हैं। शरीरमें वीर्य्य रहनेसे प्राण रहता है और प्राणके साथ वीर्य भी रहता है। इस प्रकार ये शक्तियाँ एक दूसरेके आश्रयसे रहती हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रत पालन-द्वारा ऊर्ध्व रेता बनते हैं, उनका प्राण भी बलवान बन जाता हैं—उन्हें सहजहीमें, आसानीसे प्राणायामकी सिद्धि प्राप्त होती है। जो प्रारम्भसे प्राणायामका अभ्यास नियम पूर्वक करते हैं, उनका वीर्य स्थिर हो जाता है। यदि किसी मूर्खताके कारण बचपनमें ब्रह्मचर्य व्रत भङ्ग हो गया हो तो भी वह नियम-पूर्वक अनुष्ठानकर प्राणायाम द्वारा अपने शरीरमें प्राणशक्तिकी वृद्धि तथा वीर्य-रक्षा कर सकता है। जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट न हुआ हो उसको अनायास ही शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

प्रत्येक मनुष्यको यह देखना चाहिये कि अपने आचरणों-

द्वारा प्राणका बल बढ़ रहा है या घट रहा है ? अपने प्राणोंकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है या घट रही है ? प्राण सम्बन्धी व्यवहार उत्तम रीतिसे चल रहे हैं अथवा किसीमें कोई त्रुटि है ? इन बातोंका विचार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है; क्योंकि बिना विचार किये मनुष्यको प्राण-विषयक ज्ञान होना असम्भव है। इन्द्रियोंके भोग भोगनेके लिये जो शक्ति खर्च हो रही है, उसमेंका अधिकांश प्राणशक्ति बढ़ानेके लिये व्यय होना चाहिये। आजकल यह देखनेमें आता है, कि इन्द्रिय भोगोंमें ९९ प्रतिशत शक्ति खर्च होती है तो प्राण सम्वर्द्धनार्थ सिर्फ १ प्रतिशत शक्तिका व्यय होता है। इन्द्रियोंके स्वामी प्राणके लिये कुछ भी शक्ति खर्च नहीं होती है और इन्द्रियोंके लिये सम्पूर्णशक्ति व्यय हो रही है। नियम तो यह है कि मुख्यके लिये विशेष और गौणके लिये कम होना चाहिये। किन्तु आजकल उलटा व्यवहार चल रहा है, इसलिये इस विषयमें अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये। अपने दैनिक कृत्यका समय-विभाग ऐसा बनाना चाहिये, कि जिसमें समयका बहुतसा हिस्सा प्राणशक्तिके बढ़ानेमें लगाया जावे।

यह प्राण राजा है—शरीर इसकी राजधानी है—इंद्रियाँ इसकी दासियाँ हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखकर विचार कीजिये। समझ लीजिये, कि अपना यह प्राण सचमुच राजा है। जब आपके घरमें राजा ही अतिथि रूपसे आता है, तब आप राजाका आदर सत्कार बड़ी ही सावधानीसे करते हैं। यद्यपि

उसके कर्मचारियोंकी ओर भी ध्यान देना पड़ता है तथापि उतना नहीं जितना कि राजाकी ओर। यही बात यहाँ पर भी है। इस शरीरमें प्राण नामक राजा अतिथि आया है और उसके कर्मचारी गण इंद्रियाँ हैं। इसलिये प्राणकी सेवा सुश्रुषा अधिक करनी चाहिये क्योंकि वह प्रसन्न रहा तो सारे कर्मचारी भी ठीक रह सकते हैं। परंतु यदि राजा असंतुष्ट होकर चला गया तो किसी कर्मचारी की शक्ति नहीं जो आपकी सहायता कर सके। देखिये वेदमें भी यही बात लिखी है—

"राजा मे प्राणः।" यजु० अ० २०।५

आजकल लोग इन्द्रियोंके भोग बढ़ानेमें लगे हुए हैं। अपनी प्राण शक्ति बढ़ानेका कोई भी विचार नहीं करता! यह कितने आश्चर्यकी बात है। यही कारण है कि प्राण अप्रसन्न होकर शीघ्र ही इस शरीरको छोड़कर चला जाता है—इसीको अल्पायु कहते हैं। शरीरमें चिरकाल तक प्राणदेवका निवास ही दीर्घायु है और उसका शीघ्र रुष्ट होकर चला जाना ही अल्पायु है। जब प्राण ही शरीरको छोड़ने लगता है तब इन्द्रियाँ उसके पहिले ही अपना कार्य बन्द कर देती हैं। यह बात बहुत ही विचारने योग्य है। सारांश यह कि इन्द्रियोंके भोग भोगनेमें कम शक्ति व्यय करना चाहिये और अपना संपूर्ण बल प्राणकी शक्ति बढ़ानेमें खर्च करना चाहिये। अपने प्राणको बुरे कार्योंमें संलग्न करनेसे बड़ी हानि होती है। स्वार्थ तथा खुद गर्जीके कामोंमें लगे रहनेसे प्राण शक्तिका संकोच होता है

और जनताके हितमें अर्थात् परोपकारमें प्रवृत्त होनेसे प्राणकी शक्ति विकसित होती है। आशा है, कि पाठक इस प्रकारके शुभ कर्मोंमें अपनेको समर्पित करके अपने प्राणकी शक्तिको विशाल बनायेंगे। मनुष्योंको स्वार्थ त्यागकर परोपकारमें लग जाना चाहिये। यही दीर्घायु होनेका उपाय है।

भूलोक अर्थात् पृथ्वी और भुवर्लोक अर्थात् अन्तरिक्ष-ये दोनों प्राणके स्थान है। वायु और प्राणका स्थान एक ही है। दोनों ही अन्तरिक्षमें रहते हैं। वसन्तऋतु प्राणका ऋतु है, क्योंकि इस ऋतुमें प्राण-शक्तिका संचार होकर समस्त प्राणियों में नवजीवनका संचार होता है। यही प्राणदेवका अवतार है, प्राणके संचारसे जगतमें कितना परिवर्त्तन होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव वसन्तकाल है। इस ऋतुमें सब वृक्ष आदि नूतन पल्लवोंसे सुशोभित होते हैं और फलोंसे युक्त होकर पूर्णताको प्राप्त होते हैं। फल-फूल और पल्लव ही इस सृष्टिके नवजीवन की साक्षी देते हैं। यह प्राणदायिनी ऋतु है, इसीलिये इस ऋतुको "ऋतुराज" कहा जाता है।

प्राण कोई खण्ड-खण्ड या अलग-अलग वस्तु नहीं है। यह संख्याबद्ध या असंख्य नहीं है। जिसे हम अपने शरीरके अन्दर ग्रहण करते हैं, वह सार्वभौमिक प्राणका एक हिस्सा है— प्राणका ज्ञान रखनेके लिये यह बात ध्यानमें रखना आवश्यक है। सारे अन्तरिक्षमें प्राण भरा हुआ है। उसमेंसे थोड़ा सा प्राण हमारे शरीरको जीवन दे रहा है। हम प्राणके अगाध

सागरमें पड़े हैं और आवश्यकतानुसार उसमेंसे अपने शरीरमें धारण करके जीवित हैं। इस प्राणको हम नासिका मार्ग द्वारा श्वास प्रश्वास रूपमें अपने शरीरमें धारण करते हैं।

इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना ये तीनों नाड़ियां हमारे शरीरमें मुख्य हैं! यही त्रिवेणी है। इन्हींका नाम क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती हैं। अर्थात् सुषुम्ना सरस्वती है। इसमें ही प्राणकी प्रेरक शक्ति है। जिन्हें त्रिवेणीमें जाकर स्नान करनेकी इच्छा हो, वे इस शरीरस्थ त्रिवेणीमें ही घर बैठे स्नान कर अपना पाप धो डालें।

प्राण बहुत प्रकारके हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान–ये मुख्य प्राण है। प्राणका निवास हृदयमें हैं, अपानका गुदा प्रान्तमें, नाभिस्थानमें समान, कंठमें उदान और इस सारे शरीरमें व्यान है। प्राणशक्तिका विस्तार महान है। जिसका पूर्ण वर्णन करना हमारी लेखनीकी शक्तिके बाहर है। लिखनेका तात्पर्य यह है, कि प्राणकी महान शक्तिसे अपने शरीरको बलवान बनाकर मृत्युपर पूर्ण विजय प्राप्त करनी चाहिये। अथर्व वेदका यह उपदेश याद रहना चाहिये कि—

"जरिम्णः शेवधिः इह वर्धतां।" ७।५३।५

"वृद्ध आयुका कोष यहाँ वृद्धि पाता रहे।" अर्थात् उम्र घटने नहीं पाये और बढ़ती ही रहे—लोग अल्पायुषी न हों और दीर्घायु पावें। उक्त वेद-वाक्यसे एक ध्वनि और भी निकलती है कि "आयु निश्चित नहीं है। घट बढ़ सकती है।" यदि ऐसा

न होता तो वेद यह बात कभी नहीं लिखता। जो व्यक्ति अपनी आयु बढ़ाना चाहेगा उसे आयुवर्द्धक सुनियमोंका पालन करना पड़ेगा। अपना अभ्युदय करनेका यत्न करना चाहिये—अवनतिकारक कार्य कदापि नहीं करना चाहिये। जीवनके लिये प्राणके बलकी बड़ी ही जरूरत है—प्राणका बल बढ़नेसे ही दीर्घायु प्राप्त होता है। यह शरीर एक पवित्र रथ है, जिसमें इन्द्रियरूपी १० घोड़े जुते हुए हैं। इस रथमें प्राणरूपी अमृत है—इसीलिये इसको सुखमयरथ कहा जा सकता है। इस सर्वश्रेष्ठ रथपर आरूढ़ होकर अपनी उन्नतिके पथपर तेजीसे आगे बढ़ो! जब तुम बल और दीर्घायु प्राप्त कर लोगे तब तुम दूसरोंको उपदेश दे सकोगे। हमको स्वार्थी न बनकर दूसरोंकी उन्नतिमें ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये। प्राणायामादि साधनों द्वारा, दीर्घायु, आरोग्यता, अद्वितीय पुरुषार्थ, सूक्ष्म बुद्धि और विशाल मन प्राप्त करनेके पश्चात् मनुष्यको अपना जीवन सार्वजनिक हित-साधनमें लगा देना चाहिये।

प्राणायामादि द्वारा प्राण शक्तिकी वृद्धि करना मनुष्यके लिये एक आवश्यकीय बात है। बहुतसे विद्वान आयुको परिमित और निश्चित मानते हैं और कहते हैं कि "यमदूत सर्वदा सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं। वे आयुकी समाप्तिपर प्राणीका प्राण हरण कर लेते हैं अतएव आयु बढ़ नहीं सकती।" इस मतका वेदमें खण्डन है—वेद कहता है कि जो कोई यमदूत इस सृष्टिमें भ्रमण करते होंगे उन्हें भी प्राणके अनुष्ठानसे दूर भगाया जा

सकता है। इस विषयमें मनुष्य पराधीन नहीं है। उचित अनुष्ठान द्वारा प्राणकी शक्ति बढ़ाइये और फिर देखिये कि आप यमदूतोंसे डरते हैं या यमदूत आपसे डरकर भागते हैं! प्राणोपासना करनेवालेका यमदूत कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। यह अभयदान हमें वेद दे रहा है। इस विचारको मनमें दृढ़ता पूर्वक धारण करके निर्भय हो जाना चाहिये और बादमें प्राणायाम द्वारा प्राणका पूजन कर, उसे प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे आप निस्संदेह दीर्घायु प्राप्त कर लेंगे। प्राणायाम द्वारा सब प्रकारकी व्याधियाँ, दोष और रोगोंके मूल कारण दूर हो जाते हैं। दुष्ट भाव, बुरे आचरण, प्राकृतिक नियमोंके विरुद्ध व्यवहार आदि सारे दोष प्राणायाम द्वारा दूर हो जाते हैं। सब प्रकारके रोगोंके बीज शरीरसे निकल जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों द्वारा अन्धकारको नष्ट करता है उसी तरह मनुष्य प्राणायामके प्रभावसे सब रोगोंके बीजोंको दूर कर सकता है। बृहदारण्यकोपनिषद् ३।६।६ में कहा है—

"कतम एकोदेव इतिप्राणइति।"

"एक देव कौनसा है? वह प्राण?" छांदग्योपनिषद् ७।१५।१ में कहा है कि—

"प्राणोह पिता, प्राणोमाता, प्राणो भ्राता,
प्राणस्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः।"

"प्राण ही माता, पिता, भाई, बहिन, आचार्य, ब्राह्मण आदि है।" ये शब्द प्राणके महत्वको बता रहे हैं। प्राणके

विषयमें उदासीन रहना ही अपने हाथों अपनी आयुको घटाना है। ऐसा कौन व्यक्ति है जो स्वर्ग प्राप्तिकी इच्छा न करता हो। यह प्राण ही स्वर्गलोक है। यह बात झूठ नहीं समझिये। देखिये बृहदारण्यक-उपनिषद् १।५।४ में लिखा है—

"वागेवायंलोकः मनोऽन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौलोकः।" वाणी पृथ्वीलोक है, मन अन्तरिक्ष लोक है और प्राण स्वर्गलोक है। प्राणायामके अभ्याससे स्वर्गधामकी प्राप्ति होती है। देखिये प्राणायामकी शक्ति कैसी विलक्षण है। प्राणायामद्वारा बहुत सी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। ऐसा वेद उपनिषद् आदि विविध शास्त्रोंमें वर्णन है। यहाँ तो संक्षिप्त रीतिमें प्राण शक्तिका दिग्दर्शन कराया है। प्राणायामके अभ्याससे ही विविध शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। बिना अभ्यासके कुछ भी नहीं होता। प्राणायामका अभ्यास होनेके पूर्व प्राणकी शक्तिका ज्ञान होना आवश्यक है। इसी विचारसे यह लेख लिखा गया है। अब हम संक्षिप्त रूपसे प्राणायामकी विधिको यहाँ लिखेंगे।

प्राणायाममें तीन भाग होते हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक। नासिका द्वारा प्राणवायुको भीतर भरनेका नाम पूरक है। उस वायुको अन्दर धारण करनेका नाम कुम्भक है। बादमें उसीको नासिका द्वारा बाहिर निकालनेका नाम रेचक है। कुछ प्राणायाम ऐसे भी हैं जिनकी पूरक और रेचक क्रिया मुखसे की जाती है किन्तु अधिकांश नाक द्वारा ही पूरक और रेचक किये जाते हैं। पहिला केवल "कुम्भक" है, रेचक और पूरक न करते

हुए सिर्फ श्वासोच्छ्वासकी गतिका निरोध करना केवल कुम्भक कहलाता है। दूसरा "मध्य कुम्भक" है। पूरक करनेके पश्चात् यथाशक्ति कुम्भक करके तत्पश्चात् रेचक करनेसे यह प्राणायाम सिद्ध होता है। तीसरा "अन्त्य कुम्भक" है। पूरकके बाद रेचक करना और फिर प्राणको बाहिर ही स्थिर रखनेका नाम "अंत्य कुम्भक" है। इसीको बाह्य कुम्भक भी कहते हैं। चौथा "अकुम्भक" है इसमें केवल पूरक और रेचक ही होते कुम्भक नहीं किया जाता।

इन सब प्राणायामोंमें "केवल कुम्भक" सर्वोत्तम है। इसकी सहायताके लिये अन्य प्राणायाम हैं। दीर्घकाल तक "केवल कुम्भक" प्राणायाम सिद्ध होनेसे बड़ा ही लाभ होता है। स्थान और कालके भेदसे प्राणायाममें भी अनेक भेद होते हैं। कालका भेद अर्थात् पूरक कुम्भक और रेचकमें समयकी न्यूनता अथवा अधिकता। स्थानका भेद यह है कि अपने शरीरके इच्छित अवयवमें प्राण ले जानेकी शक्ति प्राप्त करके, वहां प्राणसे इष्ट कार्य करनेकी इच्छा शक्ति बढ़ाना। इसे "देशिक प्राणायाम" कहते हैं। प्राणायामके अभ्यासके प्रकाशसे अन्धकारका नाश होता है अर्थात् मनका तेज फैलने लगता है। ध्यान धारणा करनेकी योग्यता मनमें बढ़ जाती है। प्राणकी शक्ति बढ़नेके साथ-साथ ही मनकी शक्ति भी बढ़ जाती है। जिस प्रकार प्राणायामके अभ्याससे आरोग्यता बढ़ती है—इन्द्रियाँ सबल बन जाती हैं, उसी प्रकार मनका बल भी वृद्धि पाता है।

प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये एक अत्यन्त पवित्र—शुद्ध स्थान निश्चित करना चाहिये। वायु ही प्राण है—अतएव शुद्ध वायु जहाँ बहती हो, उसके बहनेमें किसी प्रकारकी रुकावट न हो, यह बात हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिये। न केवल शुद्ध वायुका ही ध्यान रखिये, बल्कि सूर्यके प्रकाशका होना भी वहाँ अत्यन्त आवश्यक है। उपनिषद् कहता है—

"आदित्य उदयन् यत्प्राचींदिशं प्रविशतितेन
प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।" प्रश्न० उ० १।६

"सूर्यका जब उदय होता है तब सभी दिशाओंमें सूर्य किरणों द्वारा प्राण रखा जाता है।" अर्थात् सूर्य-प्रकाश ही वायुको शुद्ध रखता है। सूर्यकिरणोंके बिना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सूर्य मालिकाका मूलप्राण यह सूर्यदेव ही है। यही कारण है कि वेद मन्त्रोंमें आयु, आरोग्य, बल आदिके वर्णनके साथ सूर्यका भी सम्बन्ध बताया गया है। सूर्य प्रकाशका हमारे स्वास्थ्यके साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसका पता यहाँ उक्त मन्त्रसे चलता है। जो लोग सदा अंधकारयुक्त स्थानमें रहते हैं—सूर्य प्रकाशमें क्रीड़ा नहीं करते, सूर्य प्रकाशसे अपना स्वास्थ्य ठीक नहीं करते हैं और अपनी तन्दुरुस्तीके लिये वैद्य हकीमों और डाक्टरोंका घर धनसे भरके विषतुल्य दवाइयाँ पीते खाते हैं। उनकी अज्ञानताका कुछ ठिकाना है? परमात्माने अपनी अनुपम दया द्वारा सूर्य और वायुको उत्पन्न किया है और उनसे पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हो

सकती है। उचित रीतिसे प्राणायाम द्वारा इनका सेवन किया जावेगा तो आपही आप स्वस्थता मिल सकती है। जितनी आरोग्यता अपार धन खर्च करने पर भी नहीं पा सकते, उतनी वायु और प्रकाशसे प्राप्त की जा सकती है।

शुद्धस्थान, शुद्धवायु और शुद्ध-प्रकाशका ध्यान रखनेके बाद बैठनेके लिये सुखप्रद आसन तय्यार कीजिये। नीचे लकड़ीका पट्टा या कुशासन बिछाइये। उसपर ऊनी आसन बिछाइये। इस ऊनी आसनपर कृष्ण मृगचर्म और इस चर्मपर सूती वस्त्र बिछाइये। आसन अधिक ऊँचा या बिलकुल नीचा नहीं होना चाहिये। नरम और सुख देने वाला आसन होना चाहिये। जो लोग प्राणायामके समय कठोर आसनका प्रयोग करते हैं, वे भूल करते हैं। ऐसा आसन तय्यार करके उसपर "सिद्धासन" से सुखपूर्वक बैठ जाइये। बाँये पैरकी एड़ीको अण्डकोष और गुदाके बीचके भागमें अर्थात् वीर्याशय पर दृढ़ताके साथ जमाइये और दाहिने पैरकी एड़ी लिंगेन्द्रियके ऊपरके भागमें दृढ़तासे लगाइये। ठोडी हृदयमें कण्ठमूलसे थोड़ी दूर, हृदयपर लगाकर शरीरको स्थिर और सीधा रखिये। पलकों और आँखोंको न हिलाते हुए दोनों भृकुटियोंके बीचमें दृष्टिको स्थिर कीजिये। यही सिद्धासन है। हठयोगमें भी सिद्धासन इसी प्रकार बताया है—

"योनिस्थानक मंघ्रिमूल घटितं कृत्वा दृढ़ं विन्यसेत्।
मेंढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्॥

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचल दृशा पश्येद्भ्रुवोरन्तरम् ।
ह्येतन्मोक्षकपाट भेदजनकं "सिद्धासनं" प्रोच्यते ॥"

इस श्लोकका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है। इस ग्रन्थमें दिया हुआ "सिद्धासन" का चित्र देखिये। पाठक इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे।

आसन लगानेके पूर्व शरीरकी शुद्धिका भी ध्यान रखना चाहिये। मल अथवा मूत्र त्यागनेकी इच्छा न हो, प्यास न लगो हो, कण्ठमें कफ न हो, शरीरमें आलस्य अथवा सुस्ती न हो, नासिका मलयुक्त न हो, इत्यादि बातोंका खूब अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिये। इनकी शुद्धिके लिये अच्छी प्रकार दतून तथा नेती और धोतीकी क्रिया करनी चाहिये। यजुर्वेदमें लिखा है—

"वातं प्राणेन अपानेन नासिके।" २५। २

अर्थात् प्राणका प्रवेशद्वार केवल नासिका ही है। अतएव इसकी शुद्धि अवश्य करनी चाहिये! दतून द्वारा नासिकाकी शुद्धि हो जाती है किन्तु नेतीद्वारा उसकी शुद्धि अच्छे प्रकार होती है। प्राणायामके अभ्यासीको अथवा यों कहिये कि दीर्घायु चाहने वालेको वृक्ष शाखाकी ही दतून करनी चाहिये। दतून आवश्यकतानुसार लम्बी और मोटी भी होनी चाहिये। दाँतोंसे कुचलकर उसकी छोटी सी अच्छी कूची बना लेनी चाहिये और उससे खूब अच्छी तरह बाहिर जिह्वाका मल साफ कर डालना चाहिये। बादमें कण्ठतक तर्जनी और मध्यमा, दोनों अँगुलियोंको डालकर गलेका कफ निकाल डालना चाहिये
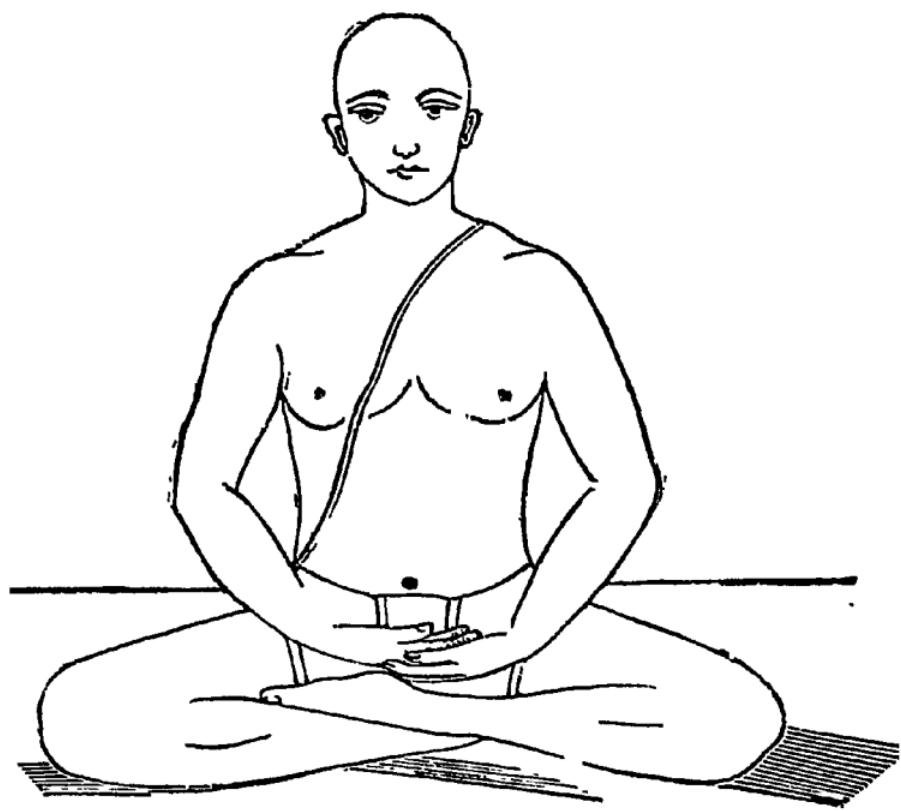
सिद्धासन।

[देखिये—पृष्ट संख्या १२६]

फिर अँगुठेसे दूरतक तालूको धीरे धीरे रगड़कर शुद्ध कर डालना चाहिये। इसके बाद विपुलजलके कुल्लोंसे मुख-शुद्धि कर डालनी चाहिये।

"नेती" उस सूतकी मुलायम, ग्रन्थिरहित, एक फुट लम्बी सुतलीको कहते हैं, जो नाकके छिद्रोंमें डाली जाती है। यह न तो ऐसी अत्यन्त पतली ही होनी चाहिये जिससे कि नासिकाके भीतरी भाग कट जावें और न इतनी मोटी ही होनी चाहिये जो नासिकाके छिद्रोंमें भी बड़ी कठिनतासे घुस सके। यह मोम लगाकर बनाई जाती है और इसके अन्तिम भागका पाँच छः अँगुल सूत खुला हुआ अर्थात् बिना बटा हुआ पूँछ सा लटकता रहता है। इसको मोम लगानेसे मतलब कड़ी बनानेका है। नाकके छेदमेंसे डालकर मुँहमें निकाली जाती है, बस इसी क्रियाका नाम नेती है। यह विचार करनेसे जितनी भयङ्कर मालूम होती है, उतनी ही सहज भी है। प्रयत्न करनेपर ६।७ दिनमें मनुष्य अच्छी प्रकार इस क्रियाको कर सकता है। "धोती" उस क्रियाको कहते हैं—जिसमें एक लम्बा कपड़ा मुखद्वारा पेटमें उतारा जाता है और फिर उसे खींचकर पेटका मलशुद्ध किया जाता है। दोनों क्रियाएँ अत्यन्त सहज हैं, केवल अभ्यासकी आवश्यकता है। इन क्रियाओंके दिनोंमें भोजन अत्यन्त सात्विक और हलका करना पड़ता है। प्राणायामके लिये दतून, नेती और धोती अत्यन्त ही आवश्यक क्रियाएँ हैं।

प्राणायामके योग्य अपने शरीरको शुद्ध करके उस सुखासन पर बैठकर मनको एकाग्र और शान्त करना चाहिये। तथा इन्द्रियोंकी गतिका निरोध करके किसी एक पवित्र विषयमें चित्तको लगा देना चाहिये। पीठ और गर्दन सम रेखामें सीधी रखकर नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमा देनी और अन्तः करणकी शुद्धि करनेकी इच्छासे स्थिर बैठ जाना चाहिये। गर्दन और पीठको एक ही सीधमें रखनेके लिये पहिले पहिल दीवारका सहारा ले लिया जावे तो कोई हानि नहीं! अभ्यास हो जानेपर दीवारके आश्रयकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। शान्त और स्थिर बैठकर उस समय मनमें ऐसी भावना करनी चाहिये कि मैं ब्रह्ममें लीन हूं—ब्रह्मकी एक नौका है, उसमें बैठकर मैं इस संसार महोदधिके पार जा रहा हूँ।

पृष्ठवंशकी रीढ़में इड़ा और पिंगला ये दोनों नाड़ियाँ हैं तथा इनके मध्यमें सुषुम्ना नामक एक नाड़ी है। इस रीढ़के मूलमें गुदाके ऊपर मूलाधार चक्र है, यहाँ कुण्डलिनी शक्ति है। यही आधारशक्ति अर्थात् मूलशक्ति है। इड़ानाड़ीका देवता चन्द्र, पिंगलाका सूर्य, और सुषुम्नाका शिव है। इसी कारण इन देवताओंके नामसे इन नाड़ियोंका नाम क्रमशः चन्द्रनाड़ी, सूर्यनाड़ी और शिवनाड़ी है। जैसा कुण्डलिनी शक्तिका स्थान मूलाधार चक्र है। उसी तरह शिवका स्थान मस्तकमें सहस्राक्षर चक्र है इसी कारण "पौराणिक संध्यावंदन" में प्राणायामके समय उपासक लोग कहा करते हैं—

"ललाटदेशे त्रिनेत्रं शिवं ध्यायेत्।"

इस ललाट देशवासी शिवके ध्यानका अर्थ वास्तवमें ऊपर लिखे अनुसार है। मूलाधार और सहस्रार इन दोनोंका सम्बन्ध प्राणायामसे होता है। यह शिवशक्तिका संयोग एक अपूर्व फलका देनेवाला है। प्राणायाम ठीक होनेके लिये तीन वंध करने चाहिये (१) मूलवंध (२) उड्डियान वंध और (३) जालंधर वंध। मूलवंध पूरकके समय किया जाता है। गुदा और लिंगमूलके मध्यमें जो चारपाँच अंगुलका स्थान है। उस स्थानमें एड़ीका दवाव रखकर गुदाका और लिंगका ऊपर की ओर खींचते हुए सङ्कोचन करना—अर्थात् अपान वायुको ऊपर खींचनेसे मूलवंध सिद्ध होता है। इससे आपमनका प्राणसे संयोग होता है, मलमूत्र अल्प होता है। मूलवंधके द्वारा वीर्य गाढ़ा होकर ऊर्ध्वगामी वनता है—वीर्य-रक्षा होती है। इसके करनेवाले वृद्ध पुरुष भी जवानसे दृष्टि आते हैं। अतएव यह वंध सर्वोत्तम है। दूसरा उड्डियानवंध है—यह रेचकके समय किया जाता है। सम्पूर्ण पेटको अन्दर खींचना और जहाँतक हो सके वहाँ तक पेटको पीठकी तरफ ले जानेसे यह वंध सिद्ध होता है। यह वंध वड़ाही सुगम और लाभ कारक है—जठराग्नि प्रदीप्त होती है। तीसरा जालन्धर वंध है। कण्ठको सिकोड़कर ठोड़ीको कंठमूलमें हृदयके ऊपर लगानेसे यह वंध सिद्ध होता है; इसीको कण्ठ वंध भी कहते हैं। लगातार पाँच छः महीनेतक इसका अभ्यास करनेके यह सिद्ध होता है।

पूरकके समय मूलबन्ध करनेसे अपानकी ऊर्ध्वगति होती है। कुंभकके वक्त जालंधर बंध करनेसे प्राणकी अधोगति होती है। इस तरह अपान और प्राणका मध्यमें संयोग होनेके कारण शरीरकी गर्मी बढ़ती है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। उष्णता बढ़नेसे कुण्डलिनीकी जागृति होती है। वह जागृत होकर सुषुम्ना नाड़ीके द्वारा ऊपरकी तरफ चढ़ने लगती है और सहस्रार चक्रमें पहुँचकर शिवके साथ संयुक्त होती है। यही परमानन्द है—प्राणायामके दृढ़ अभ्यास द्वारा इसकी सिद्धि होती है।

एक नासिका छिद्रको बन्द करके पूरक करना चाहिये तो दूसरेसे उसका रेचक करना चाहिये। बादमें जिससे रेचक किया हो उससे पूरक करके दूसरे नासिका रंध्रसे रेचक करना चाहिये। इस प्रकार दायें और बाएँ नासिका रंध्रसे यथा क्रम-श्वासोच्छ्वास बढ़ानेसे शनैः शनैः योग्य प्राणायाम होने लगता है। पूरकको जितना समय लगता है उससे चारगुण कुम्भक और पूरकसे दो गुणा रेचक करना चाहिये अर्थात् छः सेकण्डमें पूरक हुआ हो तो ६×४=२४ सेकंड तक कुंभक रखना चाहिये और ६×२=१२ सेकण्ड तक रेचक करना चाहिये। इस नियमके अतिरिक्त मनुष्य अपनी शक्तिकी योग्यताके अनुसार प्राणायाममें कमोवेशी कर सकता है। प्राणायामके समय श्वासरोकने छोड़नेमें जबरदस्ती करना या बल पूर्वक कुम्भक करनेसे बड़ी हानि है। प्राणायामके समय यह

सावधानी रखनी चाहिये कि पूरक कुम्भक तथा रेचकमें किसी भी समय धक्का न लगे—सरलता पूर्वक ही प्राणका आवागमन होना चाहिये। जो लोग शक्तिसे अधिक प्राणायाम करते हैं, उनका शरीर स्वस्थ्य होनेके बजाय उलटा रोगी और निर्बल बनता जाता है।

प्रारम्भमें प्राणायाम केवल तीनवार ही करना चाहिये। बादमें धीरे धीरे इसकी संख्या १०० तक बढ़ा सकते हैं। प्रत्येक पन्द्रहवें दिन एक प्राणायाम बढ़ाना चाहिये। जैसे जनवरी ता० १ को प्राणायाम आरम्भ किया तो ता० १५ जनवरी तक नित्य तीन प्राणयाम करना चाहिये और ता० १६ से चार प्राणायाम नित्य करना आरम्भ करके ता० ३१ जनवरी तक करते रहिये फिर ता० १ फरवरीको नित्यके पाँच प्राणायाम आरम्भ कर दीजिये और ता० १५ फरवरी तक पाँच पाँचका अभ्यास करके ता० १६ से ६ प्राणायाम करना आरम्भ कर देना चाहिये। इसी तरह धीरे धीरे सौतक अभ्यास बढ़ा लेना चाहिये। १०० प्राणायाम करनेके लिये ३ घण्टेका समय अवश्य ही लग जाता है। पूरकके समय शक्तियोंकी प्राप्ति, कुम्भकके समय शक्तियोंकी स्थिरता और रेचकके समय दोषोंका निकास हो रहा है—मनमें ऐसी भावना रखते हुए प्राणायाम करनेसे बड़ा ही लाभ होता हैं।

प्राणयाम करनेके समय मनकी भावना ऐसी होनी चाहिये कि—"मैं प्राण वायु लेनेके समय विश्वव्यापिनी प्राणशक्तिको

अपने शरीरमें ले रहा हूँ। यह विश्वव्यापिनी शक्ति मेरे शरीरमें प्रविष्ट होकर, सब प्रकारका स्वास्थ्य, आरोग्यता, आयु और आनन्द प्रदान कर रही है। यह परमात्माकी दिव्यशक्ति है और इससे सब प्रकारकी उन्नति हो सकती है।" प्राणायाम करने तक इस प्रकारकी मानसिक भावना विश्वास पूर्वक मनमें धारण करनी चाहिये। विश्वासी मनुष्यकी ही उन्नति होती है अतएव विश्वास रखकर ही कार्य करना चाहिये। परन्तु "अन्ध विश्वास" बड़ा बुरा है। अविश्वासी मनुष्यकी उन्नति नहीं हो सकती। संशय करनेवाला व्यक्ति नाशको प्राप्त होता है।

जिस प्रकार शुद्ध जलके स्नानसे शरीरका बाह्य भाग मल-रहित होता है; उसी तरह उचित रीतिके प्राणायाम द्वारा शरीरका अन्दरूनी भाग निर्मल होता है। प्राणायामके द्वारा शरीरमें बल बढ़ता है और मनोबल आता है। परमात्माकी जीवनी शक्ति सूर्य द्वारा समस्त वायुमें फैलती है—उस प्राण-शक्तिसे युक्त वायु प्राणायाम द्वारा शरीरमें जाकर वहाँ रुधिरके साथ मिलकर उसमें अपनी शक्ति स्थापित करता है और पश्चात् बाहिर आता है। यह जीवन शारीरिक पूर्ण आरोग्यता बनाये रखनेमें पूर्णतया समर्थ है। क्योंकि यह परमात्माकी शक्ति होनेके कारण कोई भी ओषधि इसके बराबर कार्य नहीं कर सकती! प्राणायामसे अग्नि प्रदीप्त होती है। परन्तु ध्यानमें रखिये, कि प्राणायामके कारण अपनी जठराग्निको प्रदीप्त समझ कर उसमें

अधिक भोजन न ठूंस दीजिये—अधिक परिणाममें भोजन करनेसे हानि ही होती है; लाभ समझना भूल है। प्राणायामसे इन्द्रियां निर्दोष होकर अपने अपने कार्यमें अधिक सामर्थ्य प्राप्त कर लेती हैं। शरीरका भारीपन प्राणायामके द्वारा दूर किया जा सकता है। भारीपन बीमारीका चिन्ह है और हल्कापन आरोग्यताका सूचक है। बैठकर कार्य करनेवालोंके पेट बड़े होते हैं—पेटका बढ़ना मृत्युको पास बुलाना है। जिनके पेट आगेकी तरफ लटके हुए हैं, वे अवश्य अल्पायु हैं—उनके पेटमें यमदूतोंका हेडक्वार्टर (Head quarter) है। प्राणायामके अभ्याससे पेट हल्का हो जाता है और मनुष्य दीर्घायुषी हो जाता है। सारांश यह कि प्राणायामसे अनेक लाभ हैं, जिन्हें यहाँ लिखकर नहीं बताया जा सकता।

सूर्योदयके समय, मध्याह्नके समय और सूर्यास्तके समय प्राणायाम करनेसे इतना उत्साह बढ़ता है कि जितना किसी अन्य उपाय द्वारा नहीं बढ़ाया जा सकता। शरीरमें किसी बीमारीके हो जानेपर मनकी प्रेरणा और प्रबल इच्छाशक्ति द्वारा इस प्राणको उस बीमार अङ्गपर पहुंचानेसे बीमारी शर्तिया भाग जाती है। इस प्रकार बिना ओषधिके आरोग्यता पानेके लिये प्रबल इच्छाशक्ति होनेपर सफलता होती है—यह निश्चय बात है। संशययुक्त मन सदा बीमारीका घर है। प्राणायामसे प्राणोंका संयम होता है, उससे मन और चित्त स्वाधीन होता है। मनके स्वाधीन होनेसे सब इन्द्रियों और

अवयवों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। यही इन्द्रिय संयम है जो प्राणायाम द्वारा सिद्ध होता है। अन्य सम्पूर्ण शक्तियोंमें प्राणशक्ति सबसे अधिक बलवान है। जब यही स्वाधीन हो जावेगी। तब अन्य शक्तियाँ बेचारी क्या वस्तु हैं? प्राणायाममें मुख्यशक्ति अर्थात् प्राणशक्तिको वशमें रखनेका प्रयत्न किया जाता है। इसलिये अभ्यास करते समय सावधानी रखनी चाहिये। क्योंकि अनुचित रीतिसे प्राणके साथ बर्त्ताव करनेसे बहुतसे कष्ट होते हैं। अपनी प्रत्येक इन्द्रियके गुण-दोषोंकी परीक्षा करके उसके दोष दूर करने और उसमें उत्तम गुण स्थापित करनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

प्राणका निरोध करनेसे आपका मन आपके वशमें हो जावेगा। बस, फिर क्या है? विश्वकी सम्पूर्ण शक्तियाँ आपके हाथमें हैं। क्योंकि—

"मनएव मनुष्याणाँ कारणं बन्ध मोक्षयोः।"

जिस प्रकार दूधमें जल मिलता है, उसी प्रकार प्राण और मन एक दूसरेके साथ मिले हुए हैं। इसलिये प्राणकी स्वाधीनता होनेसे मनकी स्वाधीनता भी होती है। हमारा मन जिन तत्वोंका बना हुआ है, उन्हीं तत्वोंसे अन्य मनुष्योंका मन भी बना हुआ है। अतएव जब हमारा मन हमारे काबूमें हो जाता है, तब वही शक्ति बढ़कर अन्य मनुष्योंको भी अपने वशमें करने लगती है। यही वशीकरण विद्या है। ऐसी शक्ति जिन्हें प्राप्त हो जाती है, वे अपनी इच्छाशक्तिके चमत्कारों

द्वारा लोगोंको आश्चर्यमें डाल देते हैं। इस तरह अनुभव द्वारा मनकी आगाध शक्तिका पता लगता है तथा मनकी अखण्ड उन्नतिका मार्ग सूझने लगता है। इस प्रकार प्राणायामके अभ्याससे असंख्य लाभ होते हैं। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा होवे प्राणायामका अनुष्ठान अवश्य करें।

व्यायाम

"सर्वा रक्षांसि व्यायामे शह—म है । अथर्व २ । ४।४

जिस प्रकार विना खुराक़के शरीरका जीवित रहना असम्भव है, उसी तरह विना व्यायामके शरीरका स्वस्थ और वलवान रहना भी असम्भव है। जो शरीर स्वस्थ और वलवान नहीं होता, वह चिरजीवी कदापि नहीं हो सकता। अतएव दीर्घायु चाहनेवालेको व्यायाम उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवित रहनेके लिये खुराक। "व्यायाम" शब्दका अर्थ है, परिश्रम, कसरत, मेहनत, कुश्ती, वरजिश, (Exercise) अर्थात् मनुष्यको नित्य ही परिश्रम करना चाहिये। आलसी, सुस्त, काहिल, निकम्मे वनकर अपना स्वास्थ्य-धन नहीं खोना चाहिये। प्रकृति भी यही आज्ञा देती है—यदि आप ध्यानपूर्वक अपने आसपासके पदार्थोंको देखेंगे तो सभी व्यायामशील दृष्टि आवेंगे। जो प्राणी जैसा न्यूनाधिक परिमाणमें व्यायाम करता है, वह उतना ही स्वस्थ रहता है। पशुपक्षियोंको देखिये वे सदा नीरोग रहते हैं। कारण इसका यही है कि वे परिश्रम करते रहते हैं—प्रकृतिने विना परिश्रमके विना उन्हें खुराक ही नहीं दी है। पशुओंको कोसोंकी उड़ानके वाद भक्ष्य पदार्थ मिलते हैं। उन्हें स्वयं उड़कर या चलकर अपनी खुराक प्राप्त करना पड़ता है किन्तु मनुष्य जाति दिन दिन

आलसी और सुस्त होती जा रही है। अब इसे चार कदम चलनेमें भी आलस्य आता है। ज़रा ज़रा सी दूरीपर जानेके लिये लोगोंको इक्कों, ताँगों, मोटरों, सायकलों, रेलों, ट्रामो आदि यानोंकी आवश्यकता पड़ने लगी। हमारे देखनेमें आता है कि बड़े बड़े शहरोंमें ट्रामगाड़ियों और ताँगोंकी आमदनी इन्हीं आलसी मनुष्योंकी पूँजी होती है। लोग इन सवारियोंमें बैठकर अपनेको बड़ा आदमी समझने लगते हैं किन्तु उन भाइयोंका यह बड़प्पन उन्हें ही ले डूबता है। लोग बाइसिकलें रखते हैं—परन्तु अधिकांश लोग केवल अपना शौक पूरा करनेके लिये, अपनी शेखी बतानेके लिये ही रखते हैं। वास्तवमें देखा जावे तो ऐसे वाहनोंका रखना हानिकारक हैं। रुपया, समय और स्वास्थ तीनोंका नाश है। जो लोग यह दावा करते हैं कि साइकल द्वारा समयकी बचत होती हैं, वे भूल करते हैं। जिस समय वह बिगड़ जाती है अथवा पंक्चर (Puncture) हो जाती है। उस समय उनके सुधारने में बहुत सा समय व्यय हो जाता है। तात्पर्य्य यह कि ऐसे ऐसे यानोंने भारतवासियोंको धीरे धीरे इतना सुस्त बना दिया, कि उन्हें व्यायाम भी भार सा मालूम होने लगा। जब कभी अपने ग्रामीण भाइयोंको एक दो कोसकी दूरीपरके गाँवमें जानेके लिये रेलवे स्टेशनपर २।४ घण्टे तक रेलके इन्तजारमें बैठा देखते हैं, उस समय चित्तको महान् खेद होता है। जो देश इस प्रकार हाथ पैर हिलानेसे मुँह चुराता हो, उसका स्वास्थ कबतक ठीक रह सकता है?

व्यायाम न करना प्रकृतिके नियमोंका उल्लङ्घन करना है। बच्चोंको देखिये, वे अज्ञानावस्थामें अपनी जगह पड़े पड़े ही व्यायाम करते रहते हैं—हाथ पैर हिलाते डुलाते हैं, करवटें बदलते हैं, औंधे सीधे होते हैं, उठनेकी चेष्टा करते हैं, गिरते पड़ते हुए भी दौड़भागमें लगे रहते हैं—यह सब कुछ प्रकृतिकी प्रेरणा ही है। इसी कारण बालकोंकी तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है और शरीर वृद्धि पाता रहता है। यदि बाल्यावस्थाके इस परिश्रमको रोक दिया जावे तो तत्काल ही बच्चेकी हीन दशा दृष्टि आने लगती है। सारांश यह, कि इस संसारकी स्थिति ही व्यायाम पर है—यदि व्यायाम बन्द हो जावे तो प्रलय काल ही समझिये। इस संसारको जगत इसी लिये कहते हैं, कि यह गतिशील है—आलसी या स्थिर नहीं है। अगर यह जगत् परिश्रम छोड़कर निकम्मा बन जावे तो परिणाममें प्रलय होगा। व्यायाम ही इस विश्वका अस्तित्व और आलस्य ही नाश है अतएव नाशसे बचनेके लिये व्यायाम अवश्य करना चाहिये।

व्यायाम दो प्रकारके हैं (१) मानसिक और (२) शारीरिक प्रत्येक मनुष्यको इन दोनों व्यायामोंकी जरूरत है। बिना व्यायामके विकास और वृद्धि नहीं हो सकती। मानसिक व्यायामसे मनोबल-बुद्धिका विकास और वृद्धि होती है। प्राणायामसे मानसिक व्यायाम होता है—इसके अतिरिक्त अखबारों तथा उत्तमोत्तम पुस्तकोंका पठन और मनन भी मानसिक शक्तिकी वृद्धि करता है। यदि किसी व्यक्तिमें शारी-

रिक बल है और मानसिक बलका अभाव है तो वह गँवार है ; या दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि उसके शरीरमें मूर्खता नामक रोग है। शरीरको व्यायाम न मिलेगा तो वह बीमार हो जावेगा और यदि मनको परिश्रम न मिलेगा तो वह भी शिथिल हो जावेगा। तात्पर्य्य यह है कि स्वस्थ मनुष्य वही है, जिसके तन्दुरुस्त शरीरमें दृढ़ और आरोग्य मन है।

प्रकृतिने ही मनुष्यको व्यायामशील बनाया है किन्तु अधिकांश लोग इसकी अवहेला करते हुए दृष्टि आते हैं। यह आलस्य कई कारणोंसे पैदा हो गया है—शरीर-शास्त्रसे अनभिज्ञता, अविद्या, ऐशो आराम, धनाढ्यता, फेशन प्रभृति कई ऐसे सबब हैं, जिनके कारण लोगोंको व्यायामसे अरुचिसी पैदा हो गई है। प्रकृतिने मनुष्यके लिये ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया है, कि वह सदा व्यायाम करता ही रहे। हमारे भारतवर्षकी वर्ण-व्यवस्था किसीको भी आलसी बनकर बैठना नहीं सिखाती। देखिये, शूद्रोंका कार्य सेवा है—सेवा बिना परिश्रमके कदापि नहीं हो सकती। वैश्योंके लिये कृषि और पशुपालन ऐसा उत्तम कार्य है, जिसमें बड़े भारी व्यायामकी आवश्यकता है। क्षत्रिय वर्ण तो बलके कारण ही प्रसिद्ध हैं—बिना बलके क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता। अब रहा ब्राह्मण वर्ण, उसमें इन तीनों वर्णोंपर शासन रखने लिये मनोबल और शारीरिक बलकी परमावश्यकता है। अतएव हमारी वर्ण व्यवस्था भी हमें व्यायामकी शिक्षा दे रही है। यद्यपि आर्थिक दृष्टिसे देशमें कृषकोंकी वृद्धि

हानिकारक है सही, तथापि स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे कृषकोंकी वृद्धि देशको अत्यन्त लाभकारक साबित हुई है। देशमें यदि कुछ बल या स्वास्थ्य शेष रह गया है तो वह कृषक समुदायमें दृष्टि आता है। आजकलकी वर्ण व्यवस्था बिगड़ जानेके कारण भारतमें निर्बलता और अल्पायुका दृश्य दृष्टि आ रहा है। शूद्र-वर्ण आराम-तलबीकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा जा रहा है। वैश्योंने दूकानपर बैठकर और गद्दोंपर लेटकर अपना स्वास्थ्य नष्ट कर लिया है। क्षत्रियोंके यहाँ जबसे मदिरा और वेश्याओंने प्रवश किया, तबसे वे मुर्दे बन गये हैं। ब्राह्मणोंका तो कहना ही क्या है? जितने वे बढ़े, उतने ही अधिक परिणाममें उनका पतन हुआ है। मानसिक बलके लिये जो जाति किसी समय विश्वमें विख्यात थी, उसमें ही आज मानसिक बलका लेशमात्र दृष्टि नहीं आता है। ब्राह्मणोंने तो भोजन करनेके निमन्त्रणमें जाना ही अपना परम कर्त्तव्य समझा और अपनेको पक्का आलसी बना लिया। हमें बड़ा ही हर्ष होता, यदि यह वर्ण भोजन पचानेके लिये ही थोड़ा बहुत व्यायाम कर लिया करता किन्तु हा शोक, कि भोजन पचानेके लिये भङ्ग और गाँजा पीना ही इसने अच्छा समझ रखा हैं !!! सारांश यह कि यदि कुछ लोग व्यायाम करते हैं तो वे लोग "आश्रमजीवी" मजदूर हैं।

अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि जब देशमें ६० प्रति सैकड़ा श्रमजीवी लोग हैं, तो देश अस्वस्थ्य और अल्पायुषी क्यों होता जा रहा है? इसका उत्तर यह है कि (१) आवश्यकता

से अधिक व्यायाम हो जाता है (२) नियमानुसार व्यायाम नहीं होता (३) उनमें स्वास्थ्य सम्पादनको इच्छा-शक्तिका अभाव है (४) व्यायामके समय वे उसे भाररूप मानकर दुखी मनसे करते हैं (५) इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यरक्षाके अन्य नियमोंका उन्हें पूर्ण ज्ञान नहीं है। इत्यादि बहुतेरे कारण हैं। आप एक कृषकको देखिये, वह कड़ी मेहनत करता है; किन्तु चाहिये जितना स्वस्थ और बलवान नहीं होता है। लोहार, बढ़ई, आदि श्रमजीवो लोग रातदिन वजनदार हथौड़े और ओजार चलाते रहते हैं, किन्तु उनके भुजदण्डोंपर मांस नहीं दृष्टि आता। हमालोंको देखिये बड़ी बड़ी वजनदार वस्तुएं उठाते हैं, थैले, बोरे पीठपर लादकर दूर दूरतक ले जाते हैं परन्तु उन्हें भी हम रोगी ही पाते हैं। इसका कारण उक्त कारणोंमेंसे कुछ न कुछ होता ही हैं तो भी यह एक मानी हुई बात है कि दूसरे मनुष्योंकी अपेक्षा श्रमजीवी बहुत कुछ स्वस्थ्य रहते हैं।

अब यहाँ यह देखना है कि स्वस्थ कौन है और अस्वस्थ कौन है? क्योंकि एक स्थूल देहवाला मनुष्य भी अपनेको स्वस्थ समझता है और एक कृषांग भी अपनेको स्वस्थ माने बैठा है। अतएव इस विषयमें थोड़ा सा विवेचन करना जरूरी है। पाठक, जरा इन तीन चित्रोंपर ध्यान दें।

इनके शारीरिक गठनके अनुसार ही हमने सुदेहानन्द, दुर्बलचन्द और भोंदूमल ये तीन नाम रक्खे हैं। जिसका

शरीर सुदेहाचन्द्रके समान है वही व्यक्ति स्वस्थ कहा जा सकता है। जिसका शरीर दुर्वलचन्द्रके समान है, वह अवश्य रोगी मनुष्य है, और जो महाशय भोंदूमलजीके समान स्थूल देह धारी हैं, वे तो दुर्वलचन्द्रसे भी गये वीते समझे जाने चाहिये। वहुतसे लोग, भोंदूमल जैसे शरीरधारी व्यक्तिको वड़ा ही स्वस्थ और वलवान समझते हैं, किन्तु ऐसा समझ लेना वड़ी भारी भूल है। हद्दसे ज्याद: मोटाई और हद्दसे जियाद: दुवलापन ही अस्वस्थताका सूचक हैं। वढ़ी हुई तोंद, वेडौल फूले हुए हाथ, गर्दन, मुख, पिंडली, लटकती हुई छातियाँ और पीछेकी तरफ निकले हुए वड़े वड़े नितम्ब स्वस्थताके सूचक नहीं हैं। यह एक रोग है, वहुत ही वड़ा रोग है। जवसे विना गर्भस्थितिके किसी मनुष्यका पेट वढ़ने लगे तभी से यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि उसके उदरमें मृत्युने अपना आसन जमा दिया है। ज्यों ज्यों तोंद वृद्धि पाती जावे त्यों त्यों मृत्यु अपना पूर्णाधिकार जमाता जा रहा है, यह निश्चय मान लेना चाहिये। भोंदूमल जैसे देहधारी व्यक्ति कदापि दीर्घायु नहीं पा सकते—यह ध्रुव है। ऐसे लोगोंकी मृत्यु अचानक, एकदम, और अल्पायुमें ही हो जाती हैं। जो भाई ऐसे स्थूल शरीरवाले हों उन्हें हमारी यह वात पढ़कर दुःख नहीं मानना चाहिये—क्योंकि व्यायाममें इस रोगको कुछ महीनोंके अभ्याससे ही नष्ट कर डालनेकी वड़ी भारी शक्ति है। निराश होकर दुःखमें मत डूव जाइये वल्कि

सुदेहानन्द

भोंदूमल !

दुर्बलचन्द ।

[देखिये-पृष्ठ संख्या १४२]
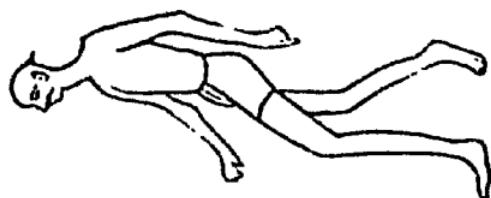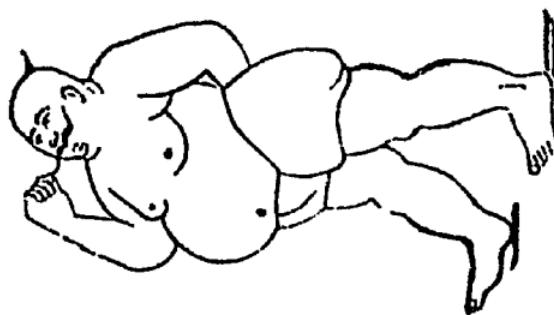
दीर्घायु प्राप्तिके लिये अपने इस रोगको हटानेके लिये व्यायामके अभ्यासमें भिड़ जाइये। यह रोग किस व्यायामसे हटाया जा सकता है? यह बात आपको इसी प्रकरणमें आगे चलकर मालूम हो जावेगी।

दुर्बलचन्दका स्वास्थ्य यद्यपि अच्छा नहीं है—तथापि भोंदूमलसे हजार गुना अच्छा है। दुर्बलचन्द जैसी दशा भी बुरी है। लोगोंको दुर्बलचन्द और भोंदूमलकी अवस्थासे निकलकर शीघ्र ही सुदेहानन्दकी दशामें पहुंच जाना चाहिये। इस शारीरिक परिवर्त्तनके लिये हमें किसी भी औषधिके प्राप्त करनेके लिये वैद्य, हकीम या डाक्टरकी शरणमें जानेकी जरूरत नहीं है। केवल नियमित व्यायाम द्वारा ही सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त किया जा सकता है। सुदेहानन्दका स्वास्थ्य उत्तम है, शरीर बलवान है, उसके स्नायु, पट्ठे, रग, नस, नाड़ियाँ, हड्डियाँ, सभी पुष्ट और बलवान हैं। शरीर सुडौल, और मांस पिंड पुष्ट और दृढ़ हैं। यह वीर्यरक्षा, प्राणायाम, और व्यायामकी क्रियाका फल है।

प्राणीमात्रके प्रत्येक व्यवहारमें बलकी आवश्यकता है। बिना बलके मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, इसलिये मनुष्यने जिस प्रकार अन्य सुख-सामग्रियोंकी खोज की है, उसी तरह उसने अपनी शक्ति सम्वर्द्धनार्थ व्यायामकी विविध युक्तियाँ भी ढूंढ़ निकाली हैं। बलकी कितनी आवश्यकता है? वह कैसे बढ़ाया जा सकता है? बढ़ाया हुआ बल कैसे सुरक्षित

रखा जा सकता है? इत्यादि विषयोंपर प्राचीनकालमें विचार करके हमारे पूर्वजोंने बलवर्द्धक नियमोंको बनाया है—इसीका नाम "व्यायाम शास्त्र" है। यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो "आयुर्वेद" और "योगशास्त्र" दोनों शारीरिक बल बढ़ानेके साधक ही हैं। यदि इन्हीं दोनों शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखा जावे तो "आयुर्वेद" में रोगोंसे बचनेकी रीति और रोग-चिकित्साका वर्णन है तथा "योगशास्त्र" में मुख्यतः अध्यात्मिक उन्नतिके उपाय बताये हैं। आयुर्वेद और योग, दोनोंका ग्रन्थ भाण्डार बहुत ही बड़ा है। प्राचीन कालमें ऋषि लोगोंकी व्यायाम पद्धति जैसी उत्तम थी, वैसी इस समय कहीं भी देखनेमें नहीं आती! जो कुछ भी थोड़ा बहुत इधर उधर व्यायाम विषयक ज्ञान दृष्टि आता है, वह प्राचीन पद्धतिका ही बिगड़ा हुआ रूप है। इस समय हमें व्यायाम विषयक उस ज्ञानको ढूंढ निकालना चाहिये जिसके द्वारा धृतराष्ट्र, जरासन्ध, भीमसेन, कर्ण, आदि शक्तिशाली बने थे। उस समय ऐसे अनेक—असंख्य बलवान मनुष्य इस भारतभूमिपर निवास करते थे।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासका यद्यपि पूरा नहीं चलता है तथापि जो कुछ भी मिलता है उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि, इस मध्ययुगमें भी प्रचण्ड शक्तिधारी मनुष्य इस देशमें हो गये हैं। सत्रहवीं शताब्दि तक भी इस देशके लोगोंमें विलक्षण शारीरिक शक्ति थी। इस समयकी व्यायाम पद्धतिका

ज्ञान भी इस समय किसीको नहीं है। महाराणा प्रताप, महाराजा रणजीतसिंह, गुरुगोविन्दसिंह, महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी आदि वीर पुरुषोंके समयतक भी व्यायामकी ओर जनताका विशेष ध्यान था। आज कल भी प्रोफेसर राममूर्त्ति और प्रोफेसर रमेश (ब्रह्मचारी गुरुकुल वृन्दावन) ने जो कुछ भी इस संसारमें ख्याति प्राप्त की है, वह केवल व्यायामके प्रताप से ही पाई है। उन्नीसवीं सदीमें एक ऐसा बहादुर सैनिक हो गया है, जिसने अपनी उम्रमें ५०० शेरोंका शिकार किया। उसके स्मारकमें एक शिला मध्यभारतके गूना नामक ग्रामके निकटवर्त्ती बड़े तालाब पर लगी हुई है। उसमें खुदा हुआ है—

"In memory of Duffedar Hersasingh 2nd. C. I. Horse. Enlisted 22nd. January 1841 distinguished himself in mutiny on 1-7-57. celebrated as a Shikari Head. Assisted at death of 500 Tigers. Killed by a tiger at Gorasdey C. I. on 27-4-1884 aged 59 years.

—M. G. G."

अर्थात्—"दफेदार हरसासिंह रेजीमेंट नं० २ सेण्ट्रल इण्डिया हार्स २२ जनवरी १८४१ को भरती हुआ। १ जुलाई सन् १८५७ के गदरमें विख्यात हुआ। प्रसिद्ध शिकारी था। ५०० शेरोंके मारनेमें सहायता की। मध्यभारतके गोरासदी

स्थानमें २७ एप्रिल १८८४ को शेरके द्वारा मृत्यु पाई। उस समय उसकी उम्र ५७ वर्ष की थी।"

—एम० जी० जी० "

यह सब कुछ व्यायामका ही प्रभाव था। सारांश यह कि इस समयमें भी कहीं कहीं शक्ति-सम्पन्न पुरुष दिखाई देते हैं। यद्यपि मध्ययुगके कई खेल और कई व्यायाम आज भी किसीको विदित नहीं हैं तथापि २०० वर्षों के अखाड़े अब भी मौजूद हैं। और वे अपने व्यायाम और कुश्तीके पेच गुप्त रखते हैं। ऐसे अखाड़ोंसे व्यायाम पद्धतिका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

कोई विद्या कितनी भी अच्छी क्यों न हो, यदि वह मूर्खोंके हाथ पड़ जावेगी तो निस्सन्देह उसमें बड़ी बड़ी खराबियाँ पैदा हो जावेंगी। यही दशा हमारे व्यायाम-शास्त्रकी हुई है। हमारे शिक्षित मनुष्योंमें व्यायामकी रुचि नहीं रही। इतना ही नहीं बल्कि यह समझा जाता है कि व्यायाम नीच लोगोंका धन्धा है। हर्षकी बात है, कि अब लोगोंके मनसे ऐसे भाव दूर होने लगे हैं—लोग व्यायामके गुणोंको जानकर उससे प्रेम करने लगे हैं। ये देशकी उन्नतिके लक्षण हैं। पश्चिमीय देशोंमें बचपनसे ही व्यायामका महत्व लोगोंको समझाया जाता है; और उनसे व्यायाम कराया भी जाता है, इसलिये वे बड़े होने तक व्यायामके अभ्यासी रहते हैं। हमारे देशमें बड़ी उम्रके लोग स्वयं व्यायाम नहीं करते और न बच्चोंसे ही कराते हैं। बचपनमें नियमित-व्यायाम करनेका अभ्यास न होनेके कारण

जवानीमें भी व्यायाम नहीं होता, फिर बुढ़ापेमें तो करेंगे ही क्या? हमलोगोंकी व्यायाम पद्धतिका अभीतक सुधार नहीं हुआ, इसका मूल कारण यही है, कि उसका अभ्यास शिक्षित लोग नहीं करते! यह विद्या अभीतक मूर्ख लोगोंके हाथमें ही प्रायः देखी जाती है। जबतक सुशिक्षित लोग व्यायाम शास्त्रसे प्रेम नहीं करेंगे, तबतक उसमें नवीनता, सुधार, निर्दोषता और उपयोगिता नहीं आवेगी। शिक्षित लोग इस मैदानमें अभी-तक नहीं आये। इसका कारण हमारे मौजूदा अखाड़ोंकी खराब दशा ही है। ये अखाड़े बुरे स्थानोंमें तथा नीच लोगोंकी अधी-नतामें ही अधिकतर रहते हैं। अखाड़ेके उस्तादजी ऐसे बुद्धिहीन गँवार होते हैं, जिन्हें इस बात तकका पता नहीं होता कि साधारण मनुष्यके लिये कितना व्यायाम होना चाहिये? किस आयुमें कौनसा व्यायाम हितकर है? स्त्रीपुरुषोंके लिये किस किस प्रकारका व्यायाम लाभप्रद है! वे बेचारे केवल इतना ही जानते हैं कि जो कोई अखाड़ेमें उनका शागिर्द बन जाता है, उससे खूब दण्ड बैठकें लगवा देना। शरीरपर मूर्खोंकी भांति अत्यन्त बल पूर्वक तेलकी मालिश करा देना। एक दो पेच सिखा देना—बस इतनेपर उस्तादजीकी उस्तादीका दीवाला निकल जाता है!! इन्हीं कारणोंसे व्यायाम पद्धति अत्यन्त दोषपूर्ण है।

आजकलकी व्यायाम पद्धतिमें जोर, दण्ड, बैठकें, मुग्दर जोड़ी, कुश्ती, मल्लखंब आदि मुख्य कियाएँ हैं। इसी रीतिसे

व्यायाम करने करानेवाले इस समय भी देशमें कम नहीं हैं किन्तु कमी तो इस बातकी है कि तत्वज्ञानकी दृष्टिसे इसका विचार करनेवाला उनमें एक भी नहीं है। व्यायामका तत्व; व्यायामका शरीरके अंग प्रत्यंगोंपर परिणाम, प्रत्येक अंगका विकास करनेका ढङ्ग, सहस्रों मनुष्योंपर व्यायामका अनुभव देखने और अपना बल बढ़ाकर उसको अति दीर्घकाल तक अपने शरीरमें स्थिर रखनेवाले महान् शक्ति सम्पन्न पुरुष देखनेमें नहीं आते! क्योंकि इस दृष्टिसे विचार करना हमें आता ही नहीं।

प्राचीनकालमें हमें बाल्यावस्थासे ही व्यायामकी शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा ब्रह्मचर्य आश्रमके गुरुके द्वारा होती थी। ऋषिकालमें विद्यार्थियोंके स्वास्थ्य और बल बढ़ानेका विशेष ध्यान रखा जाता था। प्राचीनकालमें विद्यार्थियोंको वर्त्तमान समयकी भांति नगरोंके भीतर मकानोंमें बन्द करके विद्याभ्यास नहीं कराया जाता था बल्कि गुरुके यहाँ गुरुकुलोंमें पढ़ाया जाता था। इस पद्धतिमें आरोग्यताका एक बड़ा भारी तत्व छुपा हुआ है। नगरोंकी तङ्ग गलियोंकी वायुकी अपेक्षा जङ्गलमें नदियोंके तटपर जो विद्यालय होते हैं, वहाँ पढ़नेवाले विद्यार्थियोंका स्वास्थ्य कितना उत्तम रहता होगा, इसका अनुमान नगरोंके रहनेवाले लोग सहज ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुरुकुलका अभ्यास, रहन-सहन, भोजन, सादगी, धार्मिकता, नियमोंका पालन, सुसङ्गति आदिका सुअवसर कमसे कम बारह

वर्ष और अधिकसे अधिक अड़तालीस वर्षका प्राप्त होता था। जीवनकी आरम्भ आयुमें इन बातोंका कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है, इस बातका अनुमान हमारे विचारवान पाठक खुद लगा सकते हैं। आजकलकी पाठशालाओंमें जिन बातोंका विचार, विद्यार्थियोंको तो क्या बल्कि अध्यापकोंको भी नहीं है, उन बातोंका क्रियात्मक अनुभव प्राचीन समयके लोग करते रहते थे। यही कारण था कि तत्कालीन मनुष्य स्वस्थ्य, बलिष्ठ, तेजस्वी, बुद्धि-विचक्षण, और दीर्घायुषी होते थे।

जबसे देशने अपनी प्राचीन पद्धतिके व्यायामको छोड़ दिया तभीसे देश निर्बलताका घर बन गया—लोग अल्पायु हो गये। जो कार्य क्रियापूर्वक नहीं किया जाता, वह लाभकी जगह हानिप्रद हो जाता है। यही हालत इस समय हमारी इस वर्त्तमान अखाड़ा-पद्धतिकी है। जिस ढङ्गसे बुद्धि-शून्य उस्तादजी अखाड़ेमें कसरत सिखाते हैं, वह भी मनुष्यको अल्पायु ही बनाती है। अर्थात् अनुचित रीतिसे किया हुआ व्यायाम भी आयुक्षीण करता है—यही कारण है, कि अच्छे अच्छे अखाड़ेके प्रसिद्ध पहलवान पूर्णायुके पूर्व ही अपना जीवनकार्य पूर्ण करके चल देते हैं। सारांश यह कि जो इस समय अखाड़ेकी उस्तादी है, उसमें बहुत कुछ सुधारकी आवश्यकता है। शरीर-शास्त्रके ज्ञाता मनुष्योंको इसके सुधारकी ओर ध्यान देना चाहिये। बिना ऐसा हुए देशमें दीर्घायु दिलानेवाले व्यायामका उदय होना असम्भव है। देशमें जहां तहाँ शास्त्रोक्त व्यायाम सिखा-

नेवाले बड़े बड़े विद्यालय होने चाहियें, जिनकी शाखाएँ नगरों, कस्बों और ग्रामोंमें स्थापित होनी चाहियें। इस बातपर लोगोंको अब शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये। चेतनेका समय यही है, क्योंकि देश निर्बल और अल्पायु हो गया है—यदि अब भी अपनी निद्राका अन्त नहीं किया तो सर्वनाशका समय आ पहुँचा है। यह मान लेना चाहिये।

व्यायाम-प्रेमी महाशयोंको सबसे पहिले मानव-शरीर विषयक थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये। मस्तिष्ककी बनावट, मेरुदण्ड, पसलियां, जिगर, फेफड़े, रक्त-वाहिनी नाड़ियां और मांस पिण्डोंको ध्यान पूर्वक देख लेना चाहिये। किसी अस्पतालमें मुर्देको चीरते हुए देखकर यह ज्ञान प्राप्त किया जावे तो और भी उत्तम है। ऐसे चित्र भी कई पाठशालाओं, अस्पतालों तथा ऐसे ही स्थानोंमें देखकर शरीर सम्बन्धी कई बातें जानी जा सकती हैं। हम भी यहाँ एक मनुष्यके अस्थि पञ्जरका चित्र देते हैं। इसमें यकृत और रक्तवाहिनी नस नाड़ियाँ दिखाई गई हैं। पाठक, इस चित्रको ध्यानपूर्वक देखकर शरीर विषयक बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

व्यायाममें शरीरमेंके केन्द्रोंकी स्वाधीनता प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। शरीरमें अनेक केन्द्र हैं और उनमें विविध शक्तियाँ विद्यमान हैं। यद्यपि उनका पूर्ण वर्णन करना अपने लिये मैं कठिन समझता हूँ, तथापि जो मुख्य दस मांस पिण्ड हैं, उनका

संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है। (१) "चिन्तामणि" Pineal body (पीनियल बाडी) यह मस्तकमें है। इसे तैत्तिरीय उपनिषद्में "इन्द्रयोनि" कहा है। इन्द्र—अर्थात् आत्माकी शक्तिका यह उत्पत्ति स्थान है। आत्मशक्ति प्रथम यहाँपर प्रकट होती है। इसलिये इसको—"आत्म-निकेतन" अथवा "ज्ञान-निकेतन" भी कहते हैं। योग-साधन द्वारा इसकी जागृति करनेसे मूलशक्ति हस्तगत हो जाती है। जो इसको सिद्ध कर सकता है, उसके सङ्कल्प सिद्ध होते हैं। किसी योगी पुरुष द्वारा चिन्तामणि जागृत करनेका ज्ञान प्राप्तकर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

(२) "तृतीयनेत्र" Pituitary body (पिट्यूटेरी बाडी) यह भी मस्तकमें ही है। इसके अनेक कार्य हैं। यह छोटा सा है, किन्तु बड़ा ही प्रभावशाली है। शरीरका दुबला पतला मोटा होना तथा शान्त एवम् चिड़चिड़ा स्वभाव होना, इसके अधीन है। इस पिण्डका सम्बन्ध सम्पूर्ण रक्तवाहिनी शिराओंके साथ है। जब यह बढ़ जाता है, तब आँखोंसे कम दिखाने लगता है—सिर दर्द होने लगता है और मस्तिष्क सम्बन्धी विविध कष्ट होते हैं। इसी तृतीय नेत्रसे एक प्रकारका रस टपका करता है। साधारण मनुष्यका यह रस श्लेष्मारूप होता है; परन्तु योगीके इस तृतीय नेत्रसे अमृतरस निकला करता है। इसे "अमर वारुणी" भी कहते हैं।

"जिव्हा प्रवेश संभूत वह्निनोत्पादितः खलु।
चन्द्रात्स्रवति यः सारः सस्यादमरवारुणी।"

योगी लोग अपनी जिह्वाको क्रियापूर्वक भृकुटी पर्यन्त लम्बी करके उसे तालुमें लगाकर जिस रसका पान करते हैं, वह अमर वारुणी है। इस रसके पानसे मनुष्योंने अमरत्व प्राप्त किया है।

"इन्धनानि यथा वह्निस्तैलवर्त्तिंच दीपकः।
तथा सोमकला पूर्णं देही देहं न मुंचति ॥"

जैसे अग्नि काष्ठको नहीं छोड़ता है, तेल सहित वत्तीको प्रज्वलित दीपक नहीं छोड़ता है, वैसे ही अमरवारुणी प्राप्त शरीरको जीवात्मा नहीं त्यागता है।

(३) "फल सदृश मांसपिंड" Thyreoid gland (थायराइड ग्लैंड) यह मांसपिंड गलेके पास है। इस पिंडके बिगड़ जानेसे गलेकी बीमारियाँ हो जाती हैं। अच्छी दशामें इसके अनेक उपयोग हैं। विशुद्धि चक्रका इसके साथ सम्बन्ध है।

(४) "समीपवर्त्ती फल सदृश मांसपिंड Para thyreoid (पैरा थायराइड) ये मांसपिंड "फल सदृश मांसपिंड" के पीछे होते हैं। इनके साथ रक्तवाहिनी नाड़ियोंका सम्बन्ध है। मानव-जीवनका इन पिंडोंके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि ये ठीक होते हैं तो, मनुष्य ज्ञानी, बुद्धिमान और नीरोग होता है और यदि इनमें कुछ दोष हुआ तो मनुष्य, मूर्ख, अज्ञानी और रोगी बन जाता है। इन्हींके बिगड़ जानेसे मृगी, अपस्मार, आदि बीमारियाँ हो जाती हैं।

(५) "रक्ताणु मांसपिंड" Thymus thyreoid (थाइमस् थायराइड) इसका सम्बन्ध गर्दनसे हृदय तक है। इसमें

सूक्ष्म ज्ञान तंतु होते हैं। इनका हृदयपर बड़ा परिणाम होता है। इसमें विकार हो जानेसे हृदयकी गति बन्द हो जाती है— इनके बलवान होनेसे संधिरोग, दुर्बलता, भस्म रोग आदि नहीं होने पाते।

(६) "प्लीहा" Spleen (स्प्लीन)—इसे ही तिल्ली कहते हैं। यह कमजोर या बीमार मनुष्योंके ही होती है, ऐसा मानना भूल है। यह सबके होती है किन्तु निर्बल मनुष्योंके यह बढ़ जाती है। हिमज्वरसे यह बढ़ जाती है। डाक्टर लोगोंका मत है कि "इसको काटकर फेंकनेसे भी मनुष्य जीवित रह सकता है।" किन्तु इसका पचनसे सम्बन्ध है और खास करके रक्तमेंके लाल लाल अणुओंसे इसका विशेष सम्बन्ध है।

(७) "ऊर्ध्व वृक्क मांसपिंड" Suprarenol (सुप्रारीनल) ये मांसपिंड पेटके पीछे और मूत्राशयके ऊपर भागके पिछले हिस्सेमें है। रक्तश्राव बन्द करने आदि कार्य इनके ही अधीन हैं। इसके रसकी एक बून्द दस हजार बूँद पानीमें घोलकर किसी जगह अच्छी प्रकार लगानेसे वहाँका रुधिर प्रवाह बन्द होता है।

(८) "इपद्रक्त मांसपिंड" Corotid skeins (केरोटीड स्केन्स) इनका स्थान गलेके दोनों ओर है। इनमें ज्ञान तन्तुओं-का स्थान है।

(९) "गोलक पूर्ण मांसपिंड" Coccygyeal skein (काक्सीजियल स्केन) इसका स्थान गुदाके पास है।

(१०) "महास्रोतस् मांसपिंड" Aortic bodies (एओर्टिक बाडीज़)—गर्भाशयमें इसका स्थान है और गर्भाशयसे हीं इन मांसपिंडोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इनके अतिरिक्त सैकड़ों मांसपिंड इस शरीरमें हैं। जिनका वर्णन करना इस जगह व्यर्थ सा ही है। शरीर सुखी अथवा रोगी, छोटा अथवा बड़ा बनाना शरीरके मांस पिंडोंके ही अधीन है। शरीरके जिस अवयवमें दोष हुआ, उसी अवयवका व्यायाम करनेसे बिना औषधके वह रोग समूल नष्ट हो जाता है। परन्तु इसके लिये शारीरिक ज्ञानका होना आवश्यक है। अखाड़ोंके उस्तादजी बेचारे इन बातोंको क्या जानें? इस व्यायाम पद्धतिके सुधारकोंको मनकी महान शक्तिका महत्व भी जान लेना चाहिये क्योंकि बिना मनको एकाग्र किये व्यायामकी सिद्धि जैसी चाहिये, वैसी प्राप्त होना कठिन है। मनकी शक्तिका नियम है, कि जहाँ आप उसे स्थिर करेंगे, वहाँ ही वह कार्य करने लगेगी। अतएव व्यायामका सच्चा आनन्द प्राप्त करनेकी इच्छा पूर्ण तभी होगी जब कि सबसे पूर्व मनको एकाग्र करनेका अभ्यास कर लिया जायेगा। इसका अभ्यास सहजहीमें किया जा सकता है। एक बिन्दु दीवार पर या कागजपर बना कर उसे अपनी दृष्टिके सामने रखिये—उस बिन्दुपर १५ से ३० मिनटतक मनको स्थिर रखनेका अभ्यास बढ़ाइये। इतनी स्थिरतासे मनकी शक्तिका काम चल सकेगा। तात्पर्य्य यह कि व्यायामके फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको,

पहिले अपने मनको एकाग्र करनेके लिये उक्त अभ्यास अवश्य कर लेना चाहिये।

अब हम यहाँ व्यायाम करनेके कुछ तरीके बतावेंगे किन्तु यह स्मरण रहे, कि व्यायाम विना प्राणायामके कदापि सिद्ध नहीं हो सकता! प्राचीन और वर्त्तमान पद्धतिमें यदि कोई भेद है तो एक यही बड़ा भारी भेद है। शरीरमें शक्ति उत्पन्न करके उसका पोषण करना तथा शक्तिके सहचारी गुण भी शरीरमें स्थापित रखना, यही व्यायामका एक मात्र उद्देश है। जितना बल व्यायामसे बढ़ता है, उससे कहीं अधिक बल प्राणायाम द्वारा बढ़ जाता है। देखिये

"बलेषु हस्ति बलादीनि।"

"रूप लावण्य बलवज्र संहनत्वादीनिकाय संपत्।"

"उदानजयाज्जल पंक कंटकादिष्वसङ्ग उत्क्रांतिश्च।"

"समान जया ज्ज्वलनम्।"

ये योग सूत्र प्राणायामकी विलक्षण शक्तिको बता रहे हैं— "हाथीके समान बल प्राप्त करना। सुन्दर रूप, उत्तम बल वज्र शरीर प्राप्त करना। उदानको जीतकर उत्क्रान्ति प्राप्त करना और समानको पराजितकर तेज प्राप्त करना। ये सब बातें प्राणायामकी ही है। विना प्राणायामके शरीरमें शक्ति आही नहीं सकती। आजकलके अखाड़ोंमें जो व्यायामका अभ्यास किया जाता है, यद्यपि उसमें प्राणायामका विचार तक भी नहीं होता किन्तु परिश्रम करनेसे जल्दी जल्दी श्वास उच्छ्वास होने

लगता है—यह उनका नाड़ी शुद्धकारक भस्त्रा प्राणायाम हो जाता है। इस प्रकारके प्राणायामसे रुधिराभिसरण अच्छा होता है, क्षुधा लगती है और स्नायु बलवान होते हैं। वास्तवमें देखा जावे तो प्राणायामकी शक्तिका ही सब कुछ यह चमत्कार होता है किन्तु इस ओर किसीका ध्यानतक भी नहीं जाता! यद्यपि आजकलके अखाड़ेबाज प्राणायामके अद्वितीय पराक्रमको जानते नहीं हैं तथापि न जानते हुए भी उन्हें भस्त्रा और कुंभक दोनों प्राणायाम करने ही पड़ते हैं। तात्पर्य्य यह कि पहलवान लोग स्नायु सञ्चालनको प्रधान और प्राणगतिको गौण मानते हैं। प्राचीन पद्धतिमें प्राणायामको मुख्य तथा अन्य शारीरिक अवयव संचालनको गौण माना है।

आपने कलियुगी भीमसेन प्रोफेसर राममूर्त्तिकी कसरतें देखीं या सुनीं होंगी। उनके सारे आश्चर्यजनक कार्य प्राणायामके बल पर ही होते हैं—मोटर रोकना, छातीपर हाथी खड़ा करना और ३००० पौंड वजनवाला पत्थर छातीपर रखना, इत्यादि सभी काम प्राणायामकी शक्ति पर ही अवलम्बित हैं। मिस ताराबाईका भालोंपर सोना, नुकीले भालेकी नोंकसे कपाल लगाकर भरी हुई गाड़ीको ढकेलना इत्यादि कार्य प्राणायामकी शक्तिको बतला रहे हैं। आप भी स्वयं अनुभव कर लीजिये कि जब आप कुछ भी शक्तिका काम करेंगे तभी श्वासको रोकना पड़ता है। मान लीजिये, कि आप एक बड़ी वजनदार वस्तु उठा रहे हैं—उस वस्तुको उठाते समय आपको

"कुम्भक" प्राणायाम करना ही पड़ेगा अन्यथा आप उसे सहजहीमें उठा नहीं सकते। कुश्तीके समय भी कुंभक प्राणायामकी जरूरत होती है, जिसमें कुम्भक करनेकी अधिक शक्ति होगी। उसीकी जीत होगी यह निश्चय है। सारांश यह कि विना प्राणायामके व्यायामका आनन्द नहीं आता अतएव जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा होवे प्राणायामको गौण मानकर प्राणायामका अभ्यास खूब करें। हम अपने प्राणायाम प्रकरणमें पीछे इस विषय पर बहुत कुछ लिख ही आये हैं। इस लिये यहाँ अधिक लिखना व्यर्थ है।

यहाँ यह नक्शा देखिये—

मानसिक एकाग्रता	प्राणायाम	मल्लविद्या
उत्तम	मध्यम	कनिष्ठ
सतोगुण	रजोगुण	तमोगुण
ब्रह्मा	विष्णु	महेश

यद्यपि सत्वगुण ही सर्वश्रेष्ठ है, तथापि रजोगुण, तमोगुणका भी यथासमय उपयोग अवश्य करना चाहिये। यह बात जबसे लोग भूल गये हैं, तबसे हमारी कितनी दुर्दशा हो चुकी है यह प्रत्यक्ष है।

दण्ड—इसे "दण्डासन" भी कहते हैं। आखाड़ोंमें सब जगह इसकी प्रधानता है। इससे सब कोई परिचित हैं। परन्तु

इसमें बड़े भारी सुधारकी आवश्यकता दृष्टि आती है। क्योंकि देखा जाता है कि, दण्ड करते समय लोग इतने जल्दी जल्दी दण्ड लगाते हैं, कि किसी मशीनका पुरजा भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। श्वासोछ्वासकी क्रिया इतनी तेजीसे जल्दी जल्दी होने लगती है कि ग्रीष्म ऋतुमें गर्मीके कारण हाँफनेवाले कुत्तेके अतिरिक्त दूसरा कोई उदाहरण ही दृष्टि नहीं आता। इस प्रकारके लगाये हुए दण्ड कदापि लाभकारक नहीं हो सकते। दण्ड लगानेके पूर्व सिद्धासन बैठकर भस्त्रिका प्राणायाम यथाशक्ति कर लीजिये, बादमें चार छः अङ्गुल ऊँचे दो काठके चौकोर टुकड़े, पत्थर अथवा ईंटें रखकर अपने हाथ जमाइये। इन दोनों हाथोंका फासला छातीकी चौड़ाईसे डेढ़ा रखना चाहिये, साधारणतः १८ या २० इंचका अन्तर दोनों हाथोंके बीचमें होना चाहिये। अब अपने पैर पीछेकी ओर ले जाकर एड़ी सहित भूमिपर जमा दीजिये। दोनों पैरोंके बीचमें एक फुटका फासला जरूर होना चाहिये। अब कुम्भक प्राणायाम करके बहुत ही आहिस्ता दंड लगाइये। नीचेकी ओर जाते समय सिरको बिलकुल नीचा मत कर दीजिये। उठते समय पेटको आगे तान देना चाहिये। जब दण्ड पूरा हो चुके तब एक तरफ रेचक प्राणायाम करके दूसरी ओरसे फिर शुद्ध वायु खींचकर कुम्भक करना चाहिये और फिर दण्ड लगाना चाहिये। स्मरण रहे कि दण्ड लगाते समय यह ध्यान कर लेना चाहिये कि मुझमें बड़ी भारी शक्ति आ रही है, मेरे

बैठक नं० १

(देखिये—पृष्ठ संख्या १५६)

दण्ड ।
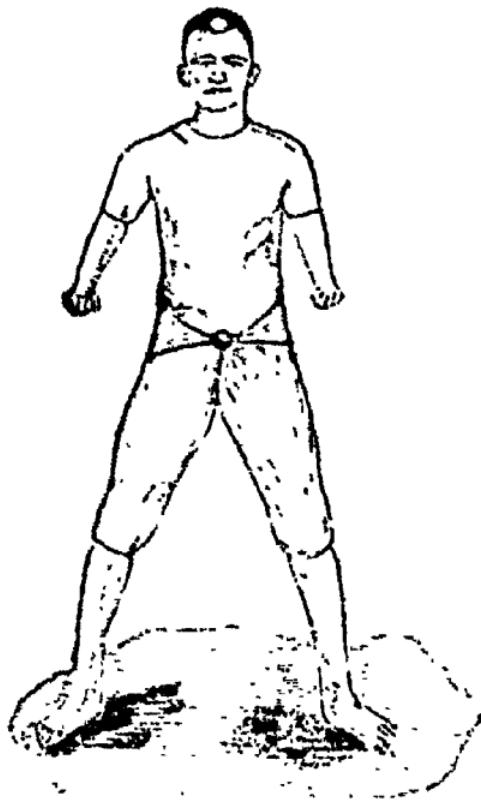
बैठक नं० २

(देखिये—पृष्ठ संख्या १५६)

शरीरके समस्त अवयव पुष्ट हो रहे हैं, इसके द्वारा मैं अवश्य दीर्घायु पा सकूंगा। इन उच्च और पवित्र विचारोंको मनमें धारण करके कमसे कम एक मिनटमें एक दण्ड निकालना चाहिये। आरम्भमें थोड़े किन्तु फिर ज्यों ज्यों शक्ति बढ़ती जावे त्यों त्यों इन्हें बढ़ा देना चाहिये। २५ से ५० दण्ड तक करनेवाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

बैठक—अखाड़ेवाले इस अभ्यासमें भी बेहद शीघ्रता करते हैं। खम्भेको, रस्सोको, या दीवारको पकड़कर ये लोग बैठकें करते हैं। इस तरहकी बैठकोंसे बहुत हानि होती है। बैठकें कई प्रकारकी होती है। सहूलियतके अनुसार यदि चाहें तो और नई तरहकी बैठकें भी तय्यारकी जा सकती हैं। मुख्यतः साधारण बैठक, कूद बैठक ही अच्छी होती हैं। इनके अतिरिक्त हनुमान बैठक, मुंहफेर बैठक, एक पांच पसार बैठक, अंगमरोड़ बैठक, घुटने मोड़ बैठक इत्यादि विविध प्रकारकी बैठकें हैं। पाठक, इन बैठकोंका अभ्यास, यदि चाहेंगे तो किसी अन्य पुस्तकसे या किसी जानकार मनुष्यसे कर सकेंगे। हम यहाँ कूदबैठकका एक चित्र देते हैं। पहिले मनुष्यको "कूद-बैठक चित्र नं० १" के अनुसार खड़े रहकर "कूद बैठक चित्र नं० २" अनुसार बैठना चाहिये। खड़े होनेके समय सीना आगे निकला हुआ, दोनों हाथोंकी मुट्ठियाँ जोरसे बँधीं हुई हों। कूदते समय ६। १० इंच आगेकी ओर कूदकर पञ्जोंके बल बैठना चाहिये तथा हाथोंको आगेकी तरफ बिलकुल

सीधे कर देना चाहिये। दोनों हाथोंके अंगूठे चित्र० २ की तरह मिल जाने चाहियें। बादमें फिर कूदकर पीछे अपनी जगहपर चित्र नं० १ के अनुसार खड़े हो जाना चाहिये। यह एक बैठक हुई। साधारण बैठकमें कूदना नहीं पड़ता। एक ही जगह खड़े रहकर बैठकें लगानी होती हैं। पञ्जोंके बल या एड़ियोंके बल साधारण बैठकमें बैठनेकी कोई जरूरत नहीं है। चक्कर कूद बैठकमें चक्कर लगाकर बैठकें करनी पड़ती हैं इतना ही अन्तर है। पचाससे १०० तक बैठकें एक स्वस्थ्य मनुष्यके लिये बस हो सकती है।

बैठकोंसे मुख्यतः पैरोंका व्यायाम होता है। पैरोंके लिये और कई व्यायाम हैं। दोनों पैरोंमें ६ इंचका फासला देकर सीधे खड़े हो जाइये और दोनों हाथोंकी मुट्ठियाँ बाँधकर अपने सिरपर ले जाइये। ध्यान रहे, कि हाथ बिलकुल सीधे और बल पूर्वक ऊपरकी ओर तने रहे। बादमें बिलकुल धीरे धीरे बैठना आरम्भ कीजिये, परन्तु जब बैठनेमें १।२ इंचका अन्तर रह जावे तब फिर धीरे धीरे उठकर पहिली सी दशामें हो जाना चाहिये। इसे ही एड़ियाँ उठाकर पञ्जोंके बल करनेसे भी पाँवोंका अच्छा व्यायाम हो जाता है।

दौड़ना—यह पैरोंका व्यायाम है। फेफड़ोंको शुद्ध करने, हृदयको गतिशील बनाये रखने, तथा रक्तको शुद्ध करनेके लिये यह व्यायाम बड़ा ही उत्तम है। प्रातःकाल अथवा सायंकालके समय २ मीलसे १० मील तक भागना बड़ा ही हितकर

होता है। भागनेसे भस्त्रिका प्राणायाम खूब होता है, जो रुधि-रामिसरणके लिये बड़ा ही अच्छा है। दौड़नेके समय अङ्गोंको शिथिल नहीं रखना चाहिये। हाथोंकी मुट्ठियाँ बाँधकर कटिके समीप ही रखनी चाहिये। अत्यन्त ज़ोरसे साँस चलनेपर भी नाकके द्वारा ही श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करनी चाहिये। आरम्भ में कुछ दूर दौड़नेपर ही दम फूल जाता है और दौड़नेवाला घबराने लगता है किन्तु हिम्मत बाँधकर दौड़ते रहनेसे घबराहट मिट जाती है और हिम्मत भी बढ़ जाती है। दौड़नेके समय लम्बा साँस लेना और छोड़ना चाहिये—इससे घबराहट भी बहुत कम होती है। दौड़ चुकनेके बाद तुरन्त ही बैठ जाना, खड़े रह जाना, या सो जाना बड़ा ही नुकसान करता है। अत-एव दौड़नेके बाद जबतक साँस जल्दी जल्दी चलता रहे, तबतक टहलते रहना ही फायदेमन्द है। दौड़नेके लिये स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँकी हवा शुद्ध और खुली हुई हो। हमारे देशी खेल बहुतेरे ऐसे हैं, जिनमें खूब ही दौड़ाई होती है। गिल्लीदण्डा, खोखो, कबड्डी, छीयापाती, आदि सैकड़ों खेल ऐसे हैं जिनमें खूब ही दौड़नेका व्यायाम होता है। फुटबाल, क्रीकेट, हाँकी आदि पश्चिमीय खेल भी जो आजकल भारतीय खेल बन गये हैं, दौड़नेके व्यायाम हैं।

मलखंभ—मलखम्भका व्यायाम भी देशी व्यायामोंमें बड़ा ही उत्तम है। इसके करनेसे शरीरमें फुर्ती, लचीलापन, और नरमी आती है। यह व्यायाम एक स्तंभ—खम्भे पर

किया जाता है। नीचेसे मोटा, ऊपरसे पतला, मुहदार सुचिक्कण खम्भा जमीनमें गाड़ दिया जाता है, इसी पर सैंकड़ों तरहका व्यायाम किया जाता है, इसे ही मलखंभका व्यायाम कहते हैं। मलखम्भके किसी अच्छे शिक्षक द्वारा यह व्यायाम सहज ही में सीखा जा सकता है। यह व्यायाम देखनेमें भी बड़ा ही नयनाभिराम होता है। इस विषयकी १।२ पुस्तकें भी हमारे देखनेमें आई हैं, उनसे भी सहायता ली जा सकती है। "शरीर बल विद्या" और "आर्य्य मल्ल-विद्या प्रकाश" ये दो पुस्तकें ज्ञानसागर छापाखाना गिरगाँव बम्बईकी अभीतक हमारे देखनेमें आई हैं। दोनों पुस्तकें मराठी भाषामें है। मलखम्भके प्रेमियोंको "आर्य मल्लविद्या प्रकाश" जरूर मँगाकर देख लेना चाहिये। मलखम्भ द्वारा शरीरमें नूतनशक्तिका उदय होता है। रक्त शुद्ध होता है, फेफड़ोंको पवित्रता होती है और मनुष्य दीर्घायु होता है। हम यहाँ मलखम्भके व्यायामके दो चित्र पाठकोंके समझनेके लिये देते हैं।

मुद्‌गर—बहुत से लोग इसे जोड़ी कहते हैं। मुद्गर कई प्रकारसे फिराये जाते हैं। इनके लिये न तो कोई पुस्तक ही है और न तय्यार ही की जा सकती, क्योंकि जोड़ी घुमानेके कई हाथ ऐसे हैं, जिन्हें लिखकर या चित्र द्वारा दिखाकर समझाया जाना असम्भव है। मुद्गरके हाथ किसी अच्छे जोड़ी फिराने वालेसे सीख लेना चाहिये। यदि कोई सिखानेवाला न भी मिले तो स्वयम् ही अभ्यास आरम्भ कर देना
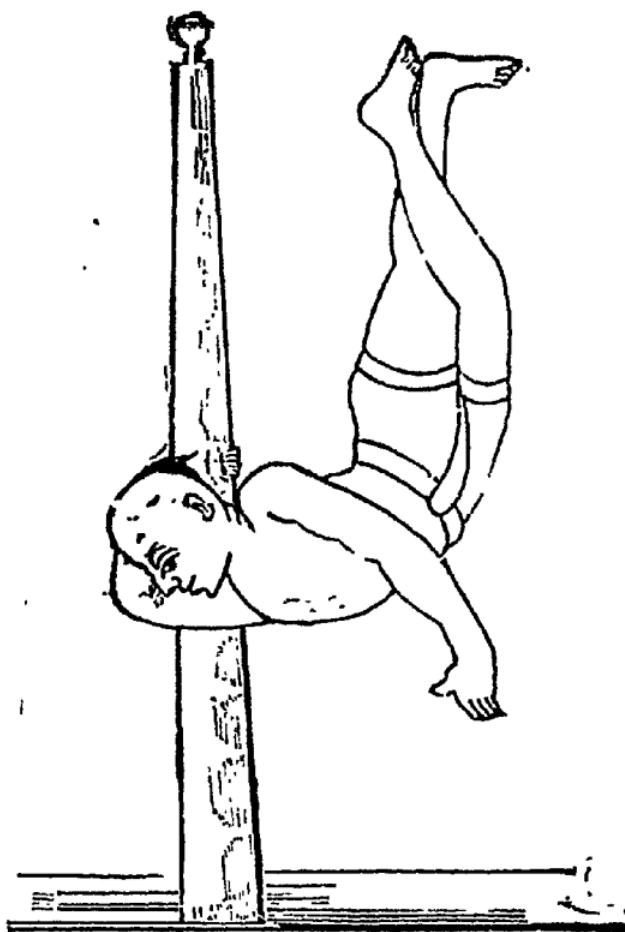
मलखम्भ नं० १

(देखिये—पृष्ठ संख्या १६२)
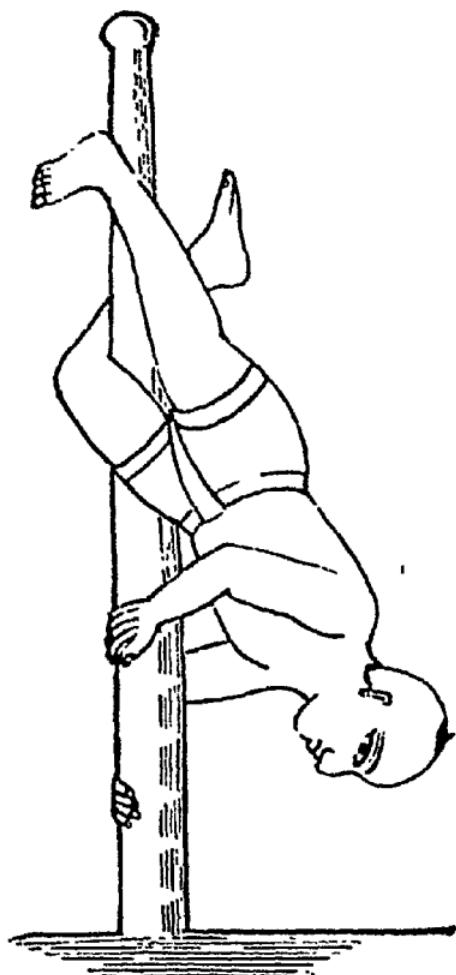
मलखम्भ नं० २

(देखिये—पृष्ठ संख्या १६२)

चाहिये। कुछ दिनके अभ्यासले आप ही आप हाथ साफ हो जावेगा। मुद्गरसे मुख्यतया हाथोंकी कसरत होती है, भुज-दण्ड वन जाते हैं। कुछ कुछ छाती और सिरका व्यायाम भी हो जाता है। मुद्गर जोड़ी एकदम हलकी या एकदम वजनदार उठानेसे कोई लाभ नहीं, अपनी शक्तिके अनुसार ही वजन होना चाहिये। आजकल लोगोंने मुद्गरोंको छोड़ सा दिया है और "डम्बेल्स" को अपना लिया है। डम्बेलका व्यायाम मुद्गरके व्यायामसे उत्तम नहीं कहा जा सकता। डम्बेल्स कई तरहके होते हैं, काठके, लोहेके और कमानीदार। हाथोंकी मुट्ठियोंमें डम्बेल्सको वल पूर्वक दवाकर इसका व्यायाम किया जाता है। इसकी क्रियाएँ सिखानेके लिये वहुत सी पुस्तकें हैं। किसी अच्छी पुस्तककी सहायतासे डम्बेल्सका व्यायाम सीखा जा सकता है। लिखनेवाले व्यक्तिको कमानीदार डम्बेल्सका व्यायाम नहीं करना चाहिये, ऐसे डम्बेल्सके व्यायाम करनेवालोंके हाथोंमें कभी कभी कम्परोग हो जाता है। यदि डम्बेल्स न हों तो मुट्ठियाँ ही जोरसे बाँध कर व्यायाम करनेसे उतना ही लाभ हो सकता है। हाथोंकी कसरतके लिये लोहेके गोलेको फेंकना भी अच्छा व्यायाम है। पत्थरके नाल उठाना भी अत्यन्त लाभदायक है। प्राचीन कालमें पत्थरके नाल उठानेका बड़ा भारी प्रचार था, गाँव गाँवमें नालें पड़ी होती थीं जिन्हें नगरवासी अवकाशके समय उठाया करते थे, जबसे इस विधिका लोप हुआ तभीसे नाल उठानेका व्यायाम देशसे उठ

सा गया है। नाल उठानेकी भी कई तरकीवें हैं, जो किसी जानकार व्यक्तिसे सीखी जा सकती हैं। मुद्गर, डम्बेल्स, लोहेका गोला, नाल इत्यादिका व्यायाम स्वास्थ्यके लिये बड़ा ही उत्तम होता है।

कूदना—कूदना फाँदना भी अच्छा व्यायाम है। कुदाई भी कई प्रकारकी होती है। लम्बी कुदाई, ऊँची कुदाई, पैर बाँध कर कुदाई, दौड़ कुदाई, वगैरः। कुदाई से समस्त अङ्गोंका अच्छा व्यायाम होता है। मुख्यतया पेट और कपालको बल प्राप्त होता है। बहुत से लोग कुदाईके समय अपने हाथ पैर ढीले रखते हैं—ऐसी कुदाईसे लाभ बहुत कम होता है। कूदते समय हाथ पैरोंको कठोर रखने तथा प्राणायाम करनेकी अत्यन्त आवश्यकता हैं। दौड़ना, कूदना, फाँदना, खेलना इत्यादि व्यायाम कम उम्रके बच्चोंके लिये बहुत ही फ़ायदेमन्द हैं। छोटी उम्रके बच्चोंसे दण्ड बैठकका व्यायाम कराना अनुचित है। १४ वर्षकी उम्रतकके बच्चोंसे दण्ड बैठकका व्यायाम नहीं कराना चाहिये। उनसे केवल खेल कूद, दौड़-धूप, कूदफाँदका ही व्यायाम लेना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है, कि बड़ी उम्रके लोगोंको कूदना फाँदना मना है। कूदनेसे शरीरमें स्फूर्त्ति आती है, आलस्य भाग जाता है, और शरीरका प्रत्येक अवयव चञ्चल हो जाता है। कूदनेके समय माथेमें कसकर एक कपड़ा—रूमाल बाँध लेना चाहिये। जहाँ कूदनेकी इच्छा हो—जहाँ पर आप कूद सकते हों, उसी स्थानपर

अपने मनको एकाग्र कर देनेसे कूदनेमें बड़ी सफलता प्राप्त होती है।

तैरना—जलाशयमें तैरना भी उत्तम व्यायाम है, बशर्ते कि क्रिया पूर्वक तैरा जावे। सबसे पहिले जलकी पवित्रताका ध्यान रखना चाहिये। जो लोग गन्दे, मटमैले, दुर्गन्ध युक्त जलमें स्नान करते हैं, उनकी आयु क्षीण हो जाती है। अनेक चर्मरोग हो जाते हैं, सिर दर्द हो जाती है। अतएव पवित्र, शुद्ध, निर्मल जलमें ही तैरनेका व्यायाम करना चाहिये। तैरनेका व्यायाम अपनी शक्तिसे अधिक करनेमें प्राण हानिकी सम्भावना हैं। अधिक तैरनेके कारण लोगोंको उन्माद, मूर्च्छा मृगी और पागलपन हो जाता है। गहरे जलमें घुसकर प्राणायाम पूर्वक धीरे धीरे बल-वृद्धि तथा आयुष्य वृद्धिकी प्रबल इच्छाको मनमें धारण किये हुए तैरना चाहिये। समुद्रके जलमें तैरना हानिकारक है। पानीमें गोते मारना बड़ा ही अच्छा व्यायाम है।

वायुसेवन—वायुसेवनको 'हवा खोरी' भी कहते हैं। आजकल लोग हवाखोरी, वायुसेवन, वाकिंग (Walking) आदि के बड़े ही शौकीन देखे जाते हैं। परन्तु घरसे निकलकर, किसी जगह जा बैठना, या निकटस्थ किसी बाग बागीचेमें जा बैठना ही लोगोंने हवाखोरी समझ ली है। कई महाशय तो ऐसे भी हैं जो भोजनके बाद या प्रातःसायं १०० पचास कदम टहल कर ही अपने वायुसेवनका अन्त कर देते हैं। ऐसी हवाखोरीसे

कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। प्रत्येक स्वास्थ्य और दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको कमसेकम चार या पाँच मीलकी हवाखोरी अवश्य करनी चाहिये। अधिकसे अधिक २० मील नित्य वायुसेवनके लिये जाना चाहिये। यदि इतना समय नित्य नहीं मिल सके तो छुट्टीके दिन तो अवश्य ही आठ या दस मील घूमना चाहिये। वायु सेवनके लिये जिस चालसे चलना आरम्भ किया जावे, वही चाल अन्ततक रहनी चाहिये। कहीं तेजीसे, कहीं मन्द गतिसे चलना ठीक नहीं। बिलकुल ज़नाना चाल भी नहीं होनी चाहिये। जो लोग अपने बड़प्पनकी शानमें मस्त होकर मोटर, विक्टोरिया, तांगों, टम-टम, इक्के, सायंकाल, घोड़ा, ऊँट, आदि यानों पर वायु-सेवनार्थ जाते हैं, वे उतना लाभ नहीं उठा सकते जितना कि पैदल वायु-सेवननार्थ जाने वालेको लाभ होता है। यानों पर जाने वालोंको व्यायाम नहीं होता, केवल शुद्ध वायु ही प्राप्त होता है। प्रातःकाल और सायंकाल ही वायुसेवनके उत्तम समय हैं। प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व वायुसेवनार्थ नगरसे बाहिर चले जाना चाहिये और सायंकालको सूर्यकी गर्मी कम होते ही हवाखोरीको चल देना चाहिये। प्रातःकालके वायुका सेवन सायंकालीन वायु सेवनसे लाख दर्जे अच्छा होता है। प्रातःकालके समय वायुसेवनार्थ जङ्गलमें जानेवाले व्यक्तिका स्वास्थ्य, तेज, बल, यश, और बुद्धि बढ़ती है। उषःकाल (अमृत काल, सूर्योदयसे २ घन्टे पूर्वका नाम है। इस समय

वायु सेवन करने वाला वास्तवमें अमृतका ही सेवन करता है। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा हो, उन्हें नित्य अमृतकालमें वायु-सेवनार्थ ग्रामसे वाहिर २। ५ मील चले जाना चाहिये। वेदने भी उपः कालको दुधारी गौके समान कहा है। देखिये :—

"अवोध्याग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुमिवायती मुपासम्।
यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवः सस्रते नाकमच्छः॥"

(सामवेद)

जोर-कुश्ती—इसे "मल्लयुद्ध" भी कहते हैं। यह व्यायाम बड़ा ही अच्छा है। इसमें शरीरके सब अवयवोंको पूर्ण व्यायाम मिलता है। इसमें प्राणायाम मुख्य है। इसके अनेक दाँव पेंच हैं, जो मल्लयुद्धके अच्छे जानकारोंसे सीखे जा सकते हैं। कुछ पुस्तकों द्वारा भी इसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह एक प्रकारका स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध होता है। अतएव कभी कभी इसके द्वारा बड़ी बड़ी हानियाँ हो जाती हैं। इस युद्धको प्रेम पूर्वक आनन्द और हर्षके साथ करनेसे ही दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त हो सकता है। क्रोध पूर्वक किया हुआ मल्लयुद्ध शारीरिक शक्तिको क्षीण करके अल्पायु बना देता है। बहुतेरे लोग तो इस मल्लयुद्ध द्वारा खूब रुपया कमाते हैं—पेट भरते हैं। मल्लोंका मुख प्रायः निस्तेज होता है और शरीर हृष्ट पुष्ट सुडौल और बलवान होता है—इसका कारण यह है कि मल्ललोग मस्तिष्कका व्यायाम बिलकुल नहीं करते,

निरक्षर, मूर्ख, और विद्याके शत्रु होते हैं। यदि इनमें थोड़ी सी भी मस्तिष्ककी शक्ति हो तो सोनेमें सुगन्ध हो जावे और मुख भी कान्तियुक्त बन जावे। मल्लयुद्धके समय जिनका शारीरिक बल और मस्तिष्कका बल लगता है, वे शीघ्र ही प्रतिद्वन्दी-पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते हैं। अतएव हमारे पहलवानोंको दीमागी कार्यों द्वारा दीमागको भी शक्ति-सम्पन्न बनाना चाहिये। इससे बड़ा ही लाभ होता है।

व्यायाम विषयक कुछ सूचनाएँ भी यहाँपर लिख देना आवश्यक है।

(१) स्नान और व्यायाममें कमसे कम २ घण्टेका अन्तर रखना चाहिये। स्नानके १५ या २० मिनिट पश्चात् व्यायाम करनेसे कोई हानि नहीं हो सकती, किन्तु व्यायामके १५ या २० मिनिट बाद ही स्नान करनेसे बड़ी बड़ी बीमारियाँ हो जाती हैं—मनुष्य अल्पायु हो जाता है।

(२) भोजनके बाद व्यायाम नहीं करना चाहिये। कमसे-कम भोजनके ६ घंटे बाद व्यायाम होना चाहिये। व्यायामके बाद ही बहुतसे लोग दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थ सेवन करते हैं—यह बड़ी भारी भूल है। व्यायामके बाद कमसे कम आध घण्टे तक कुछ भी नहीं खाना पीना चाहिये। पेटकी आँते उस समय उदरस्थ विकारोंको शमन करने तथा अपक्व अन्नको पचानेमें लगी होती हैं उस समय पेटमें उनके पचानेके लिये भोजन डाल देना ठीक नहीं है। ऐसे लोगोंको बीमारियाँ

होकर अल्पायु हो जाते हैं। बहुतसे मू ंिक पदार्थ खाते जाते हैं और व्यायाम करते जाते हैं। व्यायाम .. बाद दूध बादाम, खोपड़ा, छुहारा, पिश्ता, चिरोंजी, किशमिश, आखरोट, अंगूर, अनार, सेव, नासपाती, अञ्जीर, कलमी आम, भीगी हुई चनेकी दाल आदि पदार्थोंका सेवन-हितकर है। कुछ लोगोंका खयाल है, कि व्यायामके बाद यदि कुछ भी न खाया जावे तो श्रम निष्फल होता है। ऐसा मान बैठना भी भूल है। व्यायाम तो सदा उत्तम है। भले ही रूखी सूखी, ज्वार, बाजरी, मकई आदिकी रोटियाँ ही मिलें।

(३)व्यायामके समय लोग लङ्गोट, रूमाली, कछ, जाँघिया आदि पहिनते हैं। कुछ अज्ञ पुरुष लङ्गोटको इस तरह खींचतान कर बाँधते हैं कि उनकी उपस्थेन्द्रिय दिखाई ही नहीं पड़ती; उस समय मालूम होता है मानों ये स्त्री हैं अथवा हीजड़े हैं। जिन्हें आमरण ब्रह्मचारी ही रहना है, उनके लिये तो ऐसा करना विशेष हानिकारक नहीं है; किन्तु जिन्हें गृहस्थाश्रमकी इच्छा है, उन्हें अपने शिश्नके साथ ऐसा अत्याचार नहीं करना चाहिये। लङ्गोटको कमरमें कसकर बाँधनेसे बहुत हानि होती है—क्योंकि व्यायाम करनेसे रक्त शीघ्रतापूर्वक शरीरमें सिरसे पैरतक दौड़ने लगता है, यदि कमरमें लङ्गोट कसकर बाँधा हो तो रक्तकी तेज गतिको वहाँ रुक जाना पड़ेगा। रक्तकी गतिमें बाधा उपस्थित होनेसे स्वास्थ्यमें अन्तर आता है और उम्र कम होती है। इसलिये, लङ्गोट खूब कसकर नहीं बाँधना

चाहिये। साथ ही व्यायाम कर चुकनेके बाद तत्काल ही लंगोट नहीं खोल देना चाहिये।

(४) कुछ लोग थक जानेपर भी अपना व्यायाम आरम्भ रखते हैं। इन लोगोंका खयाल है, कि ऐसा करना ही सच्ची कसरत है; परन्तु यह इनकी गलती है। ऐसा व्यायाम करनेवाले मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकते। कसरत करते करते जब मुँह सूखने लगे या छाती और बगलोंमें पसीना झलक आवे, उस समय कसरत बन्द कर देनी चाहिये। यदि बन्द मकानमें कसरत की गई हो तो तत्काल ही खुली हवामें नहीं आना चाहिये। अधिक प्यास लग जानेपर तुरन्त ही पानी या शर्बत वगैरः नहीं पी लेना चाहिये।

(५) कसरत कर चुकने पर फौरन ही बैठ जाना, खड़े रह जाना या सो जाना ठीक नहीं है। जबतक साँस अपनी पूर्ण दशा पर न आ जावे और शरीरकी गर्मी कम न पड़ जावे, तब तक शरीरके अवयवोंपर धीरे धीरे हाथ फेरते हुए टहलते रहना चाहिये।

(६) कसरती मनुष्यको हमेशा लघुपाक, पौष्टिक और सादा भोजन करना चाहिये। यह समझ कर कि "मैं कसरती हूं, मेरी जठर-ज्वाला प्रदीप्त है, खूब पचा सकता हूं।" अधिक भोजन नहीं ठूस देना चाहिये। कसरती व्यक्तिको हमेशा कम खाना चाहिये, नियत समय पर ही खाना चाहिये। तेल, लाल मिरच, खटाई, गुड़, चटपटे मसाले त्याग देना चाहिये।

(७) शराब, गाँजा, भाँग, अफीम, चा, काफी, तम्बाकू आदि मादक द्रव्य मनुष्यके शारीरिक, और मानसिक बलको नष्ट करने वाले हैं। अतएव व्यायाम द्वारा आरोग्यता और दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको किसी भी तरहका नशा स्वप्नमें भी नहीं करना चाहिये। हमारे देशके कुछ भङ्गेड़ी पहलवानोंने भङ्गको कसरतके साथ उपयोगी ठहराया हैं, परन्तु यह मूर्खता हैं। मथुराके चौबे भङ्ग पीपीकर व्यायाम करनेके लिये संसारमें विख्यात हैं। यदि ये लोग भङ्ग न पीकर व्यायामशील बनते तो इनका शारीरिक सुधार होकर पूर्ण आयु पाते और अधिक कीर्त्ति प्राप्त कर सकते थे।

मनुष्यको चाहिये कि पहले अपने अङ्गोंकी परीक्षा कर ले। कौनसा अङ्ग कमजोर है, कौनसा बलवान है। इस बातको अच्छी प्रकार जान लेनेके बाद, जौनसा अङ्ग निर्बल हो, उसे ही सबल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। मान लीजिये कि आपकी पाचन-क्रिया खराब हो चुकी है और भोजन हजम नहीं होता है तो अन्य अङ्गोंकी कसरतके साथ ही साथ पेटकी कसरत पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस प्रकार एक दिन आपका पेट बिना किसी ओषधिके ही ठीक हो जावेगा! व्यायामसे मतलब आरोग्यता और दीर्घायुसे है। जो व्यायाम शील होकर वैद्य, हकीम, और डाक्टरोंके यहाँ जाता है, उसका व्यायाम व्यर्थ है। अर्थात् व्यायाम करने वालेको कोई रोग नहीं होने पाता और यदि हो भी जावे तो उसे व्यायाम द्वारा ही नष्ट कर देना

चाहिये। प्रत्येक अङ्गके व्यायाम अलग अलग हैं—उन्हें आसन कहते हैं। आसन करने वाले कभी रोगी नहीं होते और अकाल मृत्यु नहीं पाते! यद्यपि आसन एक प्रकारके व्यायाम ही हैं, तथापि हम अब अपने अगले प्रकरणमें ही इस विषय पर कुछ लिखेंगे। यहाँ, इसी प्रकरणमें आसनोंका सम्मिलित कर देनेसे प्रकरण वृद्धिका भय है। अतएव इस विषयको व्यायामसे सम्बन्ध होने पर भी पृथक कर दिया है।

प्राचीनकालमें आसनोंका आसन व्यायाम-पद्धतिमें अत्यन्त ऊँचा था। लोगोंका कहना है, कि चौरासी लाख आसन हैं—जितनी जीव जाति हैं, उतने ही आसन हैं। उनमेंसे :—

"चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानिच।"

चौरासी आसन विख्यात हैं। अष्टांग योगमें आसनोंका तीसरा अङ्ग है। आसनोंसे शरीरकी नस, नाड़ियोंकी शुद्धि और सब शरीरमें रुधिरका उत्तम सञ्चार होनेसे शरीर स्वस्थ रहता है। आसन दो प्रकारके हैं (१) स्वास्थ्य-प्रदायक आसन और (२) ध्यान धारणाके साधक आसन। स्वास्थ्य प्रदायक आसन अनेक हैं और ध्यान धारणाके आसन सिर्फ २।४ ही हैं। जिन जिन आसनोंका हमने अनुभव किया हैं, सिर्फ उन्हें ही हम यहाँ सचित्र, विधि-सहित लिखेंगे। हमारे पाठक इन आसनों द्वारा नीरोगता और स्वास्थ्य सम्पादन करेंगे, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

जब कि देशका पतन आरम्भ हुआ, उस समय प्रत्येक बातका विपरीत रूप बना लिया गया। वाम मार्गने जहाँ

देशके देव देवीतकको नहीं छोड़ा, लिङ्ग और भगका पूजन आरम्भ कर दिया, वहाँ योगाभ्यासके चौरासी आसनोंकी भी मिट्टी पलीद कर दी गई। जगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके गुंबदमें हमारे इस कथनके पुष्टि कारक अनेक चित्र बने हुए हैं। वे चित्र अत्यन्त गन्दे हैं, उन्हें देखते ही आँखें मूँदनी पड़ती हैं। वाममार्गियोंने हमारे इन योगके ८४ आसनोंको भोग विलास—ऐशो आराममें स्थान दे दिया!! आज यह हालत है, कि जहाँ अशिक्षित या अर्द्ध शिक्षित मनुष्यके आगे "आसन" नाम लिया कि वह स्त्रीप्रसंग विषयक आसन समझ बैठता है। "चौरासी आसनों" के कोकशास्त्रके विज्ञापनोंको देख देखकर कभी कभी हमारे पढ़े लिखे शिक्षित नवयुवक भी उस पुस्तकको प्राप्त करनेके लिये प्यासे मृगकी भाँति दौड़ते हैं। यद्यपि सरकारकी ओरसे ऐसे गन्दे चित्रवाले कोकशास्त्र छापना और बेचना जुर्म है, तथापि अब भी कई पुस्तक विक्रेताओंके यहाँ गुप्त रीतिसे पुस्तकें बिकती हैं। हमारे पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये, कि ऐसी गन्दी पुस्तकोंको कभी पासमें नहीं रखें। मैथुनके समय आसन करनेवाले व्यक्ति शीघ्र ही रोगी होकर मृत्युके मुखमें पहुंच जाते हैं। अतएव इन योगके आसनोंका उचित रीतिसे अभ्यास करना ही दीर्घायुका दाता है।

आसनोंका साधन—अभ्यास धीरे धीरे होता है, फल भी कुछ देर से ही होता है। इसलिये आसनके अभ्यासमें मनुष्यको

जल्दबाज नहीं होना चाहिये। प्रयत्न करते रहने पर एक न एक दिन अवश्य सफलता मिलती है। संशय रहित होकर ही अभ्यास आरम्भ करना चाहिये। इसको मैं कर सकूंगा या नहीं, इसमें मुझे सफलता मिलेगी या नहीं? इत्यादि संशय मनसे निकालकर ही आसनोंका अभ्यास आरम्भ करना चाहिये। मैं इस कार्यको कर सकूंगा या नहीं? इस तरहकी शङ्का करते हुए बहुतसे लोग अपनी आयुका अधिकांश भाग व्यतीत कर देते हैं। यह संशययुक्त स्वभाव बहुत ही बुरा है, आयुका नाश इस संशयसे ही होता है। संशयके कारण बल-वान भी निर्बल और बुद्धिमान भी मूर्ख बन जाता है। इसी-लिये योगिराज भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने अपने गीताके उप-देशमें अर्जुनसे कहा है कि—"जो अपने विषयमें संशय करते हैं, वे नाशको प्राप्त होते हैं।" संशयी मनुष्य एक कामको अधूरा छोड़कर दूसरेको और दूसरेको, अधूरा छोड़कर तीसरेको, इस प्रकार करते करते ही अपना आयुष्य पूर्ण कर देता है। अपूर्ण कार्योंसे उसे नुकसान होता है, जिससे घबराकर वह अल्पायु हो जाता है। अतएव दीर्घायु चाहने वाले व्यक्तिको संशय रहित होकर, उचित रीतिसे, श्रद्धा पूर्वक, आसनोंका अभ्यास आरम्भ करके सफलता प्राप्त करनी चाहिये।

आसनोंके करनेमें प्राणायाम मुख्य है। अतएव प्रत्येक आसन प्राणायाम पूर्वक करनेसे अत्यन्त लाभ होता है। आसन करनेके पूर्व "सिद्धासन" लगाकर सौ पचास बार "भस्त्रिका"

कर लेना चाहिये। पचास या सौ दण्ड लगानेसे शरीरमें जो बल नहीं आता वह "भस्त्रिका" से आता है। अब हम मस्तकके आसनसे आरम्भ करेंगे और जहाँतक हो सकेगा प्रत्येक अङ्गका व्यायाम लिखनेका प्रयत्न करेंगे।

(१) शीर्षासन—इसे "कपाली आसन" भी कहते हैं। यह ब्रह्मचर्यके लिये बड़ा ही उपयोगी है। वीर्यदोषके रोगियोंको इससे बड़ा ही लाभ होता है। स्वप्नदोष नष्ट हो जाता है और चिरकालके अभ्याससे मनुष्य ऊर्ध्वरेता बन जाता है। मस्तिष्कके रोग सब दूर हो जाते हैं। आँखोंकी कमजोरी, बधिरता, आदि सब दोष मिट जाते हैं। जिन लोगोंके बाल सफेद हो गये हों, उन्हें छः महीने इस शीर्षासनके करनेसे चमत्कार दिखाई देगा—बाल जो सफेद हो गये थे, वे बिना किसी खिजाबके काले हो जावेंगे। यह क्या कुछ कम प्रभाव है? शीर्षासनसे विविध लाभ हैं, जिन्हें यहाँ लिखकर बतलाना असम्भव है। यद्यपि यह आसन बड़ा ही कठिन है तथापि सर्वोत्तम है।

सिरके बलपर खड़े रहनेका नाम शीर्षासन है। जब यह आसन करना हो तब जमीनपर बहुत ही नरम आसन रखकर उसपर सिर रखिये। आसन चार छः अंगुल मोटे गद्देलेकी तरह नरम हो—नहीं तो मस्तकको प्रारम्भमें अत्यन्त कष्ट होगा। किसी लम्बे कपड़ेकी गेंडुई सी बनाकर उसमें भी सिर रखकर यह आसन लगाया जा सकता। आसन पर सिर रखनेके
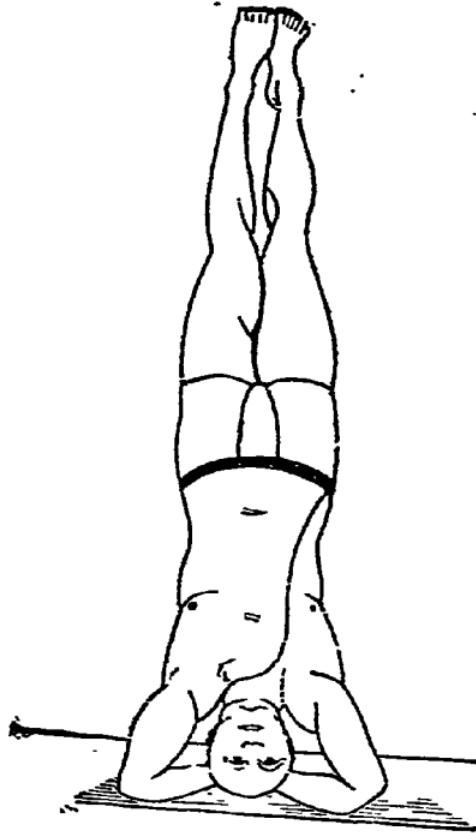
शीर्षासन नं० २

(देखिये—पृष्ठ संख्या १७७)

पश्चात् सिरको पीछेकी तरफ दोनों हाथोंसे पकड़ लीजिये और पावोंको सीधा करके शरीरको समसूत्रमें दीवारके सहारे खड़ा कर दीजिये। जब तक यह अभ्यास अच्छी तरह न हो, तबतक इसे दीवारके आसरेसे ही करना चाहिये। पूर्ण अभ्यास होनेके बाद दीवारके आश्रयकी आवश्यकता नहीं रहेगी। खूब अभ्यास हो जानेके बाद पावोंको आगे पीछे इच्छानुसार घुमा सकते हैं—पद्मासन तक भी लगा सकते हैं। आरम्भिक अभ्यासमें १। २ सेकेण्डसे अधिक इसे नहीं करना चाहिये। एक दो महीनेके अभ्यासके पश्चात् आप आध घण्टेतक इसे कर सकते हैं। इससे कभी किसी प्रकारके नुकसान की सम्भावना ही नहीं। इसे स्त्री पुरुष दोनों कर सकते हैं। इस चित्रके निरीक्षणसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है, देखो चित्र शीर्षासन नं० १ और नं० २।

यद्यपि शीर्षासनसे सिर सम्बन्धी सभी व्यायाम हो जाते हैं तथापि हम अलग अलग अङ्गोंके अलग अलग व्यायाम बतावेंगे। क्योंकि वेद में—

"पश्येम शरदः शतं।"

यह उपदेश १०० वर्ष तक अर्थात् मृत्यु पर्य्यन्त "तेज निगाह रहनी चाहिये" इस बातकी आज्ञा देता है। अतएव नेत्रका व्यायाम भी यहाँ बतला देना ठीक होगा। क्योंकि ये नयन (ले चलनेवाले) हैं। विना नयनके संसार व्यर्थ सा ज्ञात पड़ता है—जीवन बेकार हो जाता है। किसी कविने कहा है—

"पुनर्दारा पुनर्वित्तं नच नेत्रं पुनः पुनः।"

अतएव नेत्र रक्षा परमावश्यक है। हमारे बहुतेरे भाई चश्मोंके भरोसे अपने नेत्रोंकी परवाह नहीं करते। यह एक बड़ी भारी गलती है। हम यहाँ ऐसी क्रियाएँ बतावेंगे, जिनके अभ्याससे नेत्रोंकी ज्योति आमरण कम नहीं होगी! नेत्रोंका व्यायाम—पद्मासन, अथवा सिद्धासन लगाकर पृष्ठवंशको समरेखामें रखकर, सामने किसी दीवारपर या कागजपर, काले अथवा हरे रङ्गके नीचे लिखे अनुसार चित्र बना रखने चाहिये।

पहिले नं० १ पर अपनी दृष्टि जमानेका अभ्यास कीजिये। बिना पलक छुपाये एक टक दृष्टिसे इसे देखते रहिये, जब जब आँखोंमें पानी आ जावे, तब तब कुछ देरके लिये आँखें मूँद लीजिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी दृष्टि तो बढ़ती ही है। प्रत्येक अभ्यास आरम्भमें बहुत ही थोड़ा करना चाहिये, नहीं तो लाभकी जगह हानि होना सम्भव है। बादमें चित्र नं० २ त्रिकोणका दीवारपर लगभग एक या डेढ़फुटका बनाइये। रेखाओंकी मोटाई एक इञ्च से कम नहीं होनी चाहिये। अब सिद्धासन या पद्मासन बैठकर दाहिनी ओरसे बाईं ओर तथा बाईं ओरसे दाहिनी ओर इन रेखाओंपर अपनी दृष्टिको चक्कर दीजिये। इसी प्रकार चित्र नं० ३ की भी क्रिया करनी चाहिये। जब नेत्र थक जावें तक यह क्रिया बन्द करके आँखे मूँद लेनी चाहिये और ४।५ मिनटके बाद खोलनी चाहिये।

पूनमके चाँदको एकटक दृष्टिसे लगभग आध घण्टे तक

नं० १

नं० २

नं० ३

(देखिये—पृष्ठ संख्या १७८)

देखते रहनेसे भी दृष्टिमांद्य रोग नहीं हो सकता। सातवें आठवें दिन या जब कभी नेत्रोंमें खुजली चले, तब अपने हाथोंकी गद्दियोंसे उन्हें धीरे धीरे मसल देना चाहिये। दातुन करनेवाले व्यक्तिकी दृष्टि कभी मन्द नहीं हो सकती, बशर्त्ते कि दातुन क्रिया पूर्वक किया जाता हो। अपने एक हाथकी हथेली पर दूसरे हाथकी तर्ज्जनी अँगुलीको जल्दी जल्दी जोरसे घिसिये, जब उसमें खूब गर्मी पैदा हो जाय तब उससे अपने नेत्रोंको १०।१२ बार सेक दीजिये ऐसा करनेसे नेत्रमें फुन्सी वगैरः रोग कदापि नहीं होगा।

हठ योग वर्णित छः कर्मोंमें एक कर्म "नेती" है, उसके करनेवालोंको कभी नेत्र दोष नहीं होता और जिन्हें किसी प्रकारकी नेत्र सम्बन्धी बीमारी होती है, वह भी कुछ महीनोंके अभ्याससे हट जाती है। नेतीकी प्रशंसामें निम्न श्लोक देखिये—

> "कपाल शोधिनीचैव दिव्य दृष्टि प्रदायिनी।
> जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेति राशु निहंतिच।"

यदि हमारे बताये हुए चित्रोंके अनुसार आपको नेत्र-व्यायाम करनेमें कुछ असुविधा पड़े तो किसी भी वस्तुको अपना लक्ष्य मानकर उसपर दृष्टि जमाइये। इसे योगमें "त्राटक कर्म" कहते हैं। देखिये—

> "अश्रु सम्पात पर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकम् स्मृतम्।"

आँखोंमें आँसू न आ जावे तबतक त्राटक करना चाहिये। अब इसका माहात्म्य भी सुन लीजिये—

"मोचनं नेत्र रोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ॥
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटक पेटकम् ॥"

यह नेत्र रोग तथा आलस्यको दूर करता है। इस त्राटक कर्मको स्वर्णकी सन्दूकके समान गुप्त रखना चाहिये।

कानोंका व्यायाम—वेद कहता है—

"शृणुयाम शरदः शतम्।"

अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त श्रवणशक्तिमें न्यूनता न आने पावे। इस लिये, कानोंके व्यायामकी भी आवश्यकता है। सबसे प्रथम सिद्धासन या पद्मासन बैठकर अपने मनकी सब शक्तियाँ कानोंमें प्रेरित कीजिये। उस समय सिवाय कानोंके दूसरी किसी भी इन्द्रियमें अपने मनको मत जाने दीजिये। मनको बिलकुल एकाग्र कर दीजिये। अब आप सूक्ष्म शब्द सुननेका प्रयत्न कीजिये। जो शब्द आपके कानोंमें मन्द मन्द आ रहा है, उसे स्पष्ट सुननेके लिये कानोंको उधर लगाइये। यदि आपके पास घड़ी है तो उसे दूरीपर रखकर उसका सूक्ष्म शब्द ध्यान पूर्वक सुननेका प्रयत्न कीजिये। प्रतिदिन घड़ीको कुछ दूर हटाते जाइये। ऐसा करनेसे आमरण आप बधिरतासे बचे रहेंगे। कानोंमेंके मलको निकालनेके लिये तिनका, नहरनी, दियासलाई, होल्डर, कील आदि कदापि मत डालिये। उस परमात्माने इसकी रचना ही ऐसे कौशलसे की है। जिसमें कोई मैल अन्दर नहीं रह सकता। आप ही आप बाहिर आ जाता है। खुजाल चले तो तिल्ली, सरसों, या खोपरेका तेल

४। ५ बूँद डालकर कुछ देर कानमें तेलको रखनेके लिये लेट जाना चाहिये। अकारण ही अस्पतालमें जाकर अपने कानोंमें पिचकारी लगवाना, धुलवाना, तथा ग्लीसरीन आदि पदार्थ डलवानेसे वधिरता हो जाती है। कानोंसे कभी कर्कश—कर्ण कटु शब्दोंको नहीं सुनना चाहिये। सदा सर्वदा "भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयामि।" का अनुयायी होना चाहिये।

नाकका व्यायाम—नासिकाके द्वारा ही प्राण वायु इस शरीरमें पहुँचता है। यह प्राणवायुका मार्ग है, अतएव इस मार्गको अत्यन्त बलवान और शुद्ध रखना चाहिये। श्वासोच्छ्वास की क्रिया नासिकाके द्वारा ही होती है। अतएव यह जीवनका मार्ग है। इसका व्यायाम "नेती क्रिया" है। एक फुट लम्बी सूतकी रस्सी बनाइये, जो न अत्यन्त मोटी और न अत्यन्त पतली हो। न अधिक मुलायम हो, न अत्यन्त करी हो। इस रस्सीका पिछला हिस्सा ८। ६ अँगुलतक विना वल दिया हुआ, खुला ही रखना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर यह नेती मोम लगाकर करी भी की जा सकती है। उत्तम पवित्र जलाशयके किनारे एकान्तमें यह क्रिया करनी चाहिये। वहता हुआ जल बहुत ही उत्तम होता है। घरमें भी विपुलजलसे अथवा नलके निकट यह क्रिया हो सकती है। नेतीके अग्रभागको नाकके छेदमें डालकर मुख-मार्गसे निकालना चाहिये, ऐसा दोनों नासिका रन्ध्रोंसे कराना चाहिये। ८। १० दिनके प्रयत्नसे नेती मुख-मार्ग द्वारा निकल आती है। पूर्ण

अभ्यास तब समझना चाहिये कि नासिकामें नेती शुरू नाकसे श्वास खींचा जावे और मुखसे त्यागा जावे। ऐसा करनेसे जब नेती मुखमार्गसे बिना हाथ लगावे बाहिर निकल आवे तब समझना चाहिये कि नेती क्रिया अच्छी प्रकार सिद्ध हो चुकी। नासिका द्वारा पानी पीना भी नाकका उत्तम व्यायाम है।

मुखका व्यायाम—दाँतोंका व्यायाम. वृक्ष शाखाके दातुनसे दाँतोंको ख़ूब रगड़ कर साफ कर देना चाहिये; जिह्वाको दातुनकी दो फाँक करके, एकको बीचसे तोड़कर ज़बानका मैल, घिसकर निकाल देना चाहिये। जिह्वाके नीचे तर्ज्जनी अँगुलीसे रगड़ देना चाहिये। कण्ठमें दूरतक तर्ज्जनी और मध्यमाको डालकर साफ कर डालना चाहिये। जिस प्रकार दीर्घायु चाहनेवालेको नाककी शुद्धि और व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार मुखकी शुद्धि और व्यायाम भी अत्यन्त ही जरूरी बात है। डाक्टर लोग केवल दाँतोंको ही शुद्ध करके पेटकी बड़ीसे बीमारी हटा देते हैं। हमारे मुखमें जबड़ेके निकट कपोलोंमें प्रकृतिने लालोत्पादक ग्रन्थियाँ रखी हैं—इनमेंसे रातदिन लार पैदा होकर पेटमें जाती रहती है। यही लार हमारे पेटमें जाकर भोजनको पचाती रहती है। हमें इस बातका रातदिन विचार रखना चाहिये, कि पेटमें सदा शुद्ध निर्दोष लार जावे। अतएव दाँतोंको और मुखको सदैव शुद्ध और दुर्गन्ध रहित रखना चाहिये, जो इस बातका ध्यान रखेगा,

सिंहासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८३)

वह अवश्यमेव दीर्घायु प्राप्त करेगा। मौखिक व्यायामका एक उत्तम आसन भी है। उसे सिंहासन कहते हैं।

(२) सिंहासन—अण्डकोषोंके नीचे मूलस्थानमें बायें पैरकी एड़ी दाहिनी ओर और दाहिने पैरकी एड़ी बाईं ओर लगाकर बैठ जाइये। दोनों हाथोंको फैलाकर घुटनोंपर रखिये, बादमें मुख फाड़कर जबानको खूब लम्बी बाहिरकी तरफ निकालिये और अपनी दृष्टि नासिकाके अग्र भागपर स्थिर कर दीजिये। यह सिंहासन कहलाता है। इससे मुखका व्यायाम अच्छा होता है। इसको योगी लोग सब आसनोंमें उत्तम मानते हैं :—

"सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगी पुंगवैः।"

देखिये चित्र "सिंहासन" का।

गालोंका व्यायाम—गालोंका व्यायाम करते रहनेसे मुखपर झुर्रियाँ नहीं पड़ने पातीं तथा कीलें और मुँहासे—फुन्सियाँ आदि नहीं होतीं। प्रातःकाल उठते ही शय्यामें पड़े पड़े या बैठकर अपने गालोंको दोनों हाथोंकी गद्दियोंसे धीरे धीरे बल पूर्वक ऊपरकी ओर मसलना चाहिये। स्नान करते समय, स्पंजसे अथवा मोटे भीगे वस्त्रसे भी गाल आदि मुख-चर्मको रगड़ना चाहिये। इस व्यायामसे मुखकी कान्ति बढ़ती है और गालोंमें बुढ़ापे तक भी झुर्रियाँ नहीं पड़तीं।

छातीके आसन।

(३) वृद्धपद्मासन—बायें पैरको दाहिने पाँवकी जंघा पर और दाहिने पैरको बायें पैरकी जंघापर रखिये। बादमें पीठके

पीछेसे दाहिने हाथसे दाहिने पैरका अँगूठा या एड़ी पकड़कर सीधे बैठकर प्राणायाम करना चाहिये। इसे हठयोग प्रदीपीकामें "मत्स्येन्द्रासन" नामसे कहा है। इस आसनसे—

"मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तिं प्रचण्ड रुग्मण्डल खण्डनास्त्रम्।
अभ्यासतः कुण्डलिनी प्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वंच ददाति पुंसाम्॥"

अग्नि प्रदीप्त होती है, रोगोंका समूह नष्ट हो जाता है। कुण्डलिनी अर्थात् आधारको प्रबोधित करके तृतीय नेत्रको शुद्ध करता है।

(४) वीरासन—दोनों घुटनोंके बल पैरोंकी एड़ीपर बैठ जाइये। बादमें दोनों हाथोंसे अपनी भुजाओंको अच्छी तरह पकड़कर दोनों हाथोंको मस्तकके पिछले भागमें रखें। इस प्रकार बैठ जाने पर पीठको बाँकी न रखते हुए तथा छातीको आगेकी ओर निकालकर; शान्तपूर्वक दीर्घश्वासोछ्वास की क्रिया करनी चाहिये। देखिये चित्र "वीरासन"।

(५) भुजङ्गासन—औंधे सोकर दोनों हाथोंको नाभीके पास भूमिपर दृढ़ रखिये। पीछेका भाग अर्थात् पैरोंको अँगूठे तक जमीनसे लगा दीजिये। अब धीरे धीरे हाथोंके बल उठिये। छातीको आगेकी तरफ निकाल कर तन जाइये। याद रखिये पीछेसे आपके पाँव न उठ जावें। गर्दनको सीधी रखते हुए प्राणायाम कीजिये। जब तक आप थक न जावें, इसी आसन पर स्थिर रहिये। देखिये चित्र "भुजङ्गासन"। सर्पके फनकी तरह छातीसे माथेतकका भाग इस आसनमें उठा रहना चाहिये।

बद्ध-पद्मासन ।

वीरासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८४)

उत्थित पद्मासन ।
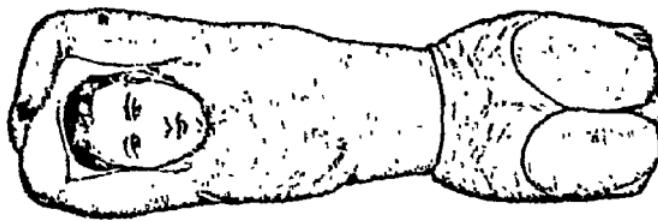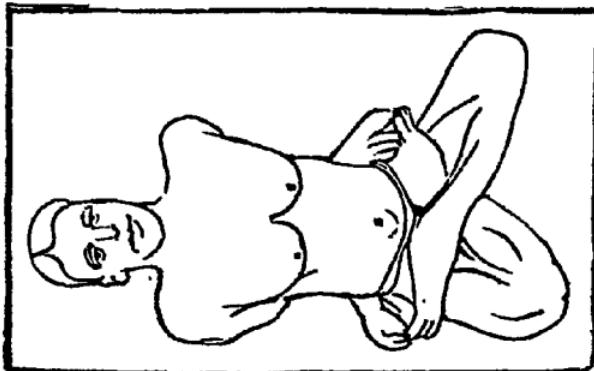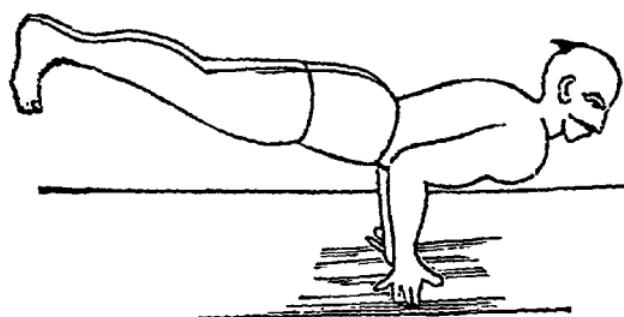
मयूरासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८५)

इसी लिये इसे भुजङ्गासन कहते हैं। इससे पेटको भी लाभ होता है।

छातीके इन तीन आसनोंके अतिरिक्त और भी हैं, जिन्हें यहाँ लिखना केवल विषयको बढ़ाना है और न हमें उनका अनुभव ही है। हाँ दण्डासन (दण्ड) भी छातीके लिये बड़ा ही लाभदायक आसन है। इसका वर्णन हम अपने व्यायाम प्रकरणमें कर आये हैं। दीवारके कोनेमें दोनों दीवारों पर हाथ टेक कर खड़े खड़े दण्ड लगानेसे भी छातीका उत्तम व्यायाम होता है।

पेटके आसन।

(६) उत्थितपद्मासन—अच्छी प्रकार पद्मासन लगाकर अपने दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको फैलाकर या बिना फैलाये ही हथेलीको जमीनपर जमाइये। बादमें धीरे धीरे अपने शरीरको भूमिसे उठाकर कोहनियोंके ऊपर तक ले जाइये। स्मरण रहे गर्दन और छाती झुकने न पावें। कुछ समय तक इसी दशामें स्थित रहिये। देखिये चित्र उत्थितपद्मासन—

इस आसनमें दोनों हाथ बाहिर हैं। यदि दोनों हाथ जाँघ और पिंडरियोंके बीचमें रख कर उठा जावे तो कुक्कुटासन हो जाता हैं। यह पेटके लिये लाभप्रद होगा।

(७) मयूरासन—जिस प्रकार मोर नामक पक्षी चलता फिरता है, उसी प्रकार यह आसन लगानेसे इसका नाम मयूरासन है। पहिले अपनी दोनों हथेलियाँ भूमिपर अच्छी तरह

जमाइये, दोनों कोहनियाँ नाभिके आस-पास दोनों ओर लगाइये। अब अपने शरीरका समस्त भार हाथोंपर तोलिये। ऐसी दशामें कुछ देर ठहरिये। तत्पश्चात् छाती और मुखको थोड़ा आगेकी तरफ झुकाइये। इस समय पाँव आपोआप ऊपरको उठेंगे। उन्हें उठने दीजिये। बादमें पैरोंको नीचे और सिरको ऊँचा कीजिये। चित्र देखनेसे सहज हीमें समझा जा सकेगा।

(८) उत्तानपादासन—मुर्देकी तरह शिथिल गात्र होकर भूमिपर लेट जाइये। हथेलियाँ भूमिपर लगा दीजिये। अब धीरे-धीरे पाँवोंको ऊपरकी ओर उठाइये। जल्दी पैर ऊँचे कर देना सहज है, किन्तु इससे कोई लाभ न होगा। जब कि पाँव लगभग एक डेढ़ फुट ऊँचे हो जावें तब उन्हें वहीं स्थिर रखिये। जितनी देर रख सकें रखियेगा। जब उतारना हो तो धीरे-धीरे ही भूमिपर उतारें। देखिये चित्र।

(९) उत्तान कूर्मासन—पद्मासन लगाकर बैठ जाइये। फिर पूर्व लिखित कुक्कुटासनकी भाँति हाथोंको जाँघों और पिण्डरियोंमेंसे निकालकर अपनी गर्दनको हाथकी कैंची फाँस कर पकड़ लीजिये। इसे कुछ लोग "गर्भासन" भी कहते हैं। देखिये चित्र—

(१०) सर्वाङ्गासन—भूमिपर चित्त सीधे लेट जाइये। दोनों हाथ बराबरमें (बगलोंमें) हथेली फैलाकर भूमिपर जमा देने चाहियें। अब अपनी दोनों टाँगोंको कड़ी करके बिलकुल सूधी रखते हुए, बहुत आहिस्ता-आहिस्ता ऊपरको उठाइये और

उत्तान पादासन ।

उत्तान कूर्मासन ।
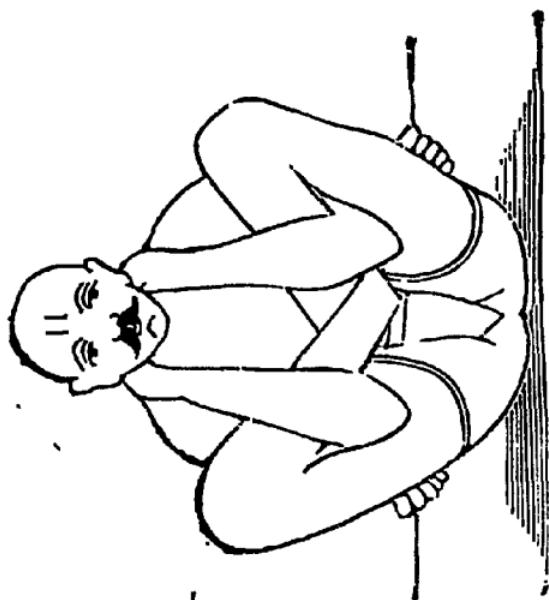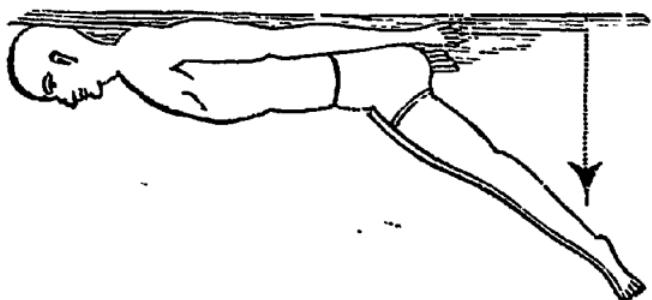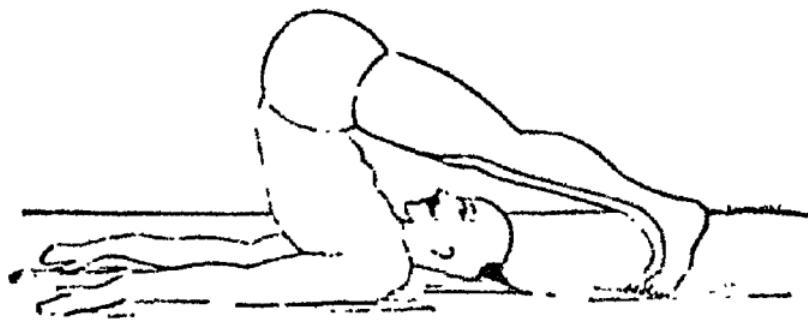
(देखिये—पृष्ठ संख्या १८६)

सर्वाङ्गासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८६)

मत्स्यासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या ।

उन्हें अपने सिरके ऊपरसे ले जाकर भूमिपर टिका दीजिये। देखिये चित्र सर्वाङ्गासन। अब फिर पैरोंको भूमिसे उठाकर आहिस्ता-आहिस्ता वापस ले जाइये। जब जमीन एक हाथ भरके करीब रह जावे तब पाँव एकदम नीचेकी ओर गिरना चाहेंगे, इस समय बल पूर्वक पैरोंको सँभालकर बहुत धीरे-धीरे ले जाकर भूमिपर रखना चाहिये। अभ्यास बढ़ जानेपर इसे भी शक्तिके अनुसार बढ़ा देना चाहिये। स्मरण रखिये, क्रिया करते समय हाथ, पीठ और मस्तक न उठने पावें।

इनके अतिरिक्त उदर सम्बन्धी और भी कई क्रियाएँ हैं। हाथोंकी कैंची बनाकर पेटको जोरसे दबाकर खड़े हो जाइये और फिर धीरे-धीरे जितना अधिक हो सके झुकिये और पेटको अच्छी तरह दबाये रखिये। यह क्रिया भी पेटके लिये लाभप्रद है। सीधे खड़े रहकर पहिले दाहिना घुटना दाहिने वक्षस्थलको और फिर बायाँ घुटना बायें वक्षस्थलमें लगाइये। जब एक घुटना वक्षस्थलको लगे तब दूसरे पैरके बल भूमिपर खड़े रहना चाहिये। यह क्रिया उदरके लिये उपयोगी है। पद्मासन लगाकर बराबर उड्डियान करना पेटके लिये सबसे उत्तम व्यायाम है। उड्डियान क्रियाका वर्णन हम पीछे प्राणायाम प्रकरणमें कर आये हैं, पाठक वहाँ देख लें। पेटके इन आसनोंसे, जिनके पेट आगे बहुत लटक आये हैं, उनको भी लाभ होता है।

सीधे लेटकर हाथ पैरोंको शिथिल कर दीजिये, मानो उनमें जान ही नहीं है। बादमें कन्धेतक गर्दन उठाइये और दोनों

हाथोंसे पेटको खूब मसलिये, पश्चात् अँगुलियोंसे पेटके भीतर की आँतोंको जल्दी जल्दी पकड़िये और इसके बाद मुट्ठी बाँधकर दोनों हाथोंसे पेटपर जल्दी जल्दी मुष्टि-प्रहार कीजिये। मुट्ठियाँ जोरसे नहीं मारनी चाहियें और न अत्यन्त धीरे-धीरे ही मारनी चाहियें। इस क्रियाको करते समय गर्दनको भूमिसे ऊपर अवश्य उठाये रखना चाहिये। चित्त लेटकर भूमिको हाथसे बिना छुए तथा पैरोंको जमीनसे लगाये हुए धीरे-धीरे उठिये। अथवा हाथोंकी कैंची बनाकर गर्दनके नीचे लगाइये और बिना पैरों को उठाये उठ बैठिये। ये सब क्रियाएँ पेटको शुद्ध रखती हैं। अग्निमांद्य, नलोंका भरना, जलोदर, बदहज्मी, तिल्ली, दस्त, संग्रहणी, अतीसार, वायगोला, यकृतकी सूजन ऐसी सैकड़ों बीमारियाँ नहीं होतीं और होनेपर इन क्रियाओं से हटाई जा सकती हैं।

पीठके आसन।

(११) जानुशिरासन—अपने बाएँ पाँवकी एड़ी मूल स्थानमें जोरसे जमाकर बैठ जाइये। दूसरा पैर सीधा करके दोनों हाथों की कैंची बनाकर, उसके पंजेको अच्छी तरह पकड़ लें। दोनों पाँवों को अच्छी तरह जमीनपर लगा देना चाहिये। अब धीरे-धीरे अपने सिरको अपने दाहिने पैरके घुटनेपर रखनेका प्रयत्न कीजिये। पहिले-पहिल इस आसनके लगानेमें अत्यन्त कष्ट होता है, बादमें कुछ दिनके अभ्याससे अच्छी प्रकार लगाया
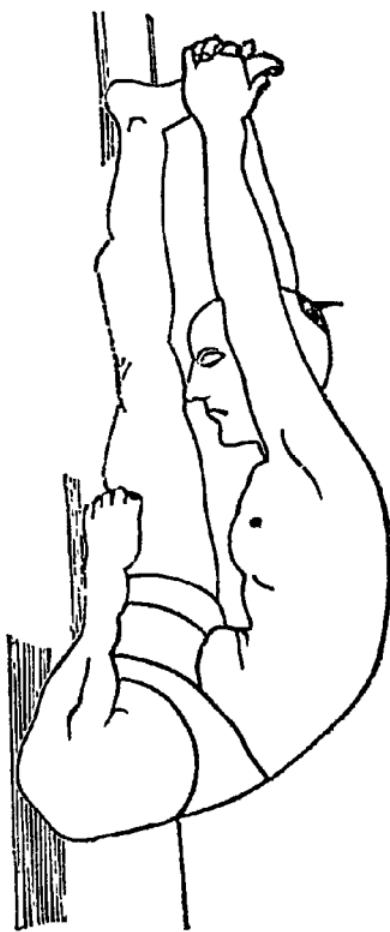
जानुशिरासन।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८८)

पश्चिमोत्तानासन ।

ऊर्ध्वधनुरासन ।
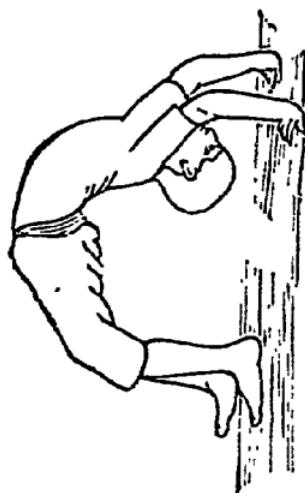
(देखिये— पृष्ठ संख्या १८६)
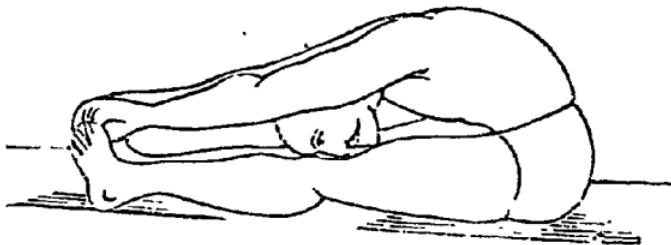
जा सकता है। इसका चित्र देखनेसे इसे आप अच्छी तरह समझ सकेंगे। यह जानुशिरासन टेबलपर भी खड़े रहकर लगाया जा सकता है। इसमें अन्तर इतना ही होता है, कि बायाँ पैर भूमिपर सीधा रहता है और दाहिना टेबलपर फैलाकर पीछे लिखे अनुसार क्रिया करनी पड़ती है।

(१२) पश्चिमोत्तानासन—दोनों पावोंको बराबर रखते हुए पृथ्वीपर सीधे फैला देने चाहियें। पश्चात् दाहिने हाथसे दाहिने पैरका अँगूठा और बायेंसे बायें पैरका अँगूठा पकड़कर अपने सिरको दोनों घुटनोंपर रख दीजिये। आरम्भमें इस आसनके करनेमें बड़ा ही कष्ट होगा। परन्तु कुछ दिनके अभ्याससे यह अच्छी प्रकार होने लगता है। देखिये पश्चिमोत्तानासन का चित्र।

(१३) अर्ध्व धनुरासन—पीठकी तरफ धीरे-धीरे झुककर दोनों हाथ जमीनपर जमा दीजिये। केवल हाथों और पैरोंके आसरे सारे शरीरको धनुषकी तरह गोल रखते हुए स्थिर रहिये। इसे ही ऊर्ध्व धनुरासन कहते हैं। देखिये चित्र। कुछ लोग इसे चक्रासन भी कहते हैं। अन्तर इतना ही है, कि चक्रासनमें हाथ और पैर दोनों मिल जाने चाहियें।

(१४) मत्स्यासन—बायें हाथसे दाहिनी भुजाको और दाहिने हाथसे बाईं भुजाको पकड़कर, तथा पद्मासन लगाकर भूमिपर चित्त लेट जाइये और बल पूर्वक जितनी हो सके उतनी कमर (पीठ) को ऊँची उठाये रहिये। देखिये चित्र मत्स्यासन।

इस आसनको विधिवत् पानीपर लगानेवाला व्यक्ति घण्टों जलमें पड़ा रहनेपर भी नहीं डूबता।

(१५) उष्ट्रासन—पृथ्वीपर औंधे लेटकर दोनों हाथोंको पीठके ऊपरसे ले जाकर दोनों पैरोंके टखनोंको हाथोंसे पकड़कर अपनी ओर खींचिये। आगेसे जितनी हो सके, उतनी छाती उठाइये और पीछेसे जितनी हो सके, उतनी टाँगें उठाइये। इस प्रकार पेटके बलपर बहुत देरतक स्थित रहनेका प्रयत्न कीजिये। उष्ट्रासनका चित्र देखिये।

(१६) चतुष्पादासन—दोनों पावोंको बिलकुल करीं करके सीधे खड़े हो जाइये। बादमें बिना पैरोंको झुकाये हुए धीरे धीरे झुकते हुए, दोनों हथेलियोंको (पाँवोंके पंजोंके पास ही) भूमिपर रखकर स्थिर रहिये। इस समय दोनों हथेलियोंके बीचमें एक या सवा फुटका अन्तर रहना चाहिये। देखिये, चित्र चतुष्पादासन।

पीठके इन आसनोंसे, कटिशूल, मूत्राशय सम्बन्धी विकार और वीर्याशयके दोष दूर हो जाते हैं। जो कटिशूलसे दुखी हों और औषधोंसे उकता गये हों, उन्हें उक्त आसनों द्वारा अवश्य अपना दुःख दूर करना चाहिये।

हाथोंके आसन।

(१७) ताड़ासन—ताड़ वृक्षकी भाँति बिलकुल सीधे खड़े हो जाइये। दीवारके साथ लगकर भी यह आसन किया जा सकता है। सिरका पिछला भाग, पीठ, नितम्ब,

उग्रासन।

चतुष्पादासन।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १६०)

धनुरासन ।

वृश्चिकासन ।
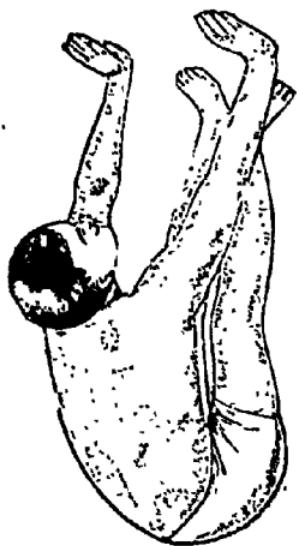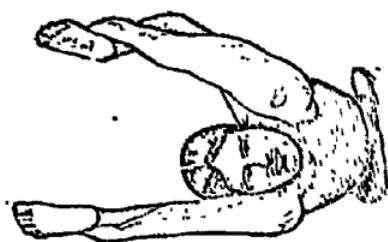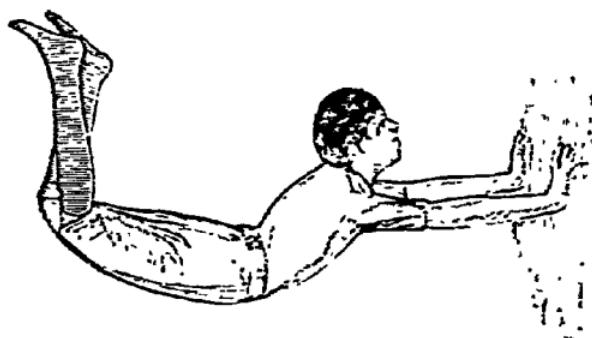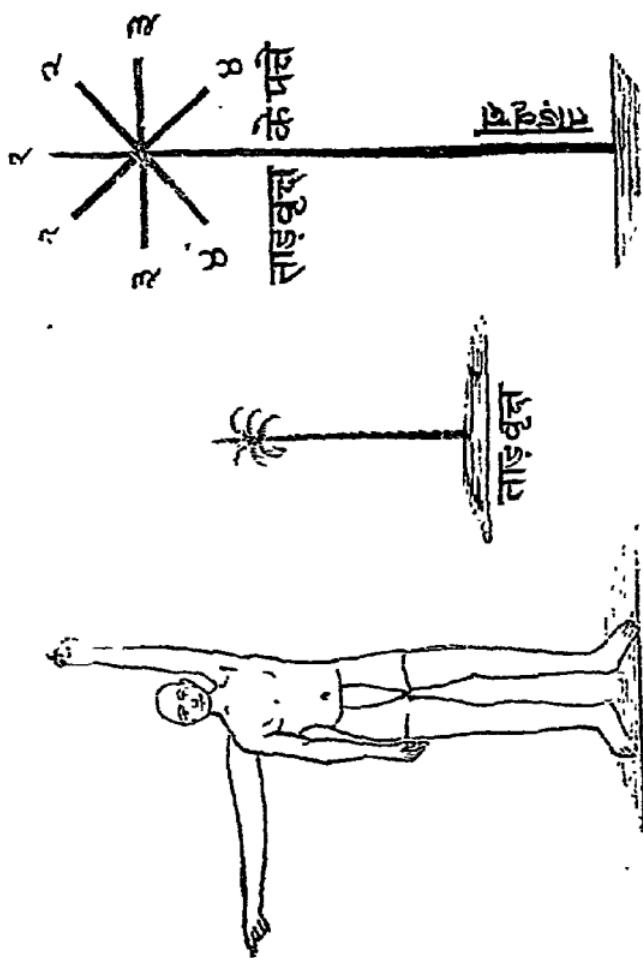
(देखिये—पृष्ठ संख्या १६१)

ताड़ासन।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १८१

पाँवकी एड़ी ये सब दीवारसे सटा दीजिये। अब एक हाथ ऊपरको बिलकुल तना हुआ सीधा कीजिये। यह हाथ पहिले एकके अंकके स्थानपर रखिये। बादमें २ के स्थानपर तत्पश्चात् ३ के स्थानपर और बादमें ४ के स्थानपर लाइये। इसी तरह अब दूसरे हाथका अभ्यास कीजिये। इसके बाद, दोनों हाथोंसे एक साथ कीजिये। हाथ खूब तने हुए रहने चाहियें और अभ्यास धीरे-धीरे करना चाहिये। यह आसन बहुत ही सरल है, किन्तु हाथोंके लिये, बड़ा ही लाभप्रद है। श्वासोच्छ्वास गम्भीरतापूर्वक करना चाहिये, तथा मानसिक शक्तिको हाथोंमें स्थापित कर देना चाहिये। एक अवस्थामें २।४ क्षण रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा बल्कि २।४ मिनिट तक रहनेसे ही लाभ होता है। इस चित्रको देखनेसे यह आसन शीघ्र ही समझमें आ जावेगा।

(१८) धनुरासन—दाहिने पैरको भूमिपर पर फैलाकर बैठ जाइये और उस पैरके अँगूठेको बाँये हाथसे पकड़ लीजिये ये हाथ पैर तने रखिये। अब बायें पैरके अँगूठेको दाहिने हाथसे पकड़कर, बायें पैर और दाहिने हाथके नीचेसे निकालकर कान तक खींचिये। जिस प्रकार बल पूर्वक धनुष खींचकर निशाना बाँधा जाता है, उसी तरह बल पूर्वक तथा लक्ष्यपूर्वक यह आसन लगाना चाहिये। इस आसनका चित्र देखनेपर आप सहज हीमें समझ सकेंगे।

(१९) वृश्चिकासन—यह आसन अत्यन्त कठिन है। शीर्षासनकी तरह यह भी बहुत दिनोंमें सिद्ध होता है। इसके

अभ्यासका यही ढंग है, कि पहिले दोनों हाथोंको जमीनपर जमाकर उसपर अपने शरीरका वजन तोलनेका प्रयत्न कीजिये। कई दिनोंके अभ्याससे आप अपने हाथोंके बलपर अच्छी तरह खड़े हो सकेंगे। जब यह अभ्यास हो जावे, तब, जिस प्रकार पैरोंसे लोग चलते हैं, उसी प्रकार हाथोंपर चल सकते हैं। इसे साधारण बोलचालमें "मोरपञ्जा" कहते हैं। यह एक प्रकारका शीर्षासन ही कहा जा सकता है—अन्तर इतना ही है कि इसका सारा बोझ हाथोंपर ही होता है। देखिये चित्र। बहुत अभ्यास हो जानेसे पैरोंको अपने सिरपर रखकर इसे करना चाहिये।

(२०) त्रिकोणासन—पहिले पृथ्वीपर पैरोंमें २॥ या ३ फुटका अन्तर रखकर खड़े हो जाइये। अब दाहिने पैरको दाहिनी तरफ घुमाकर, चित्रके मुआफिक रखिये—बाँयेंको सीधा ही जमा रहने दीजिये। दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेको स्पर्श कीजिये—इस समय दाहिना पाँव झुक जावेगा किन्तु ध्यान रखिये कि बायाँ पैर भूमिसे जरा भी न उठने पावे। अब बायें हाथको सिरपरसे ले जाकर बल पूर्वक तान दीजिये। इस समय त्रिकोणके रूपमें शरीर हो जावे। बस यही बात ध्यानमें रखनेकी है। अब धीरे-धीरे सीधे खड़े हो जाइये और बादमें इसी आसनको दूसरी तरफ भी कीजिये। देखिये चित्र त्रिकोणासन।

इन आसनोंके अभ्याससे कन्धोंका दर्द, हाथोंका सुन्न पड़ना
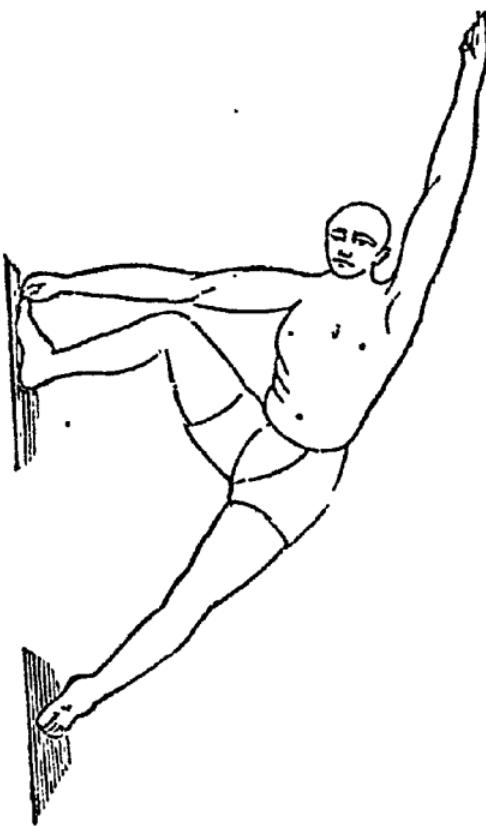
त्रिकोणासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १६२)

गरुड़ासन ।

उत्कटासन ।

हनुमानासन ।
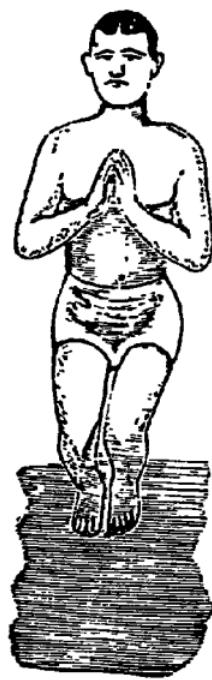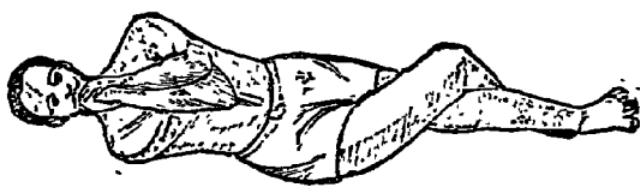
(देखिये—पृष्ठ संख्या १६२)

हाथोंका काँपना, हाथोंमें वात रोग होना, हाथोंकी कृशता आदि दोष हट जाते हैं। सन्ध्योपासनाके समय पौराणिक लोग जो आठ और २४ मुद्राएँ करते हैं, वे भी हाथके व्यायाम हैं। बशर्त्ते कि अच्छी तरह यत्न पूर्वक की जावें।

(२१) गरुड़ासन—बाएँ पैरके बल खड़े रहकर दाहिने पैरको आगेकी ओरसे लेकर बायें पैरमें लपेटकर खड़े हो जाइये। इसी प्रकार हाथोंको लपेटकर मुँहके सामने रखकर अचल खड़े रहिये। इस समय निर्वाण नाम्नी मुद्राके करनेसे हाथ अच्छी प्रकार लिपट जावेंगे। पौराणिक लोगोंकी संध्योपासनाके अन्तको यह आठवीं मुद्रा है। दोनों हाथोंकी अँगूलियोंको उल्टी करके कैंची फाँसकर हाथोंको सीधा कर देनेसे निर्वाण मुद्रा बन जाती है। देखो चित्र गरुड़ासन।

(२२) उत्कटासन—पहिले सीधे खड़े हो जाइये। अब पञ्जोंके बल खड़े रहिये और एड़ियोंको पृथ्वी पर न टेकते हुए घुटनोंको मोड़िये और नितम्ब तथा एड़ियोंके बीचमें जब एक फुटका अन्तर रह जावे तब स्थित हो जाइये। बादमें दोनों हाथ जोड़कर छातीके पास रखिये। देखिये, चित्र उत्कटासन।

(२३) हनुमानासन—दोनों पैरोंके बीचमें जितना हो सके उतना अन्तर रखकर दोनों घुटने इतने झुकाइये, कि पिछाड़ीका पैर जमीन पर न टिकने पावे। अब छातीको आगे की ओर निकालकर दोनों हाथ जोड़कर छातीके बीचमें रखिये। हनुमान नामक प्रसिद्ध देवके नामसे यह आसन प्रसिद्ध है।

पाठक हनुमानजीके आसनसे इस आसनका अनुमान लगा लें। देखिये चित्र "हनुमानासन"।

(२४) पादांगुष्ठासन—बायें पैरकी एड़ी अपने मूल-स्थानमें लगाकर पैरके पंजेके सहारे बैठ जाइये और दाहिने पैरको बायें पैरके घुटने पर रखकर बैठ जाइये। बादमें दोनों हाथोंको कटिपर रखकर जब तक हो सके बैठे रहिये। इस आसनके करनेमें पहिले पहिल बड़ी ही कठिनता होती है। बादमें अभ्यास हो जानेसे यह सरल हो जाता है। इसी तरह फिर दूसरे पैर पर यह आसन लगाना चाहिये। पादांगुष्ठासनका चित्र देखकर इसकी क्रिया आपके ध्यानमें अच्छी तरह आ जावेगी।

(२५) वृक्षासन—एक टाँगके बल होकर दूसरी टाँगके तलुएको, जिस टांगके बल पर खड़े हों, उसके उरु स्थानमें रखकर खड़ा रहना ही वृक्षासन कहलाता है। देखिये चित्र वृक्षासन। कुछ लोग नीचे सिर ऊपर टाँगें रखकर हाथोंके बल सिर रहनेको भी वृक्षासन कहते हैं।

पैरोंके इन आसनोंके करनेसे पैर सबल रहते हैं, हड़फूटन, तलुओंकी जलन, कम्प, घुटनोंका दर्द, अकड़जाना इत्यादि रोग दूर हट जाते हैं।

आसनोंको करते समय एक बात अत्यन्त आवश्यक है जिसे कदापि नहीं भूलना चाहिये।

"पीठको सदैव सम रेखामें रखना चाहिये।"

पाठक, शायद आश्चर्य करेंगे कि पीठसे और आसनोंसे

पादांगुष्ठासन ।
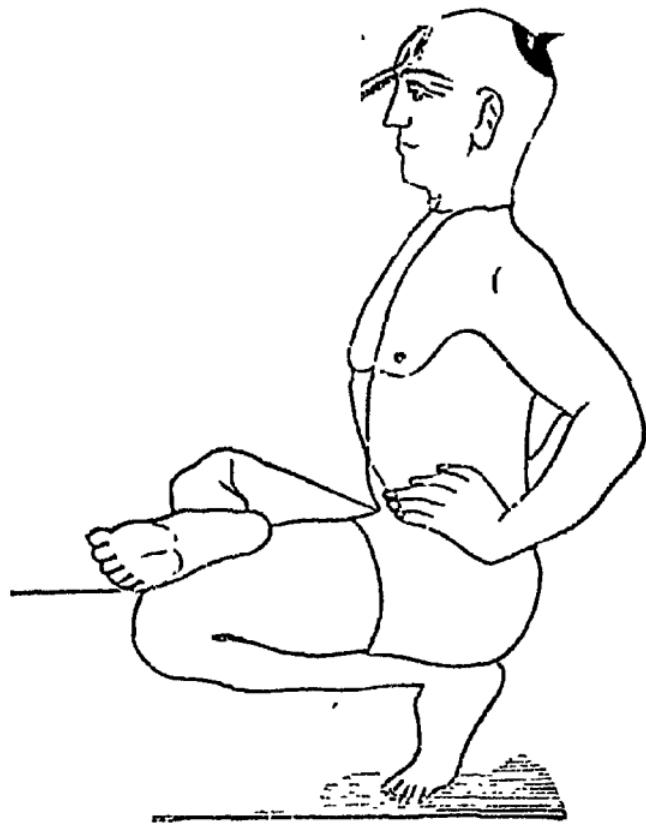
(देखिये—पृष्ठ संख्या १६४)

वृक्षासन ।

(देखिये—पृष्ठ संख्या १६४)

क्या सम्बन्ध है ? इस विषयमें हमें अधिक विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि यह इस पुस्तकके लिये विषयांतर होगा। इतना ही हम कह देना उचित समझते हैं कि पीठकी रीढ़ हड्डी "जीवनका मुख्य स्तंभ है"। योगके प्रत्येक अनुष्ठानका इस मणिस्तंभके साथ अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। इस रीढ़की हड्डीसे ही सब ज्ञान तन्तुओंका जाल शरीरमें फैला है। पीठमें टेढ़ापन रखनेवाले मनुष्यके ज्ञानतन्तु हड्डियोंके दबावके कारण क्षीण हो जाते हैं और विविध रोग होकर मनुष्य अल्पायु हो जाता है। योगाभ्यासके समय ही नहीं बल्कि मनुष्यको रात-दिन इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि उसकी पीठ उठते बैठते, चलते-फिरते, कभी भी न झुके, यह दीर्घायुका अत्यन्त गूढ़ मन्त्र है। जो लोग पीठ झुकाकर, गर्दन लटकाकर बैठते हैं, वे मानों रोगोंको निमन्त्रण देते हैं और मृत्युकी तरफ बढ़ते हैं। योगशास्त्रका नियम है, कि शरीर गला और सिर समसूत्रमें रखना चाहिये! इस सीधे रहनेका मतलब कमरकी हड्डीको सख्त धरके चलनेसे नहीं है; बल्कि सरलता पूर्वक सीधी रखनेका अभ्यास करना चाहिये। दीवारके सहारे खड़े रह-कर पीठको समरेखामें रखनेका तथा दो चार पुस्तकोंको मस्तक पर रखकर सिरको सीधा रखनेका अभ्यास कीजिये। ढीली चारपाईमें सोनेसे भी पृष्ठवंश टेढ़ा हो जाता है। अतएव सख्त शय्यापर ही सोना चाहिये।

कई लोगोंका ऐसा खयाल है, कि ये आसन केवल योगा-

भ्यासी मनुष्योंके ही करनेके हैं—ऐसा मानना भूल है। बहुतसे भोले भाइयोंका ऐसा अनुमान है, कि योगके अनुष्ठानसे मनुष्य ऐहिक व्यवहारके लिये निकम्मा बन जाता है। यह अनुमान लोगोंको नीचे गिरानेवाला है। वास्तवमें देखा जावे तो योगका अनुष्ठान न करनेसे ही आज मनुष्य जाति निकम्मी हो गई हैं। योगाभ्याससे मनुष्यकी प्रत्येक शक्ति विकसित होती है। जैसे पुष्पके खिल जानेसे शोभा बढ़ती है, उसी तरह योगसाधनके अनुष्ठानसे मनुष्यकी सब आन्तरिक और बाह्य शक्तियाँ प्रफुल्लित हो जाती हैं और मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है। शारीरिक, वैयक्तिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, कौटुम्बिक, गृह विषय, नागरिक, जातीय, प्रान्तीय, देशीय, राष्ट्रीय, तथा राष्ट्रांतरीय सब प्रकारके व्यवहार उत्तम रीतिसे चलानेके लिये जिस योग्यताकी आवश्यकता होती है, वह निस्सन्देह योगाभ्याससे प्राप्त होती है। परन्तु सर्वसाधारणमें योग विषयक इतनी संकुचित कल्पनाएँ हैं, जिनके कारण मनुष्य दिन प्रतिदिन गिर रहा हैं और इतना होने पर भी योग साधनसे डरता है। जिन्हें दीर्घायु प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन्हें योगाभ्यास आरम्भ कर देना चाहिये तथा अपने इष्ट मित्रोंमें भी योगसाधन करनेकी बुद्धि जागृत करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है।

हम अपने पिछले प्रकरणमें अनेक वायुओंका जिक्र कर आये हैं। अब यहां हमारा प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान वायुसे प्रयोजन नहीं है। हमारा इस प्रकरणमें इस विश्वमें बहनेवाले वायुसे ही सम्बन्ध है। प्राणियोंके लिये तीन खुराकें मुख्य हैं। हवा, पानी और अन्न। इन तीनों खुराकोंमें यदि कोई अत्यन्त आवश्यक और सबसे पहिली खुराक है तो "हवा है"। अन्नके बिना (बिना कुछ खाये) मनुष्य अधिकसे अधिक १०० दिन जीवित रह सकता है, जलके बिना भी ऋतुके अनुसार मनुष्य १५ या २० दिन तक प्राण धारण कर सकता है किन्तु बिना हवाके तो मनुष्यका ५ मिनटमें ही प्राणान्त हो जाता है। यह हवा जितनी आवश्यक है, उतनी ही वह अधिक है। हम हवाके समुद्रमें रहते हैं। जिस प्रकार मछली जलमें रहती है और बिना जलके कुछ मिनटोंमें ही मर जाती है, उसी तरह हम हवाके सागरमें रहते हैं—बिना हवाके हम भी इस लोकमें २।४ मिनिट ही हाथ पैर हिला सकते हैं। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि हवा हमारी पृथ्वीसे लगभग तीन या चार मील ही ऊँची है—आगे नहीं है। लोग अपनेको अन्नके कीड़े कहा करते हैं; किन्तु वास्तवमें

देखा जावे तो हम हवाके कीड़े हैं। हम हवाके सहारे ही अपना सब काम करते। एक मनुष्यके सिपुर्द हजारहा मन हवा है— यदि प्राणीके आसपासकी हवा किसी यन्त्र द्वारा एकदम हटाई जा सके तो वह प्राणी तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ेगा और फिर नहीं उठ सकेगा !! अब आप हवाके महात्मको अच्छी तरह समझ गये होंगे।

हवा इतनी बहुमूल्य है, कि उसकी कीमत तक भी कूतना असम्भव है। इतनी बहुमूल्य वस्तु उस परम पिता परमात्माने अपने पुत्रोंको मुफतमें विपुलतासे सब जगहोंमें प्रदान की है— ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ पर वह न मिलती हो। परन्तु खेद कि हम इस अमृतका उपयोग करना नहीं जानते। यद्यपि हवा, मुक्ति और सब जगह मिलने वाली चीज है तथापि इस आधु· निक सुधारने हवाको भी महँगी बना दिया। जहाँ और और वस्तुओंने दुगुनी तिगुनी कीमत तक प्राप्त कर ली, वहाँ हवाका मुक्त रहना असम्भव साही था !!! इस जमानेमें हवाके लिये घर छोड़कर सैकड़ों मील बोरिया बिस्तर बाँधकर जाना पडता है और वहाँ रहना पड़ता है। बम्बई वाले माथेरनमें जाकर, मालाबार हिलपर, रह कर ही, अच्छी हवा प्राप्त कर सकते हैं। इनवर वालोंको जब अच्छी हवाकी आवश्यकता पड़े तब बेरियाके लिये बोरिया बिस्तर बाँधने पड़ते हैं। बड़े बड़े नगरोंके ऊँचे बड़े मकानोंमें बिजलीके पङ्खे चलाकर हवा की जाती है! इस नवीन रोशनीने प्रकृतिके दिये मुक्त

पदार्थ वायुको भी कीमती बना दिया। तात्पर्य यह कि आज-कल यह कहना झूंठ है, कि हवा मुफ्त मिलती है। अस्तु।

मनुष्यको यदि हवा न मिले तो उसके शरीरके रक्तका चलना बन्द हो जावे। रक्त फेंफड़ोंमें हवाके द्वारा ही शुद्ध होता है और फिर सारे शरीरमें पहुँचता है। यह क्रिया रात-दिन सोते जागते होती रहती है—जब यह क्रिया बन्द हो जाती है, तभी मृत्यु हो जाती है। सारांश यह कि हवा ही जीवन है। यह हमारा शरीर राष्ट्र है। इसका सम्राट् आत्मा है—यह "इन्द्र" है। इसके नौकरोंका नाम "इन्द्रिय" है। इस राष्ट्रमें मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, उरू वैश्य है और पाँव शुद्र हैं। जब ये इन्द्र महाराज इस स्थूल शरीर पर राज्य करते हैं तब इनकी पदवी "राजा" होती है। जब सूक्ष्म शरीर पर आधिपत्य स्थापित करते हैं तब वे ही "महाराज" कहलाते हैं। जब कारण शरीर पर प्रभुत्वस्थापित कर लेते हैं, तब येही यही आत्माराम "सम्राट्" बन जाते हैं। जब महाकारण शरीरमें कार्य करनेमें यह आत्मा कृतकार्य होता है, तब इसीको "स्वराट् अथवा "विराट्" पद प्राप्त होता है। जीवात्माकी यही मुक्तावस्था है—इस समय यह स्वयम् प्रकाश बन जाता है। आँख, नाक, कान, आदि ज्ञानेन्द्रिय और हस्त पाद आदि कर्मेन्द्रिय इसके सेवक हैं, किन्तु ये वेतनिक सेवक हैं। जबतक इन्हें वेतन (अन्न जल आदि) मिलता रहेगा तभी तक ये कार्य करेंगे, जहाँ वेतन बन्द किया कि इन्होंने भी हड़ताल की। इन्हें कितना भी

वेतन महाराजा साहेब चुकाते रहें पर ये कभी तृप्त नहीं होते। जरा इनके विरुद्ध कोई कार्य हुआ कि इन्होंने हड़ताल आरम्भ की। मलमूत्र द्वारोंके रक्षक भी जरा सी बात पर रुष्ट होकर जब अपना काम छोड़ देते हैं तब, इन भङ्गियोंकी हड़तालसे सारे राष्ट्र पर बड़ी ही आपत्ति आ जाती है। यदि इन वैतनिक सेवकोंके भरोसे ही यह राष्ट्र होता तो इसका कुछ भी गौरव नहीं होता। ये वेतन लेकर भी आराम बहुत करते हैं। इस राष्ट्रमें दो स्वयम् सेवक हैं, जब वैतनिक सेवक पड़े हुए रहते हैं, तब भी ये स्वयम् सेवक अपनी सेवा करते रहते हैं। इनका नाम श्वास उच्छ्वास है। ये थकते नहीं, विश्राम नहीं लेते, और कभी अपना काम बन्द नहीं करते। जिस समय इनका कार्य बन्द होता है, उस समय यह सारा साम्राज्य टूट जाता है। इस आलङ्कारिक वर्णनका सारांश यह है कि "हवा ही इस जीवनके लिये, मुख्य, और अति आवश्यक वस्तु है।" क्योंकि विना हवाके श्वास और उच्छ्वास नहीं हो सकते।

श्वास अर्थात् शुद्ध वायुको खींचकर शरीरमें ले जाना और उच्छ्वास अर्थात् उस ग्रहणकी हुई हवाके दूषित हो जानेपर उसे निकाल देना। इसी श्वासोच्छ्वासकी क्रियासे रक्त शुद्ध होता है। जो साँस बाहर निकलता है, वह विषयुक्त होता है। बड़े बड़े मेलोंमें अक्सर बीमारी हो जाती हैं—इसका कारण यही होता है कि अधिक मनुष्योंके एकत्र हो जानेसे वायु मण्डल दूषित हो जाता है और कोई न कोई भयङ्कर

बीमारी फूट निकलती है। एक कमरेमें आवश्यकतासे अधिक आदमी रहकर कभी दीर्घायु नहीं पा सकते। किसी उत्सव विशेषमें स्त्रियाँ एकत्र होती हैं और एक छोटेसे बन्द तथा तङ्ग कमरेमें बैठकर गीत गाती हैं, वहाँ वे अपने बच्चोंको भी ले जाती हैं। इन कोमल बालकोंपर इस दूषित वायुका शीघ्र ही असर होता है जिससे वे फौरन ही बीमार हो जाते हैं—इसीको हमारी भोली देवियाँ "नजर लगना" कहती हैं। तात्पर्य्य यह कि मनुष्यको यदि दीर्घायुकी इच्छा हो तो खुली और शुद्ध हवामें रहनेका हमेशा ध्यान रखना चाहिये। आपने देखा होगा कि आदमी जब पानीमें डूब जाता है तो थोड़ी देरमें ही वह मर जाता है। इसका कारण यही है, कि वहाँ उसे उसके साँस लेनेके लिये वायु नहीं मिल सकती और जो वायु निकली उसके स्थानमें पानी घुस गया। अगर मनुष्यको पाँच सात मिनट हवा न मिले तो वह मर जाता है।

भारतवर्षके मकानोंकी रचना प्रायः ऐसी बेढंगी होती है कि उनके भीतर हवा, प्रकाश आदि घुस नहीं सकते। वास्तवमें मकान बनानेवालोंको वायु प्रकाश आदिके महत्वका पता ही नहीं है। घर क्या होता है, एक प्रकारसे तिजोरी होती है। चोरोंके भयसे अथवा अपनी स्त्रियोंको कोई दूसरा मनुष्य न देख ले, इस भयसे कहीं भी खिड़की, बारी, झरोखा, उजालदान, जङ्गला, गवाक्ष प्रभृति नहीं रखते। यदि किसी कारणसे कहीं खिड़की, उजालदान वगैरः रख भी दिया, तो उसे कपड़े वगैरः

से वन्द कर देते हैं। हमारे वहुतसे मूर्ख भाई हवाको अपना शत्रु समझते हैं। जरा सी ठण्डी हवा चलनेपर उन्हें सर्दी लग जानेका भय आ घेरता है। मूर्ख मा वाप अपने वच्चोंको जरा हवाके शीतल होते ही घरके वाहिर हवामें घूमनेसे रोकने लगते हैं। दो चार गर्म कपड़े उन्हें पहिना देते हैं तथा कानोंको रूमाल या गुलूवन्दसे वाँध देते हैं। यह वड़ी भारी गलती है। देखा गया है, कि मूर्ख मातापिता अपने सुकुमार छोटे वच्चोंको रजाईमें लपेट कर वड़े प्रेमसे अपने पास सुला लेते हैं—वहुधा इस प्रेमसे वच्चा मर जाता है। एक छोटेसे कमरेमें कई आदमी घुसकर सो जाते हैं और उसे चारों ओरसे वन्द कर लेते हैं। ऐसे मनुष्योंका मुख फीका और कान्तिहीन रहता है तथा क्षयकी वीमारी भी उन्हें हो जाती है। जिसे दीर्घायुकी इच्छा हो, उसे सदा खुली हवा आनेवाले स्थान, जैसे वरांडा, छत, चौक, आँगन, मैदान, खिड़की वाले मकानोंमें सोना चाहिये। सोते समय कपड़ेसे मुहँ और नाक नहीं ढाँकना चाहिये। कोई भी ऋतु हो खुली हवामें सोने तथा खुले मुहँ सोनेसे नहीं डरना चाहिये। आवश्यकतानुसार वस्त्र काममें लाना चाहिये।

हवा हमारी पहिली खुराक है—यह हमें सव जगह विना माँगे मुफ्त मिलती है। ईश्वरने इसे ऐसा वनाया है, कि अत्यन्तसे अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रसे भी यह आती जाती रहती है। जल और अन्नको तलाश करना पड़ता है, परन्तु हवाकी तो हमें

खोज करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। यह सुलभ और सब जगह मिलनेवाली वस्तु है। हवाके विषयमें हमारी अत्यन्त असावधानी है। हमें इसके शुद्ध-शुद्धकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। जल और अन्नकी शुद्धिका ध्यान हमें जितना होता है, उतना हवाका नहीं होता! जलको छानते हैं, अन्नको कचरा कूड़ा निकालकर साफ़ करते हैं, किन्तु हवाको साफ करनेका तथा शुद्ध वायुको ही ग्रहण करनेका ध्यान किसीको भी नहीं है। मतलब यह कि हवा आँखोंसे दिखाई नहीं देती, और अन्न-जल मूर्त्तिमान वस्तुएँ हैं। हमलोग दूसरेके जूठे अन्नजलको नहीं खाते-पीते किन्तु दूसरोंकी व्यय की हुई, हवाको हम बड़े ही आनन्दसे ग्रहण करते हैं। एक मनुष्य भोजन करनेके पश्चात् यदि अपने खाये हुएको वापस निकाल दे—कै कर दे तो, लोग उससे घृणा करेंगे। उस कैको देख नहीं सकेंगे—उसे खाना तो दूर रहा!! लेकिन दूसरोंकी कै की हुई, हवाको हम सब लोग बिना किसी घृणाके ग्रहण करते रहते हैं! आरोग्य शास्त्र ऐसी वायुको कै किये हुए अन्न जलके समान ही बताता है—यदि एक मनुष्यके मुखसे निकला हुआ सांस किसी तरकीबसे दूसरे मनुष्यके फेफड़ेमें प्रवेश कर दिया जावे तो दूसरे मनुष्यको तत्काल ही मृत्यु हो जावेगी। इतना हलाहल होते हुए भी लोग उच्छ्वासको बड़े ही निर्भय बनकर ग्रहण करते हैं। यही कारण हमारे अल्पायु होनेका है। जो लोग एक बन्द कोठरीमें या अपनी पत्नीके साथ एक रजाईमें घुसकर सोते हैं, उन्हें यह

बात जरा अधिक ध्यानसे पढ़नी चाहिये। वे मूर्ख मा-बाप ज़ो अपने पुत्रोंको उनकी स्त्रियोंके साथ एक बिछौनेमें सोनेके लिये विवश करते हैं, जरा इसको ध्यानसे दुबारा पढ़ें और सोचें कि, हम वास्तवमें इनके माता-पिता हैं, या अपने हाथों इन्हें जहर देकर मारनेवाले नृशंस कसाई हैं? धन्यवाद है, उस परम पिताको, जिसने हवामें ऐसे-ऐसे पदार्थ रखे हैं, जो उच्छ्वासके बाहर आते ही दूसरी हवा उसे कुछ थोड़ा बहुत शुद्ध कर देती है, नहीं तो ये हमारे मा-बाप तो अपनी अज्ञानता-से हमें कभीका मृत्युके मुखमें डाल देते !!

अब आप हमारी निर्बलता, अस्वस्थता और अल्पायुका कारण अच्छी प्रकार समझ चुके होंगे। फी सैकड़ा ९९ खराब हवा ही बीमारीका कारण होती है। बहुतेरे छूतके रोग, क्षय, बुखार, हैजा, प्लेग आदि खराब हवाके कारण ही होते हैं। चर्मरोग, फोड़े फुन्सी, दाद, खाज, कुष्ठ, पाँव आदि दूषित वायुके कारण ही होते हैं। रोगोंको हटानेका सबसे प्रथम सहज उपाय यही है, कि शुद्ध वायु प्राप्त करनेका निरन्तर ध्यान रखा जावे। यह उपाय हजार वैद्य डाक्टरोंका एक ही वैद्य डाक्टर है। सब जानते हैं, कि क्षय रोग फेफड़ा सड़नेसे ही होता है और फेफड़ा खराब हवासे सड़ जाता है। यदि एञ्जिनमें खराब कोयले भर दिये जावें, तो एञ्जिन खराब हो जाता है। वैसे ही यदि शरीरमें दूषित वायु भर दी जावे तो फेफड़े बिगड़ जाते हैं। यही कारण है, कि चिकित्सक क्षयके रोगीको हमेशा खुली और

शुद्ध वायुमें रखता है। पहला उपचार यही होता है, दूसरे उपचार बादमें किये जाते हैं।

नाकके द्वारा ही हवा शरीरमें जाती है। यही नहीं, बल्कि हमारे रोम कूपों द्वारा भी हवा हमारे शरीरमें जाती आती रहती है। त्वचामें जो असंख्य सूक्ष्म छिद्र हैं, ये सब हवा लेनेके लिये छिद्र हैं। इन्हें हमेशा साफ रखना चाहिये। क्योंकि यदि ये द्वार मैले हुए तो अत्यन्त शुद्ध हवा लेनेसे कुछ भी लाभ नहीं होगा—जब हवा मैले छिद्रों द्वारा शरीरमें प्रवेश करेगी तब वह फौरन मैली बन जावेगी। जिन्हें उत्तम स्वास्थ्यकी आव-श्यकता हो, उन्हें चाहिये कि रोमकूपोंको स्वच्छ रखें और खुले रहने दें। शरीरको चिपकनेवाले और मोटे, अधिक वस्त्र पहि-ननेवाले मनुष्योंके रोम छिद्रोंसे वायु नहीं प्रवेश करता। इस विषयपर हम "वस्त्र" प्रकरणमें अच्छी प्रकार खुलासा लिखेंगे।

हम लोग हवाको शुद्ध न करके उल्टा उसे दूषित करते रहते हैं। हमारे शरीरमें जाते समय वस्तु शुद्ध होती है, किन्तु जब वह निकलती है तब अपवित्र, गन्दी और दुर्गन्धयुक्त होती है। हमलोग, थूक, कफ, पसीना, उच्छ्वास, मलमूत्र आदि गन्दी वस्तु नित्य प्रति हमारे शरीरोंसे निकालकर वायुको दूषित करते रहते हैं। इन मलोंके त्यागनेका हमें कुछ भी ढंग नहीं आता! हम देखते हैं, कि वे कुत्ते बिल्ली ही हमसे अच्छे जो मलोत्सर्ग करनेके पूर्व उस जगहको पञ्जोंसे खोदकर उसमें पाखाना जाते हैं और फिर उसको धूलसे ढांक देते हैं। हमारे

घरोंके पाखानोंको जाकर देखिये तो सौभाग्यसे ही फ़ी सैकड़ा एक स्वच्छ और शुद्ध मिलेगा! हमारे बहुतेरे भाई अपने घरके गन्देसे गन्दे पाखानेको बड़ा ही शुद्ध और पवित्र समझा करते हैं; क्योंकि उनके सिरमें उस बदबूने स्थान बना लिया है। यदि शुद्ध वायुका रहनेवाला या जङ्गलमें पाखाने जानेवाला व्यक्ति उनके उस पाखानेमें जिसे वे शुद्ध समझे बैठे हैं; पाखानेके लिये जावे, तो वह निस्सन्देह घबरा उठेगा। मतलब यह कि हमारे पाखाने, हमारे बाड़े और हमारे पेशाब घर, हमेशा हवाको खराब करते रहते हैं। ऐसे बहुत ही कम मनुष्य होंगे, जिन्हें अपने घरमेंके पाखानोंकी गन्दगीसे अपनी भयङ्कर हानिका पता हो! आजकल सुधरे हुए ढंगके पानीके नलवाले पाखाने भी बन गये हैं, किन्तु बहुत ही कम—कलकत्ता बम्बई जैसे नगरोंमें ही जहाँपर ये नये ढंगके सुधरे हुए पाखाने हों, वहां तो जरूरत नहीं है लेकिन जहां ऐसे पाखाने न हों, वहां लोगोंको चाहिये कि अपने पाखानोंमें राख या सूखी मिट्टी रखा करें, जब मलोत्सर्ग कर चुकें तब उसपर राख या मिट्टी डालकर उसे ढांक दें। ऐसा करनेसे बदबू नहीं फैलेगी, हवा खराब न होगी। न ऐसे जानवर ही जैसे मक्खी, मच्छर आदि उस मैलेपर बैठकर हमें छू सकेंगे!

क्या आपने कभी इस विषय पर भी विचार किया है, कि बदबू क्या है? इसे हमारे शरीरमें कौन पहुँचाता है? हवा ही खुशबू और बदबूको यहांसे वहां और वहाँ से यहाँ ले जाने-

वाली है। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि दुर्गन्ध आ रही है तो आप समझ लीजिये कि किसी दुर्गन्धवाले पदार्थके छोटे छोटे परिमाणु हवामें उड़ रहे हैं। जो हमें दिखाई नहीं पड़ते। अब आप अपने नाकको कपड़ा लगाकर उसी हवाको ग्रहण कीजिये तो आप देखेंगे कि दुर्गन्ध कुछ कम हो गई है—क्योंकि दुर्गन्धके बड़े बड़े परिमाणु, कपड़ेके कारण, बाहिर ही रह गये हैं और जो अत्यन्त छोटे छोटे थे, वे ही कपड़ेमेंसे छनकर भीतर घुस सके हैं। अब आप अच्छी तरह समझ गये होंगे कि बदबू क्या है? आप अपनेको इससे भविष्यमें बचाते रहिये। पाखानेकी बदबू यदि आपके नाकमें या मुहँमें जाती है तो समझ लीजिये, कि हम अप्रत्यक्ष रूपसे पाखानेको ही खा रहे हैं। साँस हमेशा नाकसे ही लेनी चाहिये। मुँहसे साँस लेना अत्यन्त हो हानिप्रद है। जो लोग मुहंके रास्ते श्वासोछ्वासकी क्रिया करते हैं, वे कदापि बड़ी उम्र नहीं पा सकते। ईश्वरने साँस लेनेके लिये नाक ही बनाया है। इसमें उसने चलनी बनाई है जो हवाको छानकर शरीरमें जाने देती है। अतएव सदा नाकसे ही श्वासोछ्वासकी क्रिया करनी चाहिये। पेशाब करते समय और पाखाना जाते समय बोलना इसी लिये मना है कि कहीं मुखके द्वारा बदबूके परिमाणु शरीरमें न घुस जावें। थूकना भी इसीलिये होता है, कि जो परिमाणु मुखमें घुस गये हों, बाहिर निकल जावें। जो लोग पाखानेमें बैठकर बीड़ी हुक्का आदि पीते हैं, तम्बाकू, पान वगैरः खाते हैं, उन्हें

इस विषयपर विचार करना चाहिये। हम लोगोंके भोजनमें यदि कोई मैला मिलाकर रख दे, तो हमें देखते ही घृणा उत्पन्न होगी और उलटी हो जावेगी, किन्तु हम मैलेकी बदबूसे भरी हुई हवाको साँसके साथ खाते रहते हैं। हमें हमारे पाखानोंकी मोरियोंको खूब ही शुद्ध रखना चाहिये। दर असलमें बात तो यह है कि इन गन्दे स्थानोंकी शुद्धिका कार्य हमने दूसरे लोगों-पर ही छोड़ रखा है। इसलिये अच्छी सफाई नहीं होने पाती। अगर हम अपने हाथों ही अपने पाखानोंको झाड़ बुहारकर साफ रखा करें तो सब शिकायतें दूर हो सकती हैं। लेकिन हम ऐसा करते हुए शरमाते हैं—घृणा करते हैं। सफाई रखनेके लिये अर्थात् घृणा हटानेके लिये घृणा नहीं करनी चाहिये बल्कि गन्दगीसे घृणा करनी चाहिये। मलको जमीनमें गड्ढा खोदकर एक दो फुट गहरा गड़वा देना चाहिये। जो लोग जङ्गलमें पाखाना जानेके अभ्यासी हैं, उन्हें मकानोंसे बहुत दूर जाना चाहिये। गाँवसे निकलकर चार कदम आगे ही पाखाना फिरना बहुत ही बुरा है। रास्तोंके आस पास ही पाखानेके लिये बैठ जाना लोगोंकी तन्दुरुस्तीके लिये बहुत ही नुकसान करता है—असभ्यता भी है।

जंगलमें भी पाखाना जानेके पहिले एक गड्ढा खोदकर उसमें मल त्यागना चाहिये और बादमें उसपर मिट्टी डालकर ढँक देना चाहिये। इसके कई कारण हैं (१) वायु दूषित न होने पावेगी (२) गौ आदि पवित्र पशु जिनका हम दूध पीते हैं

नहीं खाने पावेंगे (३) उत्तम खाद, वैज्ञानिक लोग जिसे सुनहला खाद कहते हैं, तय्यार हो जावेगा (४) पानीमें बहकर नदी, पोखरों और तालावोंमें नहीं जावेगा इत्यादि। मैलेको अधिक गहरा भी नहीं गड़वाना चाहिये, क्योंकि पृथ्वीके भीतर वर्षाऋतुमें झरने बहते हैं। जहाँ जी चाहा वहीं पेशाब कर देना ठीक नहीं है। पेशाब घरोंमें ही पेशाब करना चाहिये, जहाँपर पेशाब घर न हों, वहाँ घरोंसे दूर सूखी जमीन पर पेशाब करना चाहिये और तुरन्त ही उसपर धूल डाल देनी चाहिये। एक जगह बारम्बार पेशाब नहीं करते रहना चाहिये। इन बातोंका ध्यान रखनेसे वायु शुद्ध रह सकता है।

विना सोचे विचारे हर कहीं थूक देना बहुत ही बुरा है। बहुतसे गन्दे आदमी अच्छेसे अच्छे पवित्र स्थानका ध्यान नहीं रखते और थूक देते हैं। कई लोगोंके आँगन, घरोंके कोने और दीवारें गन्दी होती हैं—वे वहाँ थूकते रहते हैं। किवाड़ोंके पीछे थूक देते हैं। ऐसे लोगोंके घर नरक और रोगोंका घर समझना चाहिये। ये आदतें बहुत ही हानिकारक हैं। इस प्रकार थूकनेकी स्वतन्त्रतासे हवा गन्दी होती है। थूकमें रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं। रोगीके थूकमें उस रोगके जन्तु अवश्य होते हैं। क्षय रोगवालेके थूकमें क्षयके कीटाणु होते हैं---मान लीजिये कि उसने दो चार जगह आम रास्तेमें थूक दिया। थोड़ी देर बाद वह सूर्य तापसे सूखकर धूलमें मिल

गया। वह धूल उड़कर किसीके साँसमें चली गयी—बस उसे अवश्य क्षय हो जावेगा। इसी प्रकार अन्य रोगियोंके थूकके विषयमें भी समझना चाहिये। थूकनेकी ही आदत हो तो पीक-दानी रखना चाहिये। जब आवश्यकता हो, उसमें थूक देना चाहिये और बादमें उस थूकको किसी गड्ढेमें गड़वा देना चाहिये। ताकि वह हवाको गन्दी न कर सके। सूखी हुई भूमि-पर जहाँ धूल हो, वहाँ पर थूकनेसे, उसके द्वारा इतनी हानि होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इसी प्रकार दूसरी सड़ी गली वस्तुएं, जैसे अन्न, फल, शाक भाजी, इत्यादि इधर उधर फेंककर हवाको गन्दी नहीं बनाना चाहिये। थोड़ा सा कष्ट तो होगा, लेकिन लाभ बहुत होगा। यदि इन्हें एक गड्ढा खोदकर उसमें गाड़ दिया जावे तो समय पाकर यही उत्तम बढ़िया खाद तय्यार हो जावेगा। थोड़ासा ध्यान रखनेसे ही हम हवाको शुद्ध रख सकते हैं। बड़े बड़े शहरोंमें पाखाना जानेकी तथा कूड़ा कर्कट जलानेकी चिमनियां होती हैं, ये भी हवाको गन्दी करनेवाली हैं। आजकल हिन्दुओंके मुर्दे जलानेका ढङ्ग इतना बिगड़ गया है कि कुछ कहा नहीं जा सकता! इस मुर्दे जलानेकी बिगड़ी हुई पद्धतिसे भी हवा बहुत गन्दी होती है। मुर्दा जलानेमें विपुल घृत और सुगन्धित पदार्थोंको भी प्रेतके साथ ही अग्निमें जलाना चाहिये। प्राचीन समयमें ऐसा ही किया जाता था। यदि वर्त्तमान निर्धनताका बहाना किया जावे तो वह

झूंठा है। जब कि हम देखते हैं, कि उसी मृतकके नामपर सैकड़ों और हजारों रुपये नुकते करनेमें और गया श्राद्ध करनेमें खर्च किये जाते हैं तो उसकी मिट्टीके साथ २० या २५ रुपयेके सुगन्धित पदार्थ लानेके लिये निर्धनताका बहाना करना बड़ा भारी पाप है। जहाँ विवाह शादियोंमें कर्जा देनेके लिये जातीय तथा पञ्चायती फंड खुले हुए हैं, वहाँ ऐसे कार्यों के लिये कर्जा देनेके फण्डोंकी स्थापना पहिले होनी चाहिये। अन्त्येष्टि संस्कारमें सुगन्धित पदार्थ न जलानेवाले तथा एकसेर तीनपाव घी ले जानेवालेको पञ्चायत द्वारा कुछ दण्ड विधान होना चाहिये। कितने खेद और दुःखकी बात है, कि मृत पुरुषके नाम पर नुकतेमें एक एक मनुष्य पकान्न मिठाई आदिमें जितना घृत खा जाता है, उतना घृत उसके अन्त्येष्टीमें नहीं लगाया जाता !! कितनी लज्जा की बात है।

तेल घास लेट (Kerosene oil) मिट्टीके तेलका प्रयोग खूब ही बढ़ गया है। आजसे दस पाँच वर्ष पूर्व लोग इससे बचते थे; किन्तु आज उन्हीं घरोंमें इसका साम्राज्य है। सम्राट्के गगनचुम्बी ऊँचे ऊँचे प्रासादोंसे लगाकर निर्जन वनमें एक गरीब आदमीकी झोंपड़ी तकमें भी यह तेल आज जलता हुआ दिखाई पड़ता है। अधिकांश लोग इसे २। ४ पैसेकी चिमनियोंमें जलाते हैं, जिनका धुआँ हवाको दूषित करता है। जहाँ तक हो इस तेलसे बचना चाहिये और यदि आप इसके आदी ही बन गये हैं तो ऐसे लेम्पोंमें इस तेलको

जलाइये, जिनसे कि धुआँ नहीं निकले। रातको धुआँ निकलने-वाली चिमनियोंको जलाकर, बन्द कमरेमें सोना अत्यन्त हानि कर है। घासलेटका धुआँ नाकमें और आँखोंमें न घुसने पावे। इस बातका ध्यान हमेशा रखना चाहिये। यह बड़ा ही जहरीला धुआँ होता है।

पत्थरका कोयला भी बड़ा ही बुरा पदार्थ है। जो लोग इसे जलानेके काममें लाते हैं, वे मानों अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारते हैं। कभी कभी देखा गया है, कि ठण्डके मौसिममें लोग पत्थरके कोयलेको गर्मीके लिये अपने कमरेमें जलाकर और कमरोंको बन्द करके सो गये—सुबह उसमें सोनेवाले लोग सभी मरे हुए पाये गये! पत्थरके कोयलेका धुआँ हवाको खराब करता है। यह कोयला रेलके एञ्जिनों तथा मिलों आदि कल कारखानोंके चलानेमें प्रयोग किया जाता है। बड़े बड़े नगरोंमें जहाँ कल कारखाने बहुत हैं, वहाँ सुबहके वक्त इस कोयलेके धुएँके बादल दूर दूर तक फैले हुए दिखाई देते हैं और काले काले धूम्रकण उस नगरपर बरसा करते हैं। यह वायुको दूषित करनेवाले हैं। यही कारण है कि नगरोंके रहने-वालोंका स्वास्थ्य हमेशा खराब रहता है। आजकल हलवाई लोग मिठाइयाँ बनानेमें और बहुतसे गृहस्थ रोटियाँ पकानेमें इस प्रयोग करके स्वास्थ्यको बर्बाद कर रहे हैं। दीर्घायु चाहने वालोंको इसकी हवासे बचना चाहिये।

हमारे देशमें तम्बाकूने भी अत्यन्त प्रचार पाया है। लाखों-

मन हर महीने खप जाती है। इसका धुआँ भी बड़ा ही जहरीला होता है। नहीं पीनेवाले आदमीको इसकी दुर्गन्धसे ही के हो जाती है—जी मचलाने लगता है। इसमें "नीकोटिन" नामक विष है। तमाखूके पानीकी ८।१० बूंद एक विषधर सर्पके मुखमें डाल देनेसे वह भी मर जाता है। चुरट, बीड़ी, सिगरेट, चिलम, हुक्का आदि हवाको गन्दी करते रहते हैं। सुल्फा गाँजा, चरस, चण्डू, मदिरा, आदि पदार्थ हमेशा हवाको दूषित कर देते हैं। दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तियोंको इन बुरे पदार्थोंके धुएँसे बचना चाहिये। स्वयम् तमाखू आदि नहीं पीना चाहिये, न ऐसे पदार्थोंके सेवन करने वालोंकी सङ्गतिमें बैठना चाहिये और न लोगोंको अपने घरमें दूसरोंको तमाखू पीकर हवा बिगाड़ने देना चाहिये। इस विषयमें लोगोंकी नाराजीका भय कदापि नहीं करना चाहिये। जरासे भयसे स्वास्थ्यको बड़ा भारी धक्का लगता है।

हवाको शुद्ध रखनेके लिये बहुतसी बातोंको आपही कर सकते हैं और बहुत सी बातोंमें सरकारी सहायताकी जरूरत पड़ेगी। उसके लिये हमें टाउनकमेटी (Town committee) और म्यूनीसिपेल्टी (Municipality) से सहायता लेनी चाहिये।

उसमें हमें ऐसे मेम्बर भेजने चाहिये जो झाड़ू लगवाने और रोशनी करानेके अलावा वायु-शुद्धिका ध्यान भी रखते हों। मोटी तोंदवालोंको, पैसेवालोंको, और खुशामदियोंको मेम्बर

चुननेसे वायु शुद्धिका कार्य कदापि पूर्ण नहीं होगा। वायुको शुद्ध रखनेका कार्य राजाका भी है। इस विषयमें वेदका यह मन्त्र विचारने योग्य है।

"वात अवातु भेषज ँ शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रन आयू ँ षि तारिषत्। (सामवेद)
छन्द० द्वितीय अध्याय, सप्तम दशति मन्त्र १०

अर्थ हे राजन्! हमारे हृदयके लिये रोगनाशक, सुखदायक ओषधिको वायु बहावे और हमारी (आयूंषी) आयुको बढ़ावे।

मनुष्योंको चाहिये कि अपने स्वास्थ्यको उत्तम रखनेके लिये और आयुष्यको बढ़ानेके लिये नित्य वायु सेवनार्थ जङ्गलों, पर्वतों और बागीचोंमें अवश्य जाया करें। सूर्योदयके पूर्व ही वायुसेवनार्थ जाना बड़ा ही लाभप्रद है। रात्रिके समय वृक्ष आक्सीजन गेस—प्राणवायु त्यागते हैं जो मनुष्यके लिये अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। सायंकालको लोग अधिकांश वायु सेवनार्थ जाते हैं और गांवके आस पास ही कचरे कूड़ेकी बदबूको सूँघकर लौट आते हैं—इसका नाम वायु-सेवन नहीं है। गाँवसे एक दो मील जङ्गलमें जहाँ स्वच्छ वायु मिल सके, जाना चाहिये। दीर्घायु चाहने वालेको नित्य नियमसे पाँच मील वायुसेवनार्थ गाँवसे बाहिर अवश्य जाना चाहिये। सूर्योदयके दो घण्टे पूर्व उठकर जङ्गलमें चले जाना चाहिये। देखिये, इस विषयमें वेदका यह मन्त्र विचार करने योग्य है।

"यदद्य सूर उदिते नागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ।" साम०

अर्थात्—सूर्यके उदय होने तकही, मित्र, अर्यमा, सविता, भग नामक आकाशस्थ वायु भेद निर्दोष रहते हैं। और देखिये—

"सुप्रावीरस्तु सक्षयः प्रनुयामन्त्सुदानवः ।
येनो अ ँ होति पि प्रति ।" (सामवेद)

अर्थात्—उपरोक्त वायुभेद हमारा आलस्य आदि पाप दूर करते हैं। ऋग्वेदका वायु सूक्त देखिये—

"वात आवातु भेषजं शंभुमयो भुवो हृदे ।
प्रण आयूंषि तारिषत् ॥"
"उत वात पिताऽसि न उत भ्रातोत नःसखा ।
सनो जीवातवे कृधि ॥"
"यददोवात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततोनो देहिजीवसे ॥" (ऋ० १०।१८६।१,२,३)

इन मन्त्रोंमें निम्न वाक्य विचारने योग्य हैं।

(१) "वातः भेषजं आवातु ।" (May vata breathe his healing balm on us) वायु अपने रोग नाशक गुणोंको हमें प्रदान करे।

(२) "हृदेमयो भुवः ।" (Filling our hearts with health and joy) वायु हमारे हृदयोंको प्रसन्नता और आरोग्यसे परिपूर्ण करे।

(३) "नः आयूंषि प्रतारिषत् ।" (May he prolong our days of life) वायु हम सबकी आयु दीर्घ बनावे ।

(४) हे "वात ! न : उत पिताऽसि ।" (O vata ! thou art our protector) हे वायु ! तू हमारा रक्षक है ।

(५) "उतभ्राता उत नः सखा ।" (Indeed thou art a brother and a friend) वास्तवमें तू हमारा भाई और मित्र है ।

(६) "सः नः जीवातवे कृधि (So give us strength that we may live long) वह वायु हमें ऐसी शक्ति प्रदान करे कि जिससे हम दीर्घायु प्राप्त कर सकें ।

(७) "यत् अदः ते गृहे अमृतस्य निधिः हितः । ततः नः जीवसे देहि ।" (O vata ! the store of immortality is there in thy home, give us there-of that we may live long) हे वायो ! तेरे घरमें ही अमरत्वका कोष है । उसमेंसे थोड़ा हमको प्रदान करो, जिससे हम दीर्घायु प्राप्त कर सकें ।

वायुका महत्त्व वेदने किस उत्तम रीतिसे वर्णन किया है । इन मन्त्रोंकी भाषा भी अत्यन्त स्पष्ट है—किसी प्रकारका सन्देह ही नहीं । अमृतका समुद्र हमें हमारे पास ही उस परमात्माने प्रदान किया है । किन्तु खेद कि हमलोग अपना आयुष्य न बढ़ाकर दिन प्रति दिन उसे क्षीण कर रहे हैं । परम पिताके दिये अमृतोंको हमने विष बना डाला है। विष तुल्य औषधियोंपर

आपका जितना विश्वास है, उसका दशमांस भी यदि आप इस अमृतके समुद्रपर विश्वास रखें, तो आपको औषधियां तलाश करनेकी जरूरत न पड़ा करे! स्मरण रखिये, शुद्ध वायु ही "अमृत है" इसके उचित सेवनसे हमें दीर्घ आयु और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। अतएव, वायु सेवन द्वारा मनुष्यको अपना आयुष्य बढ़ाना चाहिये।

हम पीछे कह आये हैं, कि पर्वतोंपर वायु सेवन करनेसे भी आयुष्य वृद्धि होती है। इस विषयमें अथर्व वेदका निम्न मन्त्र ध्यानसे देखने योग्य है—

"अग्निर्मा गोप्ता, परिपातु विश्वतः उद्यन्त्सूर्यौनुदतां मृत्यु-पाशान्। व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवा सहस्त्रं प्राणा मय्या यतंताम्।" १७।१।३०

अर्थ—अग्नि सब प्रकारसे मेरी रक्षा करे, उदय होनेवाला सूर्य मृत्युके पाशोंको दूर करे, उषःकाल और स्थिर पर्वत सहस्त्रों प्रकारसे मेरे अन्दर प्राणोंकी वृद्धि करे। पहाड़ोंके शुद्ध वायुसे दीर्घायु होता है। यह ध्वनि इस मन्त्रसे निकल रही है। यह बात अनुभवसे भी सिद्ध है, कि पहाड़ोंपर घूमने फिरनेवाले दीर्घ जीवी होते हैं। जिनको दीर्घायु चाहिये, उन्हें पहाड़ और पहाड़ियोंपर वायु सेवनके लिये नित्य प्रति जाना चाहिये।

अब यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है कि जिन स्थानोंकी दशा गन्दी हो, वहाँकी हवा किस प्रकार शुद्ध रखी जा सकती है? ऐसे नगर जहाँके गटर, पाखाने, पेशाबघर, गलियाँ आदि

दुर्गन्धि युक्त हैं, वहाँके रहनेवालोंको किस प्रकार हवा शुद्ध रखनी चाहिये? सबसे पहला उपाय तो यह है, कि प्रयत्न करके उस गन्देपनको दूर करना चाहिये, बादमें सुगन्धित पदार्थ जलाकर हवाको शुद्ध करना चाहिये। वर्त्तमान समयमें गन्धक आदि पदार्थ जलाकर लोगोंने वायुको शुद्ध करना सीख लिया है। फिनायल डालकर पाखानों, मोरियों आदि गन्दे स्थानोंको पवित्र करना सीख गये हैं। किन्तु वास्तवमें यह कृत्रिम शुद्धि है। आजकलकी तरह जिस समय हवा गन्दी नहीं की जाती थी, उस प्राचीनकालमें हमारे पूर्वज नित्य सायं प्रातः अग्नि होत्र द्वारा अपने अपने स्थानोंको शुद्ध रखा करते थे। यह इसीका फल था कि—

> "प्रहृष्टो मुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
> निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभय वर्जितः॥
> न चापि क्षुद्भयंतत्र न तस्कर भयं तथा।
> नगराणिच राष्ट्राणि धनधान्ययुतानिच॥"

(वाल्मीकि रामायण)

कहींपर भी रोग, शोक, भय, दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, हैजा, प्लेग, इन्फ्ल्युएंजा, आदि रोग नहीं होता था और न कोई अकाल मृत्यु—अल्पायुमें मृत्यु ही पाता था। हवनकी प्रशंसा करना, सूर्यको दीपक दिखाना है। न यह हमारा विषय ही है कि हम उसको करनेकी विधिको यहाँ लिख दें। हाँ, हम इतना कहनेके ही अधिकारी है, कि हवनसे वायु शुद्ध होता है; रोग नहीं होते;

दीर्घायु होती है, बुद्धि बढ़ती है, बल बढ़ता है, धनैश्वर्योंकी वृद्धि होती है। कहाँतक गिनावें हवनमें असंख्य गुण हैं। हमारे सैकड़ों वेदमन्त्र इस कर्मकी प्रशंसा और गुणोंका वर्णन कर रहे हैं। हम दीर्घायुकी इच्छा रखनेवालोंसे, दिनमें दो बार नहीं तो एक बार अवश्य ही हवन करनेका अनुरोध करते हैं। कुछ दिनोंमें आपको स्वयम् इस कार्यके चमत्कारोंसे चकित होना पड़ेगा। जिस घरमें नित्य अग्निहोत्र होता है वहाँ, साँप, बिच्छू आदि विषधर जन्तु, नहीं आने पाते। लोग जिन्हें भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, चुड़ैल, चौकी, ब्रह्मराक्षस, राक्षस, पितर देवता आदि नामोंसे पुकारते हैं, उनकी बाधा नहीं होने पाती। जहाँ आप इन उक्त भूत प्रेतोंका उपद्रव देखें, वहाँ सबसे पहिले शुद्ध वायु और शुद्ध प्रकाश आनेका प्रबन्ध कर देना चाहिये। यह भूत बाधा छू हो जायेगी। लोग अक्सर कहा करते हैं, कि अमुक घरमें भूत प्रेत रहते हैं और जो कोई उसमें आकर रहता है, उसे वह बाधा हो जाती है। यह विष युक्त वायुका ही खेल है—आप जरा बारीक नजरसे देखेंगे तो यह रहस्य आपकी समझमें आ जायेगा। इस पुस्तकके लेखक-का स्वयम् अनुभव है, कि ऐसे ऐसे घरोंमें जहाँ रहनेवालेको भूतोंने सताया है, वह रहा है और यज्ञादि क्रिया द्वारा उस घरके दूषित वायुको शुद्ध कर आनन्द पूर्वक उस घरमें वर्षों निवास किया है।

हवाका और सूर्य प्रकाशका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है,

क्योंकि सूर्यका प्रकाश दुर्गन्धको भगानेवाला है। सूर्यके प्रकाशसे हवा शुद्ध रहती है।

"प्राणोवैवातः"

यह बात ठीक है। किन्तु सूर्य किरणें भी हवासे कुछ कम महत्त्व नहीं रखती हैं। देखिये—

"एेते वा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः।"

"They the rays of sun are certainly purifying" सूर्यकी किरणें निस्सन्देह शुद्धि करनेवाली होती हैं। और देखिये।

"सूर्योहि नाष्ट्राणां रक्षसामप हन्ता।"

(For the sun is the repeller of the evil spirits the rakshasas) सूर्य ही विनाशक राक्षसोंका नाश करनेवाला है। यहाँ राक्षसोंका मतलब हमारे पुराण वर्णित राक्षसोंसे नहीं है—लम्बे चौड़े दीर्घकाय डरावनी सूरत; भयावनी मूरत सींग पूँछवाले नहीं। यहाँपर विनाशक राक्षसोंसे रोग समूहोंसे मतलब है। सूर्य प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं। देखिये सामवेदमें भी लिखा हुआ है कि—

"वेत्थाहि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिव्रजम्।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव!

हे सूर्य! तू प्रति दिन राक्षसोंके वर्जनको अवश्य जानता है। अर्थात् सूर्य राक्षसोंका विनाशक है। सूर्य दीर्घायु दाता है—यह मन्त्र देखिये—

"तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन।" (सामवेद)

अर्थ—परमात्मन्! सूर्य हमारे पुत्र और पौत्रके लिये जीवनार्थ दीर्घायु करें। यह मन्त्र स्पष्ट बता रहा है, कि सूर्य प्रकाश दीर्घ जीवनका दाता है। बिना सूर्य-प्रकाशके मनुष्य दीर्घजीवी नहीं हो सकता। अन्धकार ही नरक है—नरकमें उजेला नहीं है, ऐसा आपने पुराणोंमें पढ़ा या सुना अवश्य होगा। आप किसी अन्धकारयुक्त स्थानमें घुस कर देख लीजिये। आपको वहाँ दुर्गन्ध आवेगी। अँधेरेमें हमें कुछ भी नहीं सूझता, इससे सिद्ध होता है, कि हम अँधेरेमें रहनेके लिये पैदा नहीं हुए हैं। हमें जितने अँधेरेकी आवश्यकता है, उतने ही अँधेरेवाली रात्रि उस परम पिताने आकाशमें तारे चाँद आदि प्रकाश युक्त पदार्थ स्थापितकर हमें प्रदान की हैं। जो मनुष्य अँधेरेमें अधिकांश रहते हैं, वे तेजोहीन और निर्बल होते हैं। देखिये सूर्य प्रकाश द्वारा कीटाणु मर जाते हैं। इस विषयमें वेदका प्रमाण है—

"उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तुरश्मिभिः।
ये अन्तः क्रिमयो गवि।" (अथर्व २।३२।१)

अर्थात्—सूर्य किरणोंसे छुपे हुए रोग जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं। अथर्व वेद द्वितीय काण्ड सूक्त बत्तीसवेंके सभी मन्त्र रोग जन्तुओंको नष्ट करनेका उपदेश कर रहे हैं। बहुतसे लोग यहाँ यह पूछेंगे कि क्या वेदमें जीवहिंसा करनेका उपदेश है। इसका उत्तर यही है कि वैदिक अहिंसाधर्म अपना दूसरा ही

रूप रखता है। जैनधर्मकी भाँति श्वासोच्छ्‌वासे, मलमूत्रके त्यागनेसे, खाने पीनेसे, बात बातमें जीवहिंसाकी हिंसा वेदमें नहीं है। क्योंकि वेदमें जड़वाद है ही नहीं। हानिकारक पदार्थोंको नष्ट करनेमें वैदिक धर्म हिंसा नहीं मानता। शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये कोई भी धर्म नहीं रोकता। जैनधर्म जो जीव हिंसाका विरोधी है, उसके मन्त्रका प्रथम वाक्य "णमो अरि हन्ताणं" है, जिसका अर्थ ही यह है कि "शत्रुके मारनेवालेको नमन।" तात्पर्य्य यह कि रोगोत्पादक जन्तुओंके संहार करनेमें हिंसाका विचार नहीं करना चाहिये। देखिये, यह अथर्व वेदका मन्त्र यहाँ विचार करने योग्य है।

"ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वंतद्धन्मि
जनिम क्रिमीणाम्॥" अथर्व २. ३१, ५

(ये) जो (क्रिमयः) कीड़े (पर्वतेषु) पहाड़ोंमें (वनेषु) वनोंमें (ओषधीषु) औषधियोंमें (पशुषु) पशुओंमें (अप्सु) जलमें (अन्तः) भीतर हैं। (ये) जो (अस्माकम्) हमारे (तन्वम्) शरीरमें (अविविशुः) प्रविष्ट हो गये हैं (क्रिमीणाम्) कीड़ोंको (तद्) उस (सर्वम्) सब (जनिम) जन्मको (हन्मि) मैं नाश करूं। तात्पर्य यह है, कि मनुष्योंको हानिकारक कृमिकीड़ोंको जहाँ हो वहाँ नष्ट कर देना चाहिये। इसमें कोई पाप नहीं है। यदि हमारे इतने कथनपर भी आपके मनमें कोई शङ्का हो तो गीताका स्वाध्याय करनेसे हिंसाका सच्चा रूप, आप

प्रयत्न करेंगे, तो समझ सकेंगे। कीड़े दो प्रकारके होते हैं एक दृश्य, दूसरे अदृश्य। देखिये वेद दोनों प्रकारके रोग जन्तुओंको मारनेकी आज्ञा देता है।

"दृष्टमदृष्टमतृहम्।"

कीड़े कई प्रकारके होते हैं, इसका वर्णन भी वेदमें विस्तार पूर्वक है, हम भी यहाँ नमूनेके रूपमें कुछ मन्त्र लिखते हैं—

"अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षं भवाअधि॥
नीलग्रीवाः शितिकंठाः शर्वाअधः क्षमाचराः॥३॥
नीलग्रीवा शितिकण्ठाः दिवंरुद्रा उपश्रिताः॥४॥
ये वृक्षेषु सस्पिंजरा, नीलग्रीवा विलोहिताः॥५॥
ये अन्तेषु विवध्यन्ति पात्रेषु पिबतोजनान्॥ ६॥

यजुर्वेद

इन मन्त्रोंकी विस्तृत व्याख्या करनेसे पुस्तकके आकार वृद्धिका भय है। हमने केवल पाठकोंको यहाँ दिग्दर्शनमात्र कराया है। इन सब तरहके कीड़ोंको सूर्यकी किरणें नष्ट कर डालती हैं अतएव प्रकाशका निरन्तर ध्यान करना चाहिये। इधरसे उधर हवा आज़ादीके साथ आ जा सके। ऐसे मकान बनवानेका ध्यान रखते समय इस बातका ध्यान भी जरूर रखना चाहिये, कि सूर्य किरणें भी अच्छी तरह घरमें घुस सकें। बहुतसे सूर्य किरणोंसे डरते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। सूर्य किरणें आरोग्यता, दीर्घायु और पुष्टिकी देनेवाली हैं। अपने शरीरको सूर्य प्रकाशमें नित्य कुछ समय अवश्य रखना

चाहिये। ओढ़ने बिछानेके वस्त्रोंको धूपमें डालकर उनके अदृश्य रोग जन्तुओंको नष्ट करते रहना चाहिये। आजकल सूर्य रश्मियों द्वारा विविध रोगोंका इलाज भी किया जाता है। मनुष्यके सारे शरीरपर प्रकाश पहुँचाते हैं और सैकड़ों रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं। बहुतसे लोग यहाँ यह कहेंगे कि हवा और प्रकाश रहित स्थानोंमें रहनेवाले मनुष्य भी हट्टे कट्टे रहते हैं। यह संभव है किन्तु यदि वे लोग प्रकाश और वायु युक्त स्थानोंमें रहने लग जावें तो और भी तन्दुरुस्त रह सकते हैं। सारांश यह कि शुद्धवायु और शुद्ध प्रकाश ही दीर्घायुका देनेवाले हैं। बिना इनके इस विश्वका एक भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। जिस दिन ये न होंगे—वह प्रलयकाल होगा। प्रलयके समयमें प्रकाशका और वायुका अभाव हो जाता है। पाठकोंको इस प्रकरणपर बहुत ध्यानसे विचारना चाहिये और "पञ्चामृत" का पानकर अपनेको अमर बनाना चाहिये।

"शुद्धवायु" और "शुद्ध प्रकाश" इन दो अमृतोंका तो हम यहाँ वर्णन कर चुके हैं अब शेष तीन अमृतोंका वर्णन आगे चलकर करेंगे। आशा है हमारे पाठक नित्य, सर्वदा, इन पञ्चामृतोंका विधिपूर्वक पान करके अवश्य दीर्घ जीवन प्राप्त करेंगे। अब हम हमारी दूसरे नम्बरकी खुराक—तृतीय अमृत, "जल" पर विचार करेंगे।
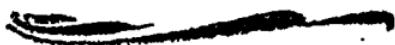
जल और वायुका जोड़ा है। क्योंकि स्वास्थ्यरक्षाका अधिक भार इन्हींके ऊपर अवलम्बित है। इसी कारण सबसे पहिले लोग जलवायु अनुकूल है या नहीं, यह देखते हैं। जिस जगहका जलवायु दूषित है, वहाँ विविध पौष्टिक पदार्थोंको खा कर भी मनुष्य स्वस्थ्य नहीं रह सकता। जिस तरह वायुका ध्यान रखा जाना जरूरी है, उसी तरह जलकी शुद्धिका ध्यान रखना भी लाज़िमी है। "आबोहवा" की पवित्रताका ध्यान मानव-जाति ही क्या प्राणी मात्रके लिये होना चाहिये। हवाके बाद अगर कोई खुराक है तो वह जल है। जिस प्रकार बिना हवाके मनुष्य कुछ मिनिटोंतक ही प्राण धारण कर सकता है, उसी प्रकार बिना पानीके कुछ दिनों ही देश और कालके अनुसार जीवित रह सकता है। हवाके अशुद्ध होनेसे अनेक बीमारियां हो जाती हैं। अगर पानी अशुद्ध प्रयोग किया तो भी बीमारियाँ हो जाती हैं। हवा तो आप शुद्ध लेते रहें परन्तु पानी गन्दा ही पीते रहें तो आप कदापि आरोग्य नहीं रह सकते, दीर्घायुषी नहीं हो सकते। हमारे देखनेमें आता है, कि लोग जिस तरह हवाकी तरफसे बेपरवाह हैं, उसी तरह जलकी तरफसे भी बेपरवाह बने हुए हैं। जिस तरह हवा सब

स्थानोंमें मिल सकती है, उसी प्रकार पानी भी सब जगह मिल जाता है; अन्तर है तो केवल इतना ही कि पानीके लिये कुछ प्रयत्न करना पड़ता है—हवाके लिये नहीं। पहाड़ी स्थानोंमें, रेतीले मैदानोंमें पानी ज़रा कठिनतासे प्राप्त होता है। मारवाड़ और अरबके सहारा प्रभृति रेतीले मैदानोंमें पानीका कोसों पता नहीं चलता।

नद नदी, नाले, झरने, पोखर, तालाब, कुए, बावली आदिसे हम लोग पानी प्राप्त करते हैं। जितने भी गीले पदार्थ हैं, उन सबमें थोड़ा बहुत पानीका अंश अवश्य रहता है। जिन स्थानोंमें पानी नहीं होता, वहाँके चूहे आदि क्षुद्र प्राणी वृक्ष शाखाओंका रस चूसकर पानीकी आवश्यकता पूर्ण करते हैं। फलोंमें जलका अंश अधिक होता है। यही कारण है, कि फलाहारी मनुष्यको तृषा बहुत कम लगती है। मनुष्यका शरीर यदि वजनदार है, तो केवल जलके ही कारण। हमारे शरीरमें प्रतिशत ७० भाग जल है। यदि हमारे शरीरका सारा जल निकाल लिया जावे तो कुल ७। ८ सेर वजन ही रह जावेगा। हमारी खुराकमें भी अन्नसे अधिक भाग जलका होता है। तात्पर्य यह कि जल जीवन दाता है—इसके सदुपयोगसे दीर्घायु और दुरुपयोगसे अल्पायु होता है। वेदका यह मन्त्र देखिये—

"इम मग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन्।
मातेवास्मा अदितेशर्मयच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत्॥

अथर्व २। २८। ५

उत्तम जलके सेवनसे वीर्य बढ़ता है, और दीर्घायुष्य होता है। जलके द्वारा रोग समूह नष्ट होते हैं। यह परमौषधि है। देखिये—

"आप इद्व वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपोविश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।"
अथर्व ६। ६१। ३

"जल औषधि हैं, जल पीड़ा नाशक है, जल भय निवारक है।" और देखिये—

"शंनो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयो रभिस्रवन्तुनः।" ऋ० १०। ६। ४

"दिव्य जल हमें शान्ति, सहायता, देनेवाला और हमारी रक्षा करने वाला होवे। वह जल हमें शान्ति और रोगनाशक शक्ति प्रदान करे।"

"आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जे दधातन
महेरणाय चक्षसे।" यजु० ११। ५०

"जल अवश्यमेव सुख दाता है, वे हमें रसके लिये और बड़े रमणीय दर्शनके लिये धारण करें।

"योवः शिव तमोरसस्तस्य भाजयते हनः।
उशीतीरिव मातरः।" साम० उत्तरार्चिके

जलोंका जो अत्यन्त सुखदायी रस है, प्रभो! उस रसका हमें सेवन कराओ। जैसे पुत्रकी मङ्गल कामना करनेवाली माताएँ उन्हें दूध पिलाती हैं।"

"तस्माअरंगमाम वो यस्यक्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथाचन। यजु० ११। ५२

"जल! जिस अशुद्धयादि पापके नाशार्थ तुम्हें हम ग्रहण करते हैं। उस अपवित्रताको नष्ट करो, हमें उत्पन्न करो और सन्तान आदिसे वृद्धि करो।

वेदोंके प्रमाण जलकी प्रशंसामें इतने ही बस हैं। पानी एक अत्यन्त जरूरी पदार्थ है, किन्तु हम लोग उसकी सम्हाल नहीं करते। गन्दे और मैले जलका सेवन तो एक मामूलीसी बात है परन्तु ऐसे ऐसे मनुष्य भी (!!) हैं, जो विना देखे पानी पी लेते हैं और उसमें बड़े बड़े जीवजन्तु जैसे, कनसला—कान खजूरा, बर्र, ततैया, छिपकली, चींटे, मकोड़े, मक्खी, मच्छर तक अपने पेटमें उतार जाते हैं!! इन्हें मनुष्य कहें या......

मनुजीने शुद्ध जलके लिये भी छानकर पीनेका उपदेश दिया है। देखिये—

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिवेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनः पूतं समाचरेत्।" अ० ६,४६,

आजकल तो जलकी शुद्धिका एक नया तरीका काममें लाया जाता है। ऊपर नीचे ४ मिट्टीके घड़े रखे जाते हैं। सबसे ऊपरवालेमें उबला हुआ पानी होता है, उसके नीचेमें की हंडीमें लकड़ीके कोयले, इसीके नीचेकी मटकी बालूरेत और सबसे नीचेके घटपर कपड़ा मुँहको बाँध दिया जाता है। नीचेकी मटकीको छोड़कर बाकी ऊपरकी तीनों हाँड़ियोंमें

एक छोटा सा छेद कर दिया जाता है, जिनमेंसे एक एक बूँद पानी टपक कर नीचेकी मटकीमें भर जाता है। इस प्रकार शुद्ध किये जलको पीते हैं—प्रायः अंग्रेज लोग ऐसा ही जल पीते हैं। हमारे विचारसे जलको शुद्ध करनेके लिये सबसे पहिले पानीको उबालकर ठण्डा कर लेना चाहिये। बादमें दूसरे पात्रमें निथारकर, तीसरे बरतनमें कपड़ेसे छान कर भर देना चाहिये। इस प्रकार शोधित जलके सेवनसे स्वास्थ्य कभी खराब नहीं होता। जब कि मनुष्य बीमार हो तब तो इस प्रकार शुद्धि किया हुआ जल अवश्य ही पीनेके लिये देना चाहिये,—रोग शीघ्र ही हट जावेगा। जलको उबालनेसे उसमेंके समस्त रोग-जन्तु नष्ट हो जाते हैं। उसमेंका कूड़ा कचरा नीचे बैठ जाता है। पानी हलका और शुद्ध हो जाता है।

हम लोग प्रायः कूओंका पानी पीते हैं लेकिन हम लोग उनकी सफाईका उतना ध्यान नहीं रखते। बहुतसे कूंए पक्के नहीं बँधे होते—केवल गहरे गड्ढेसे होते हैं। पक्के बंधे हुए कूओंमें अक्सर कबूतर आदि पक्षियोंके रहनेके लिये सूराख बनवा कर अपनी धर्म-शूरताका परिचय दिया जाता है। वास्तवमें देखा जावे तो यह पाप है। पक्षियोंके पङ्ख उनकी, बीठ उनके अण्डे, बच्चे, घोंसला बनानेके लिये लाये हुए तिनके घासफूस उस कूएमें गिरकर उसे गन्दा करते रहते हैं। ऐसे कूओंका पानी नहीं पीना चाहिये। कब्रस्तानके पासके कूए, अथवा जिन

कूओंमें गन्दा मैला पानी आता हो, उनका पानी स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकारक है। जिस कूपके पानीमें पत्ते आदि पड़ जानेसे या कीचड़ आदिकी सफाई न होनेसे बदबू आने लग जावे, जिसमें कीड़े पड़ गये हों—कोई प्राणी उसमें मर गया हो, ऐसे कूओंका पानी नहीं पीना चाहिये। पीनेके लिये पानी जिन कूओंसे लिया जाता हो, उनमें मिट्टी या राखसे लिपटे हुए पात्र, अथवा गन्दे पात्र नहीं डालने देना चाहिये। उसमें स्नान करते समय मैले छींटें न जाने पावें। इस बातका भी ध्यान रखना आवश्यक है। जिन कूओंसे पीनेके लिये पानी लिया जावे, उनके पनघटको झाड़ बुहारकर अत्यन्त शुद्ध रखना चाहिये। वहाँ मिट्टी या राख डाल देना, थूकना तथा और किसी प्रकारका कचरा वगैरः फैलाना बुरी बात है। जिन कूओंमें पत्ते आदि कचरा कूड़ा गिरता हो और जिसके जलको सूर्य प्रकाश नहीं लगता हो, ऐसे कूओंका जल अच्छा नहीं होता। जिस जलमें दाल प्रभृति अन्न न गले। बेस्वाद चिकनाई युक्त, खारे और बदरङ्ग जलको कदापि नहीं पीना चाहिये। जो जल हलका और स्वादुमें मिष्ट हो, सुगन्धियुक्त और शीतल हो, उसे ही पीना चाहिये। कई दिनका बासी पानी और वर्षाका पानी नहीं पीना चाहिये।

पानीका दूसरा साधन बावली है। बहुतसे लोग बावली का पानी पीते हैं। जो कुछ भी बातें कूपके विषयमें लिखी गई है, वे ही बावलीके विषयमें हैं। बावलियोंमें लोग नहाते

है, और अपने वस्त्र धोते हैं—इससे जल रोगोत्पादक हो जाता है। जब कि आदमी बावलीमें पानी पीने या भरनेके लिये उतरते हैं, तब उसमें हाथ मुँह नाक वगैरः भी धोते हैं, इससे जल खराब हो जाता है। जिन बावलियोंसे पीनेके लिये पानी लिया जावे, उनमें हाथ पैर नहीं धोने चाहियें। अंधेरेमें यदि आप देखेंगे तो पानीके अन्दरका कचरा कूड़ा आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। परन्तु यदि आप सूर्य प्रकाशमें—धूपमें, जलको ध्यानसे देखेंगे तो उसके अन्दरका कचरा कूड़ा साफ मालूम पड़ जावेगा। इसलिये पानीको पीनेके पहिले प्रकाशमें अवश्य देख लेना चाहिये।

ग्रामीण लोग, यदि उनके गाँवके पास ही तालाब हो तो कूएको छोड़कर उसीका पानी पीनेके काममें लाते हैं। तालाबका पानी पीनेके लिये शायद ही कहीं उत्तम मिले। खास करके जो तालाब गाँवके निकट हैं, उनका पानी कदापि अच्छा नहीं कहा जा सकता। जिन्हें गन्दे और स्वच्छपानीकी पहिचान ही नहीं है, उनके लिये तो गन्दा पानी भी अच्छा ही दीख पड़ता है। हमने देखा है कि हरे रङ्गके पानीमें लोग स्नान करते हैं और उसे ही पीनेके काममें भी लाते हैं। एक स्वच्छ पानीको काममें लाने वाला मनुष्य उस हरे रङ्गके गन्दे पानीको देखकर घबरा उठता है किन्तु सैकड़ों लोग उसीको पीनेतकके काममें लाते देखे गये हैं। लोग तालाबोंमें अपने ढोरोंको स्नान कराते हैं। भैंस जैसे पानी पसन्द जानवर उसमें पड़े रहते हैं। वे

उसीमें मलमूत्र त्यागते हैं। घोड़ोंको लोग जब तालावमें स्नान कराते हैं, तो वे उसीमें पेशाव और लीद भी कर देते हैं। धोबी लोग तालावोंमें कपड़े धोते हैं। कई गँवार मनुष्य जब उसमें स्नान करनेके लिये उतरते हैं, तब पानीमें ही मूत देते हैं। सारांश यह, कि तालावका पानी पीनेके लिये कदापि अच्छा नहीं हो सकता। हाँ, इसे उबालकर हमारी लिखी हुई क्रियाके अनुसार शुद्ध कर लिया जावे तो पीनेके योग्य बन सकता है। जो तालाव निर्जन स्थानोंमें हो और यदि उनका जल अत्यन्त निर्मल पारदर्शी हो, तो पीलेनेमें कोई हानि नहीं हो सकती। पोखरों और तलैयोंका पानी भी प्रायः अच्छा नहीं होता। जिस प्रकार मनुष्यको पीनेके लिये पानीका ध्यान रखना चाहिये, उसी प्रकार स्नानके लिये भी शुद्ध जलका ही प्रयोग करना चाहिये। शुद्ध जल पीकर और गन्दे पानीमें नहाकर मनुष्य कदापि स्वस्थ नहीं रह सकता।

तालावोंके बाद नदियोंका और नालोंका नम्बर है। इनके विषयमें भी थोड़ा बहुत यहाँ विचार करना जरूरी है। नदियाँ बहती रहती हैं इसलिये अधिकतर उनका जल निर्म्मल होता है। परमात्माने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, आदि बड़ी बड़ी नदियाँ हम भारतवासियोंको प्रदान करनेकी कृपा है। गङ्गा जैसी पवित्र सलिला नदी इस भूतल पर दूसरी कोई है ही नहीं। यह हिमालय जैसे भूतल पर्वतराजसे निकली है—यही कारण इसकी उत्तमताका है। यहाँ अथर्व वेदका निम्न मन्त्र देखिये—

"हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गमः ।
आपोह मह्यं तद् दे वीर्ददन् हृद्योत भेषजम् ॥" अथर्व ६।२४।१

"(आपः) जलधाराएं (हिमवन्तः) बर्फीले पहाड़से (प्रस्रवन्ति) बहती हैं (सिंधौ) समुद्रमें (सङ्गमः) उनका सङ्गम है। (देवी) शुद्ध जलधाराएं (ह) निश्चयपूर्वक (मह्यं) मुझे (तत्) वह (हृद्योतभेषजम्) दिलके भय जीतनेवाला औषध (ददन्) देवे।"

तात्पर्य यह कि जो नदियाँ बरफके पहाड़ोंसे निकलती हैं, वे उत्तम जलवाली हैं और उनका जल ओषधिके समान होता है। ऐसा जल पान करनेवालोंका मनोबल भी बढ़ता है। हमारे पाठक पूर्वकालीन ऋषि मुनियोंका गङ्गा यमुना आदि नदियोंके किनारे रहकर जीवन बितानेका कारण इस वेद मन्त्रके अर्थसे अच्छी तरह समझ गये होंगे। उनकी दीर्घायुका एक कारण यह भी था, कि वे भागीरथीका जल प्रयोग करते थे। इस बर्फके वर्णनसे हमें भय है कि हमारे पाठक कहीं बाजारू बर्फ खरीद कर आरोग्य न बढ़ाने लग जावें। स्मरण रखिये, बाजारू बर्फ स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है।

गङ्गा आदि नदियोंका जैसा महात्म्य हम ऊपर लिख आये हैं और पुराणादि ग्रन्थोंमें भी उसे स्वर्गदायिनी वर्णन किया है—अब वह गङ्गा नहीं रही है। वह गन्दी बना दी गई है—उसका अमृत तुल्य जल अब विष बना दिया गया है। कानपुर, आगरा, प्रयाग, काशी, गया आदि नगरोंका मलमूत्र इन गङ्गा

यमुना आदि पवित्र नदियोंमें, बड़े बड़े नलों द्वारा लाकर डाला गया है। इन गटर-पितामहोंके श्रोतको इन नदियोंमें गिरते देखकर चित्तको जितना दुःख होता है, उसका वर्णन करना यहाँ असम्भव है। इनको देखनेसे यह मालूम होता है, मानों कोई सहायक नदी या नाला गङ्गा यमुनामें आकर मिल रहा है। कितने खेद की बात है कि ३३ कोटि भारतवासी अपनी इन नदियोंको, सरकारसे प्रार्थना द्वारा, गन्दा होनेसे नहीं बचा सकते !! सरकार यदि चाहे तो इन गटरोंको जमीन पर छुड़वा सकती है—इससे एक बड़ा भारी लाभ यह होगा कि उत्तम खाद तय्यार हो सकेगा, जो खेतोंके काममें आवेगा। ऐसा करनेसे हमारी नदियाँ पवित्र हो जावेंगी और हम फिर पहिले की भाँति शुद्ध जल प्राप्त करके उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु पा सकेंगे। जिन नदियोंका जल देखनेमें पारदर्शी हो, बहता हुआ हो, कचरा कूड़ा न हो, जिसमें मलमूत्रकी मोरियाँ आकर न गिरती हों, ऐसी नदीका जल पीनेमें कोई हानि नहीं। इसके अलावा एक बात और भी ध्यानमें रखने की है। भूमि जिसपर नदी बहती हो, उसके गुणोंका और अवगुणोंका ज्ञान भी होना चाहिये। रेतीले मैदानोंमें बहनेवाली नदियोंका जल निस्सन्देह पवित्र, स्वास्थ्यप्रद होता है। ऐसे मैदानोंमें बहने वाली नदियोंका जल पीने वाले लोग पुष्ट और बलवान होते हैं। गङ्गा यमुना तटवासी लोग इसी कारण मोटे ताज़े और हिम्मतवाले होते हैं। जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर "लूई कोर्में" ने

रेतमें मिलनेवाले पानीकी बहुत ही तारीफ की है। कई नदियोंका जल रोगोत्पादक भी होता है। नालोंके विषयमें भी नदियोंके अनुसार ही ध्यान रखना चाहिये। नदियोंमें स्नान करनेसे आयुष्यकी वृद्धि होती है।

नदियोंके बाद समुद्रके जलका नम्बर है। समुद्रका जल खारी होता है। इसे कोई पी भी नहीं सकता—क्योंकि यह इतना खारी होता है, कि स्वादमें कड़ुवा भी होता है। एक घूँट भी कण्ठके नीचे उतार जाना मुश्किल होता है। इसे कोई नहीं पीता। लोग इस पानीमें नहाते हैं किन्तु यह स्वास्थ्य-को हानि पहुंचाता है। नदियोंके किनारे कुछ लोग रेतीमें गड्ढे बनाकर पीनेके लिये पानी प्राप्त करते हैं—यह पानी स्वास्थ्यके लिये हितकर होता है। अब एक हमारा पानीका जरिया और है—वह आधुनिक सभ्यताका ढङ्ग है। वह नल है, उसमें पानी तो इनमें कूओं, नदियों और तालाबोंसे ही आता है किन्तु बीचमें टङ्की होती है अतएव थोड़ासा टङ्कीके विषयमें भी विचार होना चाहिये।

जलको शुद्ध रखनेके लिये सबसे पहिले उस पात्रको शुद्ध रखनेका ध्यान भी होना चाहिये जिसमें, कि पानी रखा जाता हो। टङ्की भी एक प्रकारका विस्तृत पात्र ही है। उसके शुद्ध रखनेका बहुत ही ध्यान भी होना चाहिये जिसमें कि पानी रखा जाता हो। परन्तु देखा जाता है, कि इस विषयमें अत्यन्त ही बेपरवाही रखी जाती है। नलोंका पानी स्वास्थ्यके

लिये उतना उत्तम नहीं होता, जितना कि कूपका। टङ्कीसे जो नल जाते हैं, वे फिट (Fit) किये जानेके बाद कभी साफ़ नहीं किये जाते! इसके अतिरिक्त दो नलोंको मिलाकर कसते समय बीचमें चमड़ेका प्रयोग किया जाता है जो पानीको दूषित करता है। नल जंग लग जानेसे गल जाते हैं तब उनमें जमीनके भीतरसे गन्दा पानी भी थोड़ा बहुत मिल जाने लग जाता है। क्योंकि नल जमीनमें अधिक गहरे नहीं होते हैं और अक्सर गन्दे स्थानोंसे बचाकर उन्हें नहीं रखा जाता है—गटर, पाखानों, पेशाबघरों, और गन्दी मोरियोंमें होकर भी पानी पीनेके नल जाते हुए देखे गये हैं। गर्मीके मौसिममें कभी कभी नलसे इतना गर्म पानी आता है कि उसे हाथ लगाना तक कठिन हो जाता है—इस तरहके पानीसे स्वास्थ्य खराब हो जाता है। गर्मीके मौसिममें ऐसे गर्म पानी पीलेनेसे हैज़ा हो जाता है। ठण्डके मौसिममें नलोंसे इतना ठण्डा पानी मिलता है कि उसे हलकके नीचे उतारना कठिन हो जाता है। सबसे बड़ा भारी दोष तो यह है, कि यदि टङ्कीमें किसी रोगके उत्पादक जन्तु उत्पन्न हो जावें तो वह रोग एकदम सारे नगरमें फैल जावेगा। इसलिये टङ्कीके विषयमें बड़ी सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। इससे दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है, कि हमें अपने जल भरनेके पात्रोंको अच्छी प्रकार धो माँजकर शुद्ध रखना चाहिये।

अधिकांश पानी दो कामोंमें हमारे काम आता है (१)

पीनेके और (२) शुद्धिके लिये—अर्थात् स्नानमें, वस्त्र धोनेमें, गन्दे पदार्थों की सफाई इत्यादिमें। हम पीछे पानी पीनेके लिये कैसे पानीकी आवश्यकता है यह लिख आये हैं, अब यहाँ यह विचारना है, कि शुद्धिके लिये उतने ही शुद्ध जलकी जरूरत है या कुछ कम शुद्ध हो तो भी काम चल सकता है? यहाँ हम अपने पाठकोंको जोर देकर कहेंगे कि शुद्धिके लिये भी पीने योग्य उत्तम जल ही काममें लाना चाहिये। बहुतेरे लोग गन्दे पानीमें नहाते हैं—इससे तन्दुरुस्ती तो बिगड़ ही जाती है, साथ ही आयुष्य भी क्षीण हो जाती है। जलको छानकर ही स्नान करना चाहिये। अशुद्ध पानीमें वस्त्र, बर्त्तन आदि भी नहीं धोने चाहियें। नहानेके लिये नदी, तालाब, बावली, कुआ क्रमशः अच्छे हैं। बहुतेरे लोग घरमें गरम जलसे स्नान करते हैं। यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त अहितकर है। जिन्हें दीर्घायुष्यकी इच्छा हो उन्हें प्रत्येक ऋतुमें शीतल जलसे ही स्नान करना चाहिये। स्नान किस समय और कितनी बार करना चाहिये यह भी यहाँ बतलाना जरूरी है। स्नानका सबसे उत्तम समय प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्वका है—इससे बढ़कर दीर्घायु देनेवाला दूसरा कोई भी स्नानका उत्तम समय नहीं है। सूर्योदयके पश्चात् भी जितनी जल्दी स्नान कर लिया जावे उतना ही उत्तम है। नित्य दोबार प्रातः सायं स्नान करना चाहिये। सायंकालको सूर्यास्तके पहिले स्नान कर लेना चाहिये। यदि दिनमें दोबार स्नान करना असम्भव प्रतीत हो तो नित्य एक

वार मनुष्यको अवश्य ही स्नान कर लेना चाहिये। जो नित्य स्नान नहीं करते, वे पशु तुल्य माने जाने योग्य हैं। स्नानसे हमारा मतलब बदनको पानी चुपड़ लेनेसे नहीं है बल्कि शरीरकी मलशुद्धिसे है। स्पांजसे अथा मोटे किसी वस्त्रसे शरीरको खूब रगड़ कर धोना चाहिये—ऐसा स्नान ही दीर्घायुका देने वाला है। इस प्रकारके स्नानसे किसी प्रकारका चर्म रोग नहीं होता, शरीर कान्तिवान और पुष्ट हो जाता है। यह एक प्रकारकी जल चिकित्सा है।

पाखानेके वाद गुदा और लिंग दोनोंका शुद्ध जलसे तथा विपुल जलसे अच्छी तरह धोकर शुद्ध करना चाहिये। गन्दे पानीसे तथा थोड़े पानीसे शुद्ध करने वालोंको ववासीर आदि विविध गुद रोग हो जाते हैं। हमारे शास्त्रकारोंने तो इन मल-द्वारोंको मिट्टी लगाकर धोनेका विधान किया है किन्तु खेद कि हम लोग अत्यन्त उपयोगी नियमोंको व्यर्थ ही मान बैठे हैं। देखिये मनु भगवान आज्ञा देते हैं—

एका लिंगं गुदेतिस्रस्तथैकत्र करे दश।

उभयो सप्त दातव्या मृदुः शुद्धिमभीप्सित॥" अ० ५। १३५

लिंगको एकवार, गुदाको ३ वार, वायें हाथमें १० वार और दोनों हाथोंमें ७ वार मिट्टी लगाकर जलसे शुद्धि करनी चाहिये। हमेशा उत्तम जलसे ही मिट्टी लगाकर मलद्वारोंको धोकर शुद्ध रखना चाहिये।

जल कैसा काममें लाना चाहिये। यह वात हम पीछे लिख

आये हैं। अब यह बतलाना आवश्यक है, कि जल किस प्रकार कब और कितना पीना चाहिये ? सबसे पहिली बात तो यह है कि पानीके पीनेकी जरूरत ही नहीं है और न होनी ही चाहिये। हमारे शरीरमें ७० प्रतिशत भाग पानीका है। इसी तरह हमारी खुराकमें भी पानीका भाग अधिक परिणाममें होता है। ऐसा कोई अन्न ही नहीं, जिसमें पानीका अंश न हो—इसके अलावा राँधनेमें बहुतसा पानी काममें लाते हैं। फिर भी पानी पीनेकी जरूरत क्यों होनी चाहिये ? इसका उत्तर यही है कि हमलोग भोजनको ऐसा जान बूझकर तैयार कर लेते हैं कि पानीकी बारम्बार आवश्यकता पड़े। मिर्च, तेल, मसाले, नमक, खटाई आदि पदार्थ प्यासको बढ़ाते हैं—जो लोग केवल फल या मेवा इत्यादि खाते हैं, उन्हें अधिक प्यास सताती ही नहीं। अकारण ही मनुष्यको प्यास लगे तो समझ लेना चाहिये, कि वह रोगी है। पानी कब पीना चाहिये ? इसका उत्तर यही है कि जब अच्छी प्यास लगे तभी पीना चाहिये ? कितना पीना चाहिये ? इसका भी सीधा उत्तर यही है कि प्यास बुझे इतना पीना चाहिये। भोजनके समय पानी पीनेके विषयमें बड़ा ही मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि भोजनके बीचमें जल पीना चाहिये। कुछ लोगोंका कहना है कि थोड़ा थोड़ा करके बीच बीचमें दो चार वक्त पीना चाहिये। कुछ कहते हैं कि अन्तमें पीना चाहिये और बहुतेरोंका मत है, कि बिलकुल पानी नहीं पीना चाहिये। देखिये चाणक्य कहते हैं—

"अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णेवारिबलप्रदम्।
भोजनेचामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥"

अपचके लिये जल औषधि है, पचनेके पश्चात् जल बल दाता है, भोजनके समय जल अमृत है और भोजनके अन्तमें जल विषके समान है। हमारे विचारसे तो भोजन करते समय जलकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि हम उस समय भोजनके लिये बैठे हैं, न कि पानी पीनेके लिये। जब कि हम पानी पीनेके समय भोजन नहीं करते तो भोजनके समय पानी पीना भी व्यर्थ ही है। खुराकको गलेके नीचे उतारनेके लिये जल पीना, अपने स्वास्थ्यको नष्ट करना है। यदि आप खुराकको अच्छी तरह चबा लेंगे तो वह बिना पानीके आप ही आप गलेके नीचे उतर जायगी। वास्तवमें देखा जावे तो हम शरीरके लिये जल नहीं पीते हैं बल्कि अपनी खुराकके लिये पीते रहते हैं। कभी कभी हमारे भोजनमें हम ऐसी ऐसी वस्तुएँ भी खा जाते हैं कि जिनके लिये हम पानी पीते पीते पेटमें दुःख पैदा कर लेते हैं। हमें भोजन हमेशा ऐसा करना चाहिये जो सात्विक हो और तृषाको उत्पन्न न करे। पानी पीकर दौड़ना नहीं चाहिये और न दौड़कर आनेके बाद तुरन्त ही पानी पीलेना चाहिये। खड़े होकर या लेटकर जल नहीं पीना चाहिये पेशाब करनेके पूर्व जल पी लेना चाहिये—पेशाब करनेके पश्चात् जल पीना हानिकारक है। पसीनेमें जल नहीं पीना चाहिये। सोते समय जल पी लेना चाहिये। सूर्योदयसे दो घड़ी पूर्व

इच्छानुसार जल पीने वालेको कभी कोई रोग नहीं होने पाता। इस जलपानको "उषःपान" कहते हैं। इसके असंख्य लाभ हैं—पाठक अनुभव द्वारा देख सकते हैं। नासिका द्वारा भी जलपान अत्यन्त हितकर और आरोग्य दाता है। प्रातः काल ही नासिका द्वारा पानी पीनेसे दीर्घायु प्राप्त होता है।

बाजारू पेय कदापि नहीं पीने चाहियें—सोडा लेमन आदि पदार्थोंको पानीकी जगह कदापि नहीं सेवन करना चाहिये। हलका सुस्वादु और निर्म्मल जल ही उपयोगी है। हलके पानीमें साबुनको मसलनेसे झाग पैदा होती है, और भारी पानीमें झाग नहीं उठती। यह हल्के और भारी पानी पहिचाननेकी सुगम रीति है। वर्षाका पानी अच्छा होता है, हलका होता है। लेकिन (The First rain is poison) "आरम्भिक वर्षाका जल विष है" यह स्मरण रखना चाहिये। वर्षाका पानी यद्यपि शुद्ध होता है, तथापि उसमें गिरते गिरते कई पदार्थ मिल जानेके कारण वह कुछ दूषित हो जाता है। बहुतसे लोग ऐसे हैं, जिन्हें बुरा भला पानी पीनेसे कुछ भी नहीं होता! हमारे कई भाई इन्हें आदर्श मानकर पानीकी तरफसे बेपरवाही रखते हैं, उनसे यही प्रार्थना है, कि उक्त प्रकारके लोग यदि शुद्ध जलका प्रयोग करने लगें तो विशेष स्वस्थ और दीर्घायु हो सकते हैं। सारांश यह कि दीर्घायु चाहने वाले मनुष्यको उचित रीतिसे शुद्ध जलको ही काममें लाना चाहिये।

खुराक

पानीके बाद हमारी तीसरी खुराक अन्न है। जितने भी खेल इस विश्वमें हम देखते हैं, वह सब इस अन्नके लिये ही हो रहे हैं। पाप पुण्य, अच्छे बुरे काम सब इसीके लिये हो रहे हैं। इस पेट-पापीको भरनेके लिये यह सारा खेल मानव-जाति खेल रही है। हवा और पानी भी खुराक है। इसे बहुत कम लोग जानते हैं; परन्तु सर्वसाधारण अन्नको ही अपनी खुराक समझते हैं। गेहूं, जौ, चना, बाजरी, मकई, ज्वारी, मूँग, उड़द आदि अन्न कहलाते हैं। इनके खानेवाले अन्नाहारी कहलाते हैं। यह तीसरे दर्जेकी खुराक है। संसारके कई भागोंमें ऐसे लोग भी बसते हैं, जो केवल मांस खाकर ही अन्नकी गरज पूरी करते हैं। बहुतसे लोग विष्ठा खाते हैं, उनका अन्न विष्ठा ही है। कुछ लोग दूध पीकर ही अपना निर्वाह करते हैं। उनका दूध ही अन्न है। कई फलाहारी हैं—ऐसे लोगोंका अनाज फल है। इस खुराक प्रकरणमें हमारा अन्न शब्दसे मतलब खाद्य पदार्थोंसे है।

हम खाद्य पदार्थोंपर कुछ लिखें, इसके पहिले हमें खाद्य विषयपर थोड़ा सा विवेचन कर लेना चाहिये। हमारा शरीर जिन पदार्थोंसे बना है और जिनसे शक्ति उत्पन्न होती है, वे समस्त पदार्थ भोजनमें मौजूद होते हैं। जो वस्तुएं हम खाते हैं,

अर्थात् जिनसे भोजन बनता है, उन्हें खाद्य पदार्थ कहते हैं। भोजनसे शरीरके लिये वृद्धि और जीवन प्राप्त होता है। खाद्यके मूल अवयव ५ हैं। ये समस्त वस्तुएँ शरीरमें पाई जाती हैं—

१—प्रोटीन

२—वसा (चिकनाई)

३—कर्बोज (Corbohydrates)

४—लवण

५—जल

सब पदार्थोंमें उक्त अवयव एक ही परिमाणमें नहीं होते। किसीमें कोई कम और किसीमें कोई ज्याद: होते हैं। साधारण मानसिक और शारीरिक श्रम करनेवालोंको, जिनका भार लग-भग डेढ़ मनके हो, उन्हें मूल अवयव निम्नलिखित परिमाणमें खाने चाहियें।

प्रोटीन ७० से ८२ माशे तक।

वसा—(चिकनाई) ८५ माशे।

कर्बोज—२२० से २५० माशे तक।

लवण और जल इनके परिमाणकी आवश्यकता नहीं है। प्रोटीन, बसा, और कर्बोज—इन तीनों अवयवोंमेंसे प्रोटीन अत्यन्त आवश्यक अवयव है। मांस प्रोटीनसे बनता है। अर्थात् जिस भोजनमें प्रोटीन कम होता है, उसे खानेवाले कदापि बल-वान नहीं हो सकते। जिस प्रकार प्रोटीन नामक अवयवकी शरीर वृद्धिके लिये आवश्यकता है, उसी तरह वसा और कर्बो-

जकी भी शरीरमें शक्ति उत्पन्न करनेके लिये अत्यन्त आवश्यकता है। यद्यपि प्रोटीन भी शरीरमें शक्ति उत्पन्न करता है तथापि वसा और कर्बोजके सदृश नहीं कर सकता। शीतऋतुमें शारीरिक गर्मी स्थिर रखनेके लिये, गर्मी पैदा करनेवाले पदार्थोंकी ग्रीष्मऋतुकी अपेक्षा अधिक आवश्यकता होती है।

वसा और कर्बोज एक दूसरेकी गरज पूरी कर सकते हैं। अर्थात् यदि भोजनमें वसा कम हो और कर्बोज अधिक हो तो भी काम चल सकता है– शरीरको कुछ हानि नहीं होगी और स्वास्थ्य भी नहीं बिगड़ेगा। इसी प्रकार कर्बोज कम हो और वसा अधिक हो तो भी काम चल जायगा। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये, कि वसा कर्बोजकी अपेक्षा देरमें पचनेवाला अवयव है। वसा उतनी नहीं खाई जा सकती, जितनी कि कर्बोज। गरीब मनुष्य जो घृत तैल आदि वसा नहीं खा सकते, उन्हें कर्बोज मिल जावे तो भी काम चल जावेगा। प्रोटीनका भोजनमें होना अत्यन्त आवश्यक है, विशेषतः मनुष्यकी २५ वर्षकी उम्रतक। यदि मनुष्यको २५ वर्षकी अवस्था तक प्रोटीन कम मिले तो शरीरकी वृद्धि अच्छी नहीं हो सकती। जवान मनुष्यके भोजनमें ४०।४५ माशेसे कम प्रोटीन नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार वसा और कर्बोज एक दूसरेकी आवश्यकता पूरी कर सकते हैं, उसी तरह प्रोटीनकी गरज वसा और कर्बोज नहीं पूर्ण कर सकते।

इन तीन मुख्य अवयवोंके अतिरिक्त हमें जल और लवणकी

भी आवश्यकता है। अस्थियाँ बिना लवणके मजबूत नहीं बनतीं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यकतानुसार प्रकृतिने प्रत्येक पदार्थमें लवण अवयव मिला रखा है। बाजारमें जो पदार्थ लवणके नामसे बिकते हैं, केवल उन्हें ही लवण नहीं मान बैठना चाहिये। वे बल और जल शक्ति उत्पन्न करनेके काममें नहीं आते। अब यहाँ पर ऐसे कुछ कोष्ठक लिखते हैं, जिनसे कि सहजहीमें यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि किस पदार्थमें कितने परिणाममें कौन कौनसे मुख्य अवयव हैं—

साबूदाना :—इसमें ८६·७ सैकड़े कर्बोज होता है। प्रोटीन अंश मात्र होता है। शेष भाग जलका होता है।

अरारूट :—इसमें ८२·०५ सैकड़े कर्बोज होता है, शेष भाग जलका होता है। प्रोटीन और लवण नाम मात्रको होता है।

मक्खन :—में प्रोटीन २·०० घसा ८५·०० लवण १·०० और जल १२·६५ होता है।

घृत :—में घसा लगभग १·०० सैकड़े होता है।

दही:—में प्रोटीन २४·०६ सैकड़े घसा २·५ लवण १।१ और शेष भाग जल होता है।

मलाई—में प्रोटीन और खटिक संयोजित थोड़ी सी वसा होती है।

मसाले :—मसालोंमें प्रायः उड़नेवाले तेलका भाग अधिक होता है। इन्हीं कारणोंसे उनमें गन्ध आया करती है। तेलोंके अतिरिक्त इनमें विशेष अवयव भी होते हैं, जिनके कारण ये विशेष प्रकारका गुण और स्वाद रखते हैं।

अन्न।

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	खनिज पदार्थ	जल
गेहूँ	११·४७	२·०४	७०·६०	३·१४	११·८३
जौ	८·६२	१·६०	७६·१०	२·२	१२·३
मकई—मक्का	९·५२	४·४४	६८·२	३·७५	११·५०
चावल	६·६२	०·५०	८१·७	१·०४	११·५
बाजरी	८·७२	४·७६	७३·४०	१·५-२·०	११·१२
ज्वारी,-जुआर	७·६७	२·७७	६७·२६	×	×
गेहूंका आटा					
छना हुआ	१०·७	१·१	७५·४	०·५	
फूल मैदा	७·६	१·४	७६·४	०·५	
चोकर (गेहूंकी)	१६·४	३·५	४३·६	६·०	१२·५

दाल

नाम	प्रोटीन	वसा	कर्बोज
मूँग	२३·६२	२·६६	५३·४५
मसूर	२५·४५	३·००	५५·०३
चना	१६·११	४·३७	५४·२२
मटर	२२·०१	१·६६	५३·१७
अरहर	२१·७०	२·५०	५४ ६
उड़द	२२·३३	१·६५	५५·२२

इनमें १०—११ % जल और ३—४ % कर्बोज होता है।

शाक, भाजी (तरकारी)

नाम	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	खनिज	जल
बन्दगोभी (करम-कल्ला)	१·८	०·४	५·८	१·३	८९·६
फूलगोभी	२·२	०·४	४·७	०·८	९०·७
टोमाटो	१·३	०·२	५·०	०·७	९१·९
खीरा (ककड़ी)	०·८	०·२	२·०	०·४	९५·९
आलू	२·०	०·२	१५·९ २०·६	१·०	७६·८०
शलगम	१·२	०·२	८·२	१·०	८९·४
गाजर	०·५ १·१	०·५	१०·१	०·९	८६·५
हरी मटर	४·४	०·५	१६·१	०·९	७८·१
प्याज	१·४	०·३	१०·१	०·६	८७·६
मूली	१·३	०·७	१४·५	१·०	८२·५
केला	१·३	०·६	२०·०	०·८	७५·३
बैंगन (भाटा)	०·८९	०·९४	३·४८	०·२६	९३·९८
भिण्डी	१·९६	१·१	५·७२	०·८	९०·४
मीठा कद्दू	०·९०	१·०	३·९६	०·७	९३·४०

सूखे हुए फल—

नाम	प्रोटीन	वसा	कार्बोज	खनिज	जल
चेस्टनट ताजे	६·६	८·०	४५·२	१·७	३८·५
चेस्टनट सूखे	१०·१	१०·०	७१·४	२·७	५·८
अख़रोट	१५·६	६२·६	७·४	२·०	४·३
बादाम मीठा	२४·०	५४·०	१०·०	३·०	६·०
पिश्ता	२१·७	५१·०	१४·०	३·३	७·४
नारियल (गूदा)	५·०	३५·९	८·४	×	४६·६
गोल (सूखा)	६·०	५७·४	३१·८	×	३.५
नारियलका दूध	०·५	×	९·०	×	९०·३
मूँगफली	३१·	५६·	×	४·०	१२·०

फल वगैरहः ।

नाम	प्रोटीन	चर्बी	कर्बोज	लवण अम्ल	जल
सेव	०·४	०·५	१२·५	१·४	८२·५
नाशपाती	०·४	०·६	११·५	१·४	८३·६
आडू	०·५	०·२	५·८	१·३	८८·८
बेर	१·०	×	१४·८	१·५	७८·४
स्ट्रावेरी	१·०	०·५	६·३	१·७	८६·१
रैस्पबेरी	१·०	×	५·२	२·०	८४·४
शहतूत	०·३	×	११·४	२·४	८४·७
अंगूर	१·०	१·०	१५·५	१·०	७६·०
ख़रबूजा (गूदा)	०·७	०·३	७·६	०·३	८६·८
तरबूज़ (गूदा)	०·३	०·१	६·५	०·२	६२·६
नारंगी	०·६	०·६	८·३	०·५	८६·३
अनन्नास	०·४	०·३	६·७	०·३	८६·३
अनार	१·५	१·६	१६·८	०·६	७६·८
अंज़ीर (ताजा)	१·५	×	१८·१	०·६	७६·१
मुनक्का	१·२	३·०	६४·४	२·२	२७·६
किशमिश	२·५	४·७	७४·०	×	१४·०

दूध ।

प्राणी	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
यूरोपियन स्त्री	१.५	३.५	७.०	०.२	८७.८०
बङ्गाली स्त्री	१.२	२.८०	५.९०	०.२४	८९.८६
गऊ	३.५	४.०	३.५	०.७५	८७.२५
घोड़ी	२.०	१.२०	५.६५	०.३६	९०.७९
गधी	२.२५	१.६५	६.००	०.५०	८९.६०
बकरी	४.३	४.७८	४.४६	०.७५	८५.७१
भैंस	६.११	७.४५	४.१७	०.८७	८१.४०

बहुतसे लोग मांस-भोजी हैं; इसलिये हमें यहाँ विविध पशुओंके मांसोंके मुख्य अवयवके विषयमें तथा अण्डोंके विषयमें भी लिखना आवश्यकीय था; किन्तु हम इस बातके अत्यन्त विरोधी हैं। हमारी धारणासे "मांस मनुष्यका खाद्य पदार्थ नहीं है।" जब कि हम इसे मनुष्यका खाद्य ही नहीं मानते तो फिर इस विषयपर कोष्ठक द्वारा समझाना व्यर्थ ही है, अतएव हम मांस विषयक विवेचना न करके उसके विरोधमें यहाँ कुछ लिखेंगे और यह साबित करेंगे कि पशु-पक्षियोंका मांस खाना, मनुष्यका अत्यन्त निन्दनीय, घृणित और प्रकृति-विरुद्ध कार्य है।

अधिकांश लोग आजकल मांसको अपनी खुराक बना बैठे

है। मांस-भोजियोंका कहना है कि "मांससे बढ़कर बलदायक दूसरा पदार्थ कदापि नहीं हो सकता।" यह बात सम्भवतः किसी अंशमें ठीक हो तथापि मांस भोजनमें बुराइयाँ बहुत हैं, जिन्हें इसके खानेवाले बखूबी जानते हैं। हमारे महर्षियोंने कहा है कि:—

"मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांस मिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः।"

अर्थात्—यहाँ मैं जिसके मांसको खाता हूँ, वह परलोकमें मुझे भी खायगा। यही "मांस" शब्दका अर्थ मुनियोंने कहा है। देखिये वेद कहता है—

"अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं निविध्य जिह्वां निवृन्द्धि
प्रदितो मृणीहि। पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने
यविष्ठ प्रति तं शृणीहि।" अथर्व ५।२६।४

(अक्ष्यौ) दोनों आँखें (निविध्य) छेद डाल (हृदयम्) हृदय (निवध्य) छेद्डाल (जिह्वाम्) जीभ (निवृन्द्धि) काट-डाल और (दतः) दाँतोंको (प्रमृणीहि) तोड़दे। (यतमः) जिस किसी (पिशाचः) मांसभोजी पिशाचने (अस्य) इसका (जघास) भक्षण किया है (यविष्ठ) हे महा बलवान् (अग्ने) विद्वान पुरुष (तम्) उसको (प्रति) प्रत्यक्ष (शृणीहि) टुकड़े टुकड़े करदे और देखिये:—

"नकि देवा इनीमसि न क्मायोपयामसि।
मन्त्र श्रुत्यं चरामसि।" सामवेद छ० अ० २ द० ७ मं २

(देवाः) हम उपासक लोग (नकि इनोमसि) हिंसा न करें (आ) सब ओरसे (नकि योपयामसि) किसीको अज्ञान युक्त न करे और (मन्त्रश्रुत्यम्) वेदोक्त कर्मोंको (चरामसि) अनुष्ठान करें। इत्यादि वेदमें बहुतसे मांस-भक्षण निषेधक मन्त्र हैं। अब हमें प्राकृतिक नियमों द्वारा भी इस विषयपर विचार करना चाहिये।

उस परमात्माने खुराक चबाने—खानेके लिये दाँत दिये हैं। आपने देखे होंगे कि मांस खाने और अन्न फलमूल घास आदि खानेके दाँतोंकी उसने अलग अलग ढङ्गकी रचना की है। दाँतोंकी ही नहीं बल्कि प्राणियोंके मुखकी आकृति भी उसने पृथक पृथक ढङ्गकी रखी है। अगर आपने इस विषयपर आज-तक कोई विचार नहीं किया है तो अब विचारना जरूरी है। प्रकृतिने कुत्ते, बिल्ली, शेर, चीते, भेड़िये, रीछ, आदि मांस भोजियोंके दाँत आगेके ऐसे नुकीले बनाये हैं, जिनसे कि वे अपना शिकार पकड़ सकते हैं और मांस चर्म अस्थि आदिको चीर फाड़ कर चबा सकते हैं। अब शाकाहारी प्राणियोंपर दृष्टि डालिये बन्दर, गौ, बैल, भैंस, घोड़ा, ऊँट, बकरी, मृग आदि पशुओंके दाँतोंकी रचना ठीक मनुष्यके दाँतोंके समान ही हैं। शाक भोजियों और मांस भोजियोंके दाँतोंकी रचना अलग अलग ढङ्गकी है। शाक भोजियोंके गाल जबड़े तक चिरे हुए नहीं होते, वे होंठसे चूसकर जल पीते हैं लेकिन मांस भोजियोंके गाल दूर तक चिरे हुए होते हैं—वे होंठसे चूसकर

पानी नहीं पी सकते। उन्हें जबानसे चाटकर पानी पीना पड़ता है। प्राकृतिक नियमोंके देखनेसे यह स्पष्ट हो गया कि मनुष्यको खुराक मांस कदापि नहीं है। ईश्वरने मनुष्यकी जठराग्निको मांस पचाने योग्य नहीं बनाया है। जो लोग मांस खाते हैं, उन्हें इस बातका अनुभव है कि मांस बड़ी ही कठिनतासे हजम होता है। बालक कभी मांस खाना पसन्द नहीं करेगा—उसे जबरदस्ती मांस खाना सिखाया जाता है। जो भाई मांस खाते हैं, उन्हें इस विषयपर अधिक ध्यान देना चाहिये।

मांस मनुष्यकी खुराक नहीं है। इसे हम भारतवासी आर्य ही क्या बल्कि सभी समझदार व्यक्ति स्वीकार करते हैं। वैज्ञानिक लोग मांस भोजन अत्यन्त बुरा तथा हानिकारक सिद्ध कर रहे हैं। सारा योरोप जो मांस भोजी हैं, वह अब मांसको बुरा बताने लगा है! अनेक लोगोंने मांस न खानेकी प्रतिज्ञा कर ली है—शाक-भोजी बन गये हैं! हम यहाँ मांस विषयक विद्वानोंके विचार पाठकोंके अवलोकनार्थ लिखते हैं।

1. India.

Five persons suddenly died in Bombay after eating Beef.—Bombay Chronicle, June 5, 1919.

"The alarming increase of cases of sprue (**at Igatpuri**) is quite probably due to the **abominable quality of our meat.**"—Times of India, July 11, 1921.

2. **England.**

"The amount of human suffering which is caused by eating poisoned or diseased meat is positively distressing. Almost every day one reads in the papers of sickness and death resulting from this unhealthy habit."

"When will the public apprehend the significance of the fact that it is the practice, **all over this country**, to send animals that are **afflicted with disease**, to the butcher to save them from dying of their maladies ?"—Herald of the Golden Age, London, December, 1903.

3. **America**

"There were in the United States last year about 1,300 cases of acute ptomaine poisoning. Nearly all were due to the **use of meats.** Fully 3,000 of these died within 24 hours after the ingestion of the poison. But while one dies of acute ptomaine poisoning, a thousand die of chronic ptomaine poisoning.

Another reason why it is wise to dispense with meat as an article of food is because of the

prevaling **diseases among animals.** It is safe to say **one half of the meat** that is sold in our markets is derived from animals that are more or less affected with some disese.

"The meat-eater is much more apt to **die of germ diseases** than the abstainer from meats."
Dr. D. H. Kress, M. D. (Signs of the Times, October, 1918 journal of the International Tract Society, Luckuow.)

4. Diseases from Flesh-eating.

"There is clear evidence in medical practice of the part played by meat in causing **Dyspepsia, Enteritis** and **Appendicitis** ; in favouring the outbreak of **Typhoid** and **Dysentery** ; in forming the ground for the girms of **Tuberculosis** and **Cancer**."—Some popular Foodstuffs Exposed by **Dr, Paul Carton.**

5, What to do ?

If butchers were to kill healthy animals only, they would have to suffer the loss of many thousands of pounds, they would be ruined and **their families wauld have to starve. So they will**

always kill as many diseased animals as possible for human food. The only remedy against the evil is that instead of expecting either the Butchers or the Meat Inspectors **to become Angels,** prudent and life-loving flesh-eaters should resolve to become Vegetarians, thereby saving themselves and their dear ones from the risk of some day suddenly falling victims to some deadly disease such as cholera or consumption.

6. Greatest Curse for Mankind.

It has become a fashion in the world to prohibit Drink by law. But a study of the subject will convince any body that Flesh-eating is the greatest curse for mankind.

7, A Prayer.

I pray that the World's Rulers may kindly close Slaughter Houses (Hell Upon Earth) in their countries, and thereby earn the very great blessing of saving many human beings from Sudden Death, and many more from Consumption, Cholera, Cancer and other Deadly Diseases.

8. "Beef is stiff and hard of digestion, thickens

blood and generates matters which lead to melancholia, breeds cancer, leprosy, ring worm, itching, gout, pain in the thigh, interruption of menstruation, headache, bald head, hazy sight, sore in the mouth, swelling in the jaws, dullness, constipation etc, etc,"—Makhzan-ul-Adhia (Yunani Medical Book,)

9 "It (veal) is not, however, a food which should be regarded .otherwise than as a luxury and the use of it should be much more limited than fashion now dictates."—Edward Smith M. D, L. L. B. F. R. S.

10. Medicinal virtues of the milk of the cow.

"Milk is easily digestible, it generates sperma-genetale, builds up tissues and muscles, gives tone to the system, produces vigour in the mind and body, invigorates the brain, destroys the tendency to forgetfulness, garrulity, doubt and destruction of mind, cures constipation and sores in the lungs etc."—Makhzan-ul-Adhia.

11. England.

The connection between flesh-eating and the

prevalence of cancer is explained and demonstrated in 'The Blood guiltiness of Christendom' by Sir W. E. Cooper, C. I. E. to be had at the order of the Golden Age, 153, 154 Broughton Road, London S. W. B.

12. Literature.

Vegetarian literature may be had from the Secretaries of (1) The Bombay Humanitarian League, 30J, Shroff Bazar, Bombay. (2) The Vegetarian Society, Manchester, England. (3) The Cow Preservation League, 171 A, Harrison Road, Calcutta (4) The All India Cow Conference Association, 10 Old Post Office Street, Calcutta (5) Cow Protection Society, 43 Banstolla Street, Calcutta.

13. Dr Renner states that cancer occurs in Cierra Leone among the creols or descendants of liberated Africans, who have adopted the European manner of living and consume a large quantity of butcher's meat.

14 "Fourteen meat-eaters and eight vegtarians started for a 70 miles "walking match." All the

vegetarians reached the goal in splendid condition, the first covering the distance in fourteen and a quarter hours. All hour after the last vegetarian came the first meateater and he was completely exhaustive. He was also last meateater, for all the rest had dropped off after 35 miles of endeavour" (Daily News, june 29, 1898, quoted by Prof Haig.)

15. Dr. Robert Bell M. D. writes—"I will go so far that of all systems, that of the vegetarian is the most rational and I can affirm that if it were universally adopted, there would be greater happiness and longer life than at present exists. + + There is not the slightest doudt that upon a vegetarian diet the human frame can thrive most satisfactorily, and combat disease better than on animal diet."

जिस तरह मांस मनुष्यकी खुराक नहीं है, उसी प्रकार वर्त्तमान अन्न खानेका ढङ्ग भी मनुष्यके लिये लाभप्रद नहीं है, ऐसा बहुतसे वैज्ञानिकोंका मत है। सम्भवतः ऐसा लिखनेपर हमारे बहुतसे भाई हमारे इस कथनकी दिल्लगी उड़ावेंगे या हमें मूर्ख ठहरावेंगे ; क्योंकि अन्न पानेके लिये ही

आज हम सैकड़ों पाप करते हैं और दुःख भोगते हैं। हमारे इस लिखनेका मतलब यह नहीं है कि मनुष्यकी खुराक अन्न नहीं है—बल्कि अन्न खानेका ढङ्ग बुरा है। आप इस बात पर यदि ध्यान देंगे तो आपको मालूम होगा कि ६६ फ़ी सैकड़ा मनुष्य केवल जिव्हाके स्वादके लिये अन्न खाते हैं। आप देखेंगे कि कम भूखमें भी लोग सुस्वादु पदार्थों पर भूखेकी तरह जम जाते हैं। सुस्वादु पदार्थोंको भूखसे भी अधिक ठूंस जाते हैं! सुस्वादु पदार्थोंको खूब खानेके लिये पहिलेसे ही भाँग गाँजा आदि नशा खूब पी लेते हैं। मान लो कि कहींसे जीमनेका न्योता आ गया तो अधिक खानेके लिये एक वारका भोजन घरमें भी नहीं करते। खूब खानेके लिये जुलाब लेते हैं—पाचक चूर्णोंकी फाँकियाँ लेते हैं। फ्रूट साल्ट पीकर वमन कर देते हैं। खूब खाकर फिर एक दो दिनतक भोजन नहीं करते। सुस्वादु पदार्थोंको कभी कभी लोग इतने अधिक परिमाणमें खाते देखे गये हैं कि चौबीस घण्टेमें ही इस लोकसे विदा भी हो गये हैं!!! कितने दुःखका विषय है। एक अंग्रेज लेखकका कथन है कि—

"Don't live to eat but eat to live."

अर्थात्—खानेके लिये यह जीवन मत समझो, बल्कि जीवनके लिये खुराक खाओ। यह मनुष्य जीवन खानेके लिये नहीं है बल्कि अपने बनाने वालेको पहिचाननेके लिये है। यह पहिचान बिना शरीरके रहे नहीं हो सकती; और शरीर बिना

खुराकके नहीं रह सकता। अतएव मनुष्यको खुराककी जरूरत है। पशुपक्षियोंको देखिये, वे प्रकृतिकी आज्ञाको उलङ्घन करते दृष्टि नहीं आते। उन्हें जो कुछ भी मिलता है, उसे वैसा ही खा लेते हैं, पीसते, कूटते, छानते, पकाते नहीं हैं। यहाँ यदि कह दिया जावे कि वे अज्ञानी हैं और हाथ पाँव आदि साधन उनके पास नहीं हैं तो यह उत्तर किसी अंशमें ठीक है। लेकिन तन्दुरुस्ती की दृष्टिसे उनका भोजन ठीक है। वे ठूँस ठूँसकर नहीं खाते, जब भूख लगती है तभी खाते हैं और भूख मिट जावे उतना ही खाते हैं। वे स्वादके लिये प्रकृतिके नियमको नहीं तोड़ते। शायद आप यहाँ यह प्रश्न करेंगे कि उनको सुस्वादु खुराक ही नहीं मिलती! खावेंगे क्या? ऐसा कहना भूल है क्योंकि बादाम, पिश्ता, किशमिश, सेब, अँगूर, अनार, नासपाती, अखरोट, अञ्जीर, आम, अमरूद, आदि अति स्वादिष्ट पदार्थ जिनके लिये हमलोग तरसा करते हैं, उन्हें प्रकृतिने मुफ्तमें ही प्रदान किये हैं। वे अपनी खुराक नहीं राँधते, बल्कि प्रकृति ही उनके लिये पका देती है। यह तो केवल मनुष्य जाति ही है, जो अपनी खुराकको प्रकृतिके पका चुकनेपर भी उसे पकाकर खाती है, और इस प्रकृतिके नियमको तोड़नेके दण्ड रूपमें बीमारियाँ प्राप्त करती है। जिस प्रकार मनुष्योंमें अमीर तो दिनमें ४।५ बार भोजन करते हैं और गरीबोंको दिनमें एक बार भी रूखी सूखी रोटियाँ मुयस्सर नहीं होतीं; यह बात पशुपक्षियोंमें नहीं है। इस तरहका भेद मनुष्य जातिमें

ही पाया जाता है। इतना होनेपर भी मनुष्य अपनेको पशु-पक्षियोंसे उत्तम और बुद्धिमान समझते हैं; यह कैसे आश्चर्य की बात है !!

हमारी खुराकको हम स्वादुयुक्त बनाये बिना गलेके नीचे नहीं उतार सकते। आज ही अगर दालमें थोड़ासा भी नमक कम हो, या चटपटापन न हो, तो हम कम खावेंगे और यदि अन्य दिवसोंकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वादु भोजन मिल गया तो अधिक खा जावेंगे। तात्पर्य्य यह है कि हम शरीर रक्षाके लिये अपनी खुराक नहीं खाते हैं बल्कि शरीरको नाश करनेके लिये खाते हैं। यदि आज ही हम अपनी खुराकको एकदम नमक मिर्च और मसाले रहित करदें तो एक दो ग्रास ही बड़ी कठिनतासे कण्ठके नीचे उतार सकेंगे! सारांश यह कि हम अपना भोजन स्वयम् ऐसा तय्यार कर लेते हैं जो कि जरूरतसे अधिक पेटमें पहुँच जावे और परिणाममें हमें रोगी बना दे। हमारी इस स्वादेन्द्रियकी स्वतन्त्रताके कारण ही हम असत्य भाषण, व्यभिचार, चोरी, ठगी, हिंसा आदि अनेक पाप करनेमें जरा भी नहीं सकुचाते! यदि हम अपनी स्वादेन्द्रियको अपने वशमें करलें तो हम अपनी शेष इन्द्रियोंको शीघ्र ही वशमें कर सकते हैं। यदि हम कोई बड़ा भारी पाप करते हैं तो वह सबसे पहिला यही है कि हम अपना भोजन सुस्वादु बनाकर खाते हैं—यही सब पापोंकी जड़ है। बहुतेरे नासमझ भाई जो इसके महत्वको नहीं समझते हमारे लिखने पर शायद हमें

गालियाँ भी दें, किन्तु यह मनन करने योग्य बात है, यह उन्हें नहीं भुला देनी चाहिये। हम चोर, व्यभिचारी, हिंसक, ठग, झूंठे आदिको ही पापी समझते हैं और सुस्वादु पदार्थोंके खाने वालेको बड़ा ही अच्छा समझते हैं, जो सब पापोंकी जड़ है—यह कैसे आश्चर्य्यका विषय है ? चोरी, व्यभिचार, झूंठ, हिंसा आदिके विरोधमें कई ग्रन्थ लिखे गये हैं किन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया जो स्वादेन्द्रियके कारण होने वाले दोषोंका दिग्दर्शन कराने वाला हो। न जाने हमारे महापुरुषोंने केवल "मनुष्यको मिताहारी होना चाहिये।" इतना ही लिखकर इस विषयमें चुप्पी क्यों साध ली ?

हमारे विचार कितने उलटे हैं ? हमारी कैसी औंधी समझ है ? कि हमने अपने कई दोषोंको भी अपना बड़प्पन गुण मान लिया है ? जिसके घरमें अच्छे सुस्वादु भोजन बनते हैं, वही बड़ा घर समझा जाता है—सुस्वादु भोजन करनेवाले ही बड़े आदमी हैं! सारांश यह कि आजकल बड़प्पन और छुटपन हमारी थालीके साथ हैं। व्यभिचारी, दूसरे व्यभिचारीको क्या कहे ? स्वादेन्द्रियका गुलाम, दूसरे स्वादेन्द्रियके गुलामको क्या कह सकता है ? किसीको इस विषयमें कुछ कहना तो दूर रहा बल्कि हम सुस्वादु भोजनोंको पाकर ही सच्चा आनन्द मानते हैं। यदि कोई हमारे घरपर अतिथि, मेहमान आवे तो हम उसे अपने यहाँका दैनिक भोजन खिलाना पाप समझ कर विशेष प्रकारका सुस्वादु भोजन कराते हैं! विवाहके समयमें,

तथा अन्य उत्सवोंमें स्वादके लिये अच्छे अच्छे पदार्थ बनाकर खाते हैं। यहाँ तक कि घरमेंका यदि कोई बड़ा बूढ़ा मर जावे तो उसके नाम पर नुकतेमें भी हम अपनी जबानको वशमें नहीं रख सकते। बारहों महिने त्योंहार बने ही रहते हैं, बिना मिठाइयोंके त्योहार कैसा? अड़ोसी, पड़ोसी, सगे सम्बन्धी, और इष्ट मित्रोंको न खिलावें तो शानमें बट्टा आजावे। उन्हें ठूंस ठूंस कर न खिलावें तो कंजूसोंमें गिने जावें! रविवारको अथवा अन्य पर्व दिनोंकी छुट्टियोंके दिन खानेसे अजीर्ण हो जानेमें कोई हानि नहीं। सारांश यह कि ऐसी ऐसी बुरी बातें भी आज हमारे समाजमें अच्छी मानी जा रही हैं!!!

खुराकके सम्बन्धमें हम यहाँ तीन भाग कर सकते हैं (१) जो केवल वनस्पति या उससे उत्पन्न वस्तुपर निर्वाह करते हैं। (२) जो वनस्पति भी और मांस भी खाते हैं और (३) जो केवल मांस पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। मनुष्य इन तीनों प्रकारकी खुराकसे अपनी जीवन-यात्रा चला सकता है। लेकिन यहाँ यदि विचारने योग्य बात है तो वह यही है कि "अच्छो से अच्छो, जो स्वास्थ्यके लिये हितकर हों, वह कौनसी खुराक है?" इसी कारणमें हम पीछे मांसके विषयमें लिख आये हैं जिससे यह प्रमाणित हो चुका है कि "मांस मनुष्यकी खुराक नहीं है।" रसायन शास्त्रके विद्वानोंका कथन है कि फलोंमें वे सभी तत्व मौजूद हैं, जिनकी कि मनुष्यके जीवन निर्वाहके लिये आवश्यकता है। हमें रसोई बनानेकी

आवश्यकता ही नहीं है—उस परम पिताने हमारे लिये विविध पदार्थ सूर्यतापसे पकाकर प्रदान किये हैं। केवल सूर्यतापसे पके हुए पदार्थ ही हमें स्वस्थ्य रख सकते हैं। रसायनज्ञोंका कहना है कि राँधने और पकानेसे वनस्पतिका सत्व नष्ट हो जाता है और उसकी पोषक-शक्ति निर्बल हो जाती है। वनस्पतिका मुख्य गुण चैतन्य देना होता है, किन्तु यह गुण उसे राँधनेसे सर्वथा नष्ट हो जाता है। इन लोगोंका तो यहाँ तक कहना है, कि जो वनस्पति राँधी गई है, वह हमारी खुराक ही नहीं है। यदि रसायन शास्त्रके पण्डितोंका उक्त कथन सत्य है, तो मनुष्य जाति बहुत कुछ झगड़ेसे छुट्टी पा जाती है। रसोई तय्यार करनेमें विविध दुःख, अपव्यय और वक्त खर्च होता है। वह सब बच सकता है! इस बातपर लोगोंको आश्चर्य होगा और वे कहेंगे कि यह बात स्वप्नमें भी सम्भव नहीं। यह सम्भव है या नहीं, इस विषयको लिखना हमारा उद्देश्य नहीं है। बल्कि यहाँ यह दिखाना है, कि अच्छी खुराक कौनसी है?

सबसे उत्तम खुराक फल है। फलाहारसे बढ़कर दूसरी कोई खुराक नहीं है। कोई फलाहारको अच्छा माने या न माने, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। अधिकांश लोग फलाहार नहीं करते, अन्न या मांस खाते हैं। इससे फलाहार की उत्तमतापर सन्देह नहीं किया जा सकता। सबसे पहिली और उत्तम खुराक फल ही है। प्रकृतिने हमें फलाहारी ही बनाया है। सूखे और गीले फलोंको ही अपनी खुराक समझना चाहिये।

उन्हें राँधकर या उबाल कर खानेसे उनका सत्व नष्ट हो जाता है। केले, नारङ्गी, अनन्नास, खजूर, अँगूर, सेव, नासपाती, आम, अमरूद, बादाम अखरोट, मूंगफली, खोपरा आदि फलोंमें जीवन निर्वाह करने योग्य सभी गुण हैं। योरोपमें फलाहार पर बहुतसे ग्रन्थ लिखे गये हैं। जुस्ट नामक एक जर्मन देशके रहनेवाले लेखकने फलाहार पर एक ग्रन्थ लिखा है, जिसमें उसने बहुतसे उदाहरणों और दलीलोंसे सिद्ध किया है, कि सबसे श्रेष्ठ खुराक मनुष्यके लिये फल है। उसने बहुतसे बीमारोंके रोग फलाहार कराके हटाये हैं। इस पुस्तकके लेखकने स्वयं १०५ दिनतक केवल फलाहार पर रहकर इसका अनुभव किया है। फलाहारसे बढ़कर दूसरी खुराक मनुष्यके लिये हो ही नहीं सकती—यह लेखकका अनुभव भी है। यद्यपि १०५ दिन इस विषयका ज्ञान सम्पादन करनेके लिये बहुत ही थोड़े दिन हैं तथापि बहुत कुछ अनुभव मुझे हुआ। फलाहारके दिनोंमें मुझे किसी प्रकारका रोग नहीं हुआ, पहिलेकी अपेक्षा मेरा स्वास्थ्य उत्तम हो गया। शरीर फुर्त्तीला, हलका और आलस्य शून्य हो गया। मुखपर तेज और कान्ति झलकने लगी। फलाहारके दिनोंमें मैंने अपनी बुद्धिको भी उन्नत दशामें पाया। दिमागी कार्य करनेकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी, कि मुझे स्वयम् आश्चर्य होता था। इन्हीं दिनों एक साप्ताहिक पत्रका सम्पादन करते हुए "स्वप्नदोष" पर एक उपयोगी पुस्तक लिख डाली। फलाहारकी दशामें मेरे इन मस्तिष्क सम्बन्धी कार्यों को

देखकर मित्रवर्ग मुझे आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखा करते थे। इतने पर भी तारीफ तो यह थी, कि थकान किसे कहते हैं, यह मैं बिलकुल नहीं जानता था। अब मैं अन्न खाकर उससे चतुर्थांश कार्य करने पर बहुत थक जाता हूं। फलाहारके दिनोंमें बिना निद्रा लिये लगातार ४ दिनतक कार्य करके भी मुझे थकान नहीं मालूम होती थी। रात्रिके समय ४ या ५ घण्टेसे अधिक निद्रा नहीं आती थी। इस पुस्तकके आरम्भमें आप लेखकका चित्र देखिये। वह १०५ दिन केवल फलाहार पर रहनेके बाद का है।

सारांश, यह कि फलाहार मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट खुराक है। बहुतसे लोग इसे बड़ा ही कष्टप्रद समझते होंगे परन्तु वैसा नहीं है। हाँ, ५ या ६ दिन तक शरीरको कुछ दुःख होता है बादमें उससे इतना आनन्द होता है, कि मनुष्य अन्नको भूल जाता है और अन्नके बने विविध मिष्टान्नोंको देखकर भी अन्न खानेकी इच्छा नहीं होती, यह लेखकका अनुभव है। दूसरोंके और अपने निजी अनुभवसे अभीतक यही निश्चय हुआ है, कि मनुष्यकी सबसे प्रथम खुराक फल हैं। जो अन्नको त्यागकर फलाहार करना चाहें, उन्हें चाहिये कि अन्नको धीरे धीरे घटा-कर उस जगह फल खाने लगें। एकदम अन्न छोड़कर फला-हार नहीं करना चाहिये।

दूसरे दर्जेकी खुराक मनुष्यके लिये वनस्पति है। इसमें शाकभाजी अन्न, द्विदल अन्न आदि समझने चाहियें। वन-स्पतिमें भी फलोंकी तरह सभी पोषक तत्व होते हैं। परन्तु जब

हम वनस्पतिको आँचपर पकाते हैं, तब उसके वे तत्व नष्ट हो जाते हैं। इतना होनेपर भी हमारी ऐसी आदतें पड़ गई हैं, वंशपरंपरासे ऐसे संस्कार पड़ गये हैं, कि हम वनस्पतिको बिना पकाये नहीं खा सकते। अन्नोंमें सबसे उत्तम अन्न गेहूं है। केवल गेहुओंपर ही मनुष्य अपना निर्वाह कर सकता है क्योंकि उसमें पोषक पदार्थ ठीक परिमाणमें हैं। गेहूँ शीघ्र ही पचनेवाला अन्न है, बशर्त्तेकी उसका छिलका नहीं हटाया गया हो! गेहूँकी तरह ही ज्वारी, मक्का, जौ बाजरी आदि अन्न भी हैं, किन्तु ये गेहूँकी बराबरी नहीं कर सकते। गेहूंकी अपेक्षा इन अन्नोंमें पोषक तत्वोंकी कमी है। ये अन्न भी जल्दी ही हज्म हो जाते हैं, क्योंकि इनमें चिकनाईका भाग कुछ कम है। गेहूँका आटा जिसे "मिलफ्लावर" के नामसे सब जानते हैं, बिलकुल सारहीन है। डाक्टर एलिन्सनने अपने एक कुत्तेको इस सफेद आटे पर ही रखा था—वह मर गया। दूसरा कुत्ता जिसे दूसरे ओटकी रोटी दी जाती थी, जिन्दा रहा। इन लोगोंको यह याद रखना चाहिये कि गेहूँके छिलकेमें ही स्वाद और शक्ति है, आटेको अत्यन्त महीन चलनीसे छानकर उसका चूर, नहीं निकाल देना चाहिये। मशीनोंसे पिसा हुआ आटा कदापि स्वास्थ्य प्रद नहीं हो सकता। अपने घरोंमें गेहुओंके कचरे कूड़ेको साफ करके पत्थरकी चक्कियोंसे पीसा हुआ आटा ही अच्छा होता है। आटेको पीसकर बिना छाने ही उसकी रोटियाँ बनाकर खानी चाहियें। ऐसी रोटियाँ बड़ी ही

स्वादिष्ट और बलदायिनी होती हैं। बाजारू रोटियाँ अथवा पूरियाँ प्रायः सफेद आटेकी होती हैं। ढाबोंमें और भठियारोंके यहाँ की रोटियाँ स्वास्थ्यको नष्ट कर डालती हैं। रोटियोंमें घृतकी जगह चरबी काममें लाते हैं। ऐसी रोटियाँ हिन्दू और मुसलमानोंके कामकी नहीं होतीं। बाजारू रोटियाँ खानेवाले कदापि दीर्घायु नहीं प्राप्त कर सकते।

अन्न खानेका सबसे उत्तम ढङ्ग तो यह है कि उसे बिल-कुल नहीं पकाया जावे और कच्चा ही खा लिया जावे। कच्चे अन्नको खानेवाला व्यक्ति कदापि अस्वस्थ्य, अशक्त, और अल्पायु नहीं हो सकता। लोग हमारे इस कथनकी शायद दिल्लगी उड़ावें, परन्तु यह पढ़ सुनकर ही विचार करनेका विषय नहीं है बल्कि अनुभव करनेका विषय है। गेहूँ आदि अन्नोंको जलमें उबालकर खाना उन लोगोंके लिये अच्छा है जो कच्चा अन्न नहीं खा सकते। गेहूंको मोटा मोटा दलकर थूली बनाकर खाना भी अच्छा है। अन्नको भुनाकर खाना भी अत्यन्त हितकर है। इसके बाद रोटियाँ बनाकर खाना भी ठीक है, किन्तु जो लोग पूरी आदि बनाकर खाते हैं उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। सारांश यह है, कि अन्नकी जितनी अधिक क्रियाएँ की जावेंगी, वह उतना ही गुरुपाक होता जावेगा और स्वास्थ्यका नाशकारी होगा। अतएव अन्न खाने-वाले यदि बिना राँधे ही अन्न खावें तो स्वस्थ्य, बलवान, और दीर्घजीवी अवश्य हो जावेंगे।

बहुतसे लोग अधिकतर चावल खाते हैं। जबतक चावल नहीं खा लेते तबतक उनका पेट ही नहीं भरता! यह अन्न सत्व हीन है। यदि चावलोंके साथ दाल, घी, शक्कर, दूध आदि पदार्थ नहीं खाये जावें तो मनुष्यका जीवन-निर्वाह इनपर नहीं हो सकता। हमारे :यहाँ बाजारोंमें छिलके निकले हुए चावल बिकते हैं हम लोग उन्हें खरीदकर खाते हैं। उन्हें पकानेके पहिले अच्छी तरह धो डालते हैं। उबालकर उसका पानी—माँड़ निकाल देते हैं। ऐसा करनेसे उनमेंका सत्व बिलकुल निकल जाता है—इस प्रकारके चावल खानेसे कुछ भी लाभ नहीं है। जापानवाले चावलको पकानेके पहिले ही कूटते हैं और बिना धोये ही उसे उबालकर खाते हैं। चावल खानेका यह ढंग किसी प्रकार अच्छा कहा जा सकता है।

चना, उड़द, तुवर, मौठ, मटर, मसूर, मूँग आदि अन्न देरमें पचनेवाले हैं। इनका पचाना गद्दीपर पड़े रहनेवाले महाशयोंका काम नहीं है। इन्हें तो श्रम करनेवाले मजदूर ही पचा सकते हैं। इनके पचानेके लिये पेटकी अग्नि तेज होनी चाहिये। हम देखते हैं, कि अधिकांश गृहस्थोंके यहाँ नित्य ही दाल बनाई जाती है। बहुतेरे घरोंमें तो दोनों वक्त दाल पकती है! यह दाल स्वास्थ्यके लिये बहुत ही हानिकारक हैं। इंग्लैण्डके डाकृर हेगने लिखा है कि "दाल बहुत ही बुरी वस्तु है। यह हमारे शरीरमें एक प्रकारका एसिड (विष) पैदा करती हैं, जिससे हमें विविध रोग हो जाते हैं। दाल खानेके कारण

जल्दी ही बुढ़ापा आता है।" इत्यादि। इस पुस्तकके लेखकका अनुभव है, कि दाल वास्तवमें देरसे हज्म होती है। वर्षमें २।४ वक्त जब कभी दाल खानेका मौका आता है, उसी दिन भोजन ठीक तरहसे नहीं पचता, खट्टी खट्टी डकारें आती हैं। शरीर भारी हो जाता है। सारांश यह है, कि दाल खाना स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं है। जिन्हें दीर्घायुकी इच्छा हो, उन्हें दाल खाना छोड़ देना चाहिये। बहुतसे लोगोंका कहना है, कि मूंग और मसूरकी दाल शीघ्र ही पचती हैं—यह हम भी मानते हैं कि अन्य दालोंकी अपेक्षा ये जल्दी पच जाती हैं परन्तु ये भी देरसे पचनेवाली जरूर हैं! कितने ही पाकशास्त्रियोंका कहना है, कि अमुक दालमें अमुक पदार्थ डालनेसे जल्दी हज्म हो जाती है, लेकिन यह केवल वाक्याडम्बर ही है, लोगोंको इस भुलावेमें नहीं पड़ना चाहिये। जो लोग दालके आदी हैं, वे यदि एकदम दाल खाना छोड़ नहीं सकते तो उन्हें खाते समय जरा विचार कर खाना चाहिये।

अब हमें यह देखना है, कि हमारी खुराकमें ऐसी क्या क्या वस्तुएँ हैं, जो स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचाती हैं। सबसे पहिले हमारी खुराकमें नमक एक ऐसी वस्तु है, जो स्वास्थ्यको हानि पहुँचानेवाली है। सभी लोग नमक खाते हैं--साँभरके नमकको अपवित्र समझकर छोड़ रखा होगा तो समुद्री या सेंधा नमक खाते होंगे। सारांश यह कि सब लोग नमक खाते हैं। प्रति सहस्र भी शायद ही एकाध नमक नहीं खाने वाला हो!

करोड़ों मन नमक खपता है, सरकार भी नमक टैक्सको बढ़ा रही है। इस सर्वव्यापक पदार्थके विषयमें हम यहाँ कुछ लिखने बैठे हैं—हमें बहुत ही कम आशा है, कि लोग हमारे इस लेखपर विश्वास करें या अमलमें लावें। नमक बड़ी बुरी वस्तु है। पेटको—जठराग्निको नमककी अवश्यकता नहीं है। हम लोग जबर्दस्ती उसे पेटमें डाल देते हैं। प्रकृति हमारी जबर्दस्ती नहीं चलने देती। वह पसीने, मूत्र, आँसू, कफ, आदि मलोंमें उस नमकको निकाल फेंकती है। नमकसे रक्त बिगड़ता है-स्वास्थ्यमें अन्तर आता है और आयु क्षीण होता है। विलायतमें नमकके विरोधमें एक संस्था कायम है, उसने नमकको बहुत ही खराब चीज बताया है। हमारे कई भाइयोंका ही क्या बल्कि हमारे वैद्यक ग्रन्थोंका भी दावा है कि नमकसे जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भोजन शीघ्र ही पचता है। इससे यह तो कदापि सिद्ध हो ही नहीं सकता कि नमक रोज मर्रा खाना चाहिये। जठराग्निको बिना नमकके ही प्रदीप्त रखना चाहिये और नमक डालकर भोजन पचानेकी आवश्यकता ही नहीं हो, ऐसा भोजन और परिणाममें भी उतना ही जितना पच जावे खाना चाहिये। खूब ठूंसकर और नमक आदि मसालोंसे भोजनको पचानेकी जरूरत ही क्यों हो? नमकको आयुर्वेदने पाचक अवश्य बताया है लेकिन वह तभी, जब कि अन्न पेटमें किसी कारणसे नहीं पचा हो। नित्य प्रति नमक खानेकी आज्ञा कोई भी वैद्यक ग्रन्थ नहीं दे रहा है।

नमक खानेसे ही विविध रोग उत्पन्न होते हैं। पेटकी बहुत सी बीमारियाँ नमकके कारण ही होती हैं। फोड़े फुन्सी, दाद, खाज, आदि चर्मरोग और रक्त-विकार शरीरमें नमकके कारण ही होते हैं। खाँसी, साँस, बवासीर, रक्तप्रवाह, सूजाक, उपदंश, प्रमेह, स्वप्न-दोष आदि बीमारियोंमें नमक छोड़ दिया जावे तो शीघ्र ही लाभ मालूम होने लगता है। एक अँग्रेज सज्जनने, जिन्होंने वर्षोंसे नमक छोड़ रखा है, एक समाचार पत्रमें नमक पर एक बड़ा ही उत्तम लेख लिखा था। उन्होंने लिखा था, कि नमक छोड़ देनेसे मेरा स्वास्थ्य बड़ा ही उत्तम रहता है, बुद्धि भी पूर्वापेक्षा प्रखर हो गई है, निद्रा कम आती है और नमक त्यागनेके पश्चात् मैंने कई नये नये यन्त्रोंका आविष्कार किया है। तात्पर्य यह, कि नमक छोड़नेसे किसीको किसी भी तरहका दुःख नहीं हुआ। जिन्होंने छोड़ा है, उन्हें बड़े बड़े लाभ हुए हैं। इस पुस्तकके लेखकका भी अनुभव है, कि नमक त्यागने योग्य वस्तु है, और इसके त्यागनेसे मनुष्य पर कुछ भी बुरा असर नहीं होता। नमक त्यागनेके एक हफ्ते तक तो नमक खानेके लिये जी चाहता है। बादमें इच्छा ही नहीं होती। जो लोग बिलकुल नमक नहीं खाते, उन्हें विष हानि नहीं पहुँचा सकता। जिसने बचपनसे नमक नहीं खाया हो और स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य नियमोंका भी अच्छी तरह पालन किया हो, उसे साँपके काटेका कुछ भी असर नहीं होता। जो मनुष्य नमक नहीं खाता, उसके रक्तमें विषको नष्ट कर

देनेकी शक्ति होती है। बिच्छू, बर्र, ततैया आदि विषधर प्राणी भी नमक न खानेवाले व्यक्तिका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। प्लेग, हैजा, कोढ़, खाज, चेचक, आदि छूतकी बीमारियाँ भी कुछ असर नहीं डाल सकतीं। नमक छोड़ देने पर प्यास कम लगती है, आलस्य नहीं होता। नमक छोड़नेवालेको दाल और शाकभाजी छोड़नी होती है। नमक अभ्यासियोंके लिये यह बात बहुत ही कठिन जान पड़ेगी; परन्तु बिना शाक भाजी छोड़े नमक छूट नहीं सकता। क्योंकि शाकभाजी, दाल इत्यादि गुरु पाक पदार्थ हैं। दालके विषयमें हम पीछे लिख आये हैं—शाक भाजी एक प्रकारकी घास है। परमात्माने हमारी आँतें घास पचाने योग्य नहीं बनाई हैं। घास पचाने-वाली आतोंकी रचना अलग ही ढङ्गकी है। गाय बैल आदि घास भोजी पशु ही उसे सहजमें पचा सकते हैं; मनुष्यकी आतोंको शाक भाजी पचानेमें मेहनत पड़ती है। पत्तेवाले हरे शाक मनुष्य कदापि जल्दी हजम नहीं कर सकता। इस-लिये नमक त्यागनेके साथ ही दाल, शाक भाजी भी त्यागनी पड़ेगी। जिस प्रकार नशेबाजको नशा छोड़नेमें पहिले पहल अनेक कष्ट जान पड़ते हैं, उसी तरह नमक छोड़नेमें भी आरम्भमें थोड़े दिनोंतक शरीर निर्बल सा हो जाता है। परन्तु इससे घबराकर नमक नहीं खा लेना चाहिये, बल्कि धैर्य पूर्वक अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहना चाहिये—इससे आगे चलकर बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता है।

नमकके वाद मिर्च, जीरा, धनिया, गरम मसाला आदि त्यागने योग्य पदार्थ हैं। ये पदार्थ हमारी खुराक नहीं हैं, तो भी हम इन्हें खाते हैं!! इन्हें क्यों खाते हैं? इसका उत्तर भी नमककी भाँति ही दिया जाता है कि "भोजन अधिक खाने और शीघ्र पचनेके लिये ही मिर्च मसाले खाते हैं।" मिर्च, धनिया, जीरा इत्यादिमें अग्नि उत्पन्न करनेका गुण है, इनके खानेसे विशेष भूख लगीसी मालूम पड़ने लगती है। वास्तवमें इन पदार्थोंसे पाचन-शक्ति बढ़ती नहीं है, बल्कि बढ़ती सी जान पड़ती है और अन्तमें बड़ा भारी नुकसान होता है! इन पदार्थोंके खानेसे यदि भूख लग आवे तो यह नहीं समझना चाहिये कि हमें वास्तवमें भूख लगी है—या पहला अन्न पचकर उत्तम रक्त बन गया है। जो लोग मिर्च मसाले बहुत खाते हैं, उनका पेट खराब हो जाता है। अधिक मिर्च (लाल) खानेवालोंकी आँखें खराब हो जाती हैं और अन्धे भी हो जाते हैं। इन चटपटे मसालोंसे संग्रहणी, अतिसार, अर्श, आदि रोग हो जाते हैं। मसाले वीर्यको उत्तेजना देकर उसे खराब कर डालते हैं। तेज मसाले खानेवालेको वीर्य सम्बन्धी बीमारी अवश्य होती है। बहुतसे लोगोंका कहना है, कि मिर्चके साथ घी खानेसे उसके अवगुण नष्ट हो जाते हैं। ऐसे लोगोंकी इन अज्ञानयुक्त बातोंपर हँसी आती है—हम यह पूछते हैं कि मिर्चें खाई जावें और फिर घी खाकर उसके दोषोंको नष्ट किया जावे, इसकी जरूरत ही क्या है? विष खाकर उसे निकालनेकी कोशिश

करना बुद्धिमानीका काम नहीं कहा जा सकता! वास्तवमें देखा जावे तो अधिक अन्न खानेके लिये मिर्च मसाले डालकर उसे स्वाद बनाते हैं और आवश्यकतासे अधिक खा जाते हैं। ऐसे लोग ईश्वरके चोर हैं—अपना भाग न खाकर दूसरोंका हिस्सा भी जबरदस्ती नमक मिर्चसे चटपटा बनाकर चट कर जाते हैं। यही कारण है कि हमारे देशमें अन्न महँगा होता जा रहा है और लाखों गरीब प्रतिवर्ष अन्न न मिलनेके कारण मृत्यु पा रहे हैं। इन दीन दुखियोंकी मृत्युका उत्तरदायित्व हम चटपटे स्वादयुक्त भोजन करनेवालोंके सिर पर है—यह बात इस कानसे सुनकर उस कान निकाल देनेकी नहीं है। हम अकेले ही अपने भोजनको स्वाद बनाकर इतना अपने पेटमें ठूंस लेते हैं, जितना कि तीन आदमियोंके पेटको भर सकता था! बड़े आदमियोंके रसोंई घर हमारे इस कथनके अधिक जिम्मेवर हैं! परमात्मा प्राणियोंके लिये उनके पेट भरने योग्य सामग्रियाँ देता है, कभी कम या ज्यादः नहीं देता। कुदरतकी सरकारमें किसी प्रकारकी गड़बड़ नहीं है। हमें इच्छासे अथवा अनिच्छासे उसके नियमोंको पालना ही पड़ता है। हम यदि उसके नियमोंको समझ कर चलें, तो एक दिन भी हमारे घरमें भूख अपना डेरा नहीं जमा सकती। जब कि खाद्य पदार्थ प्राणियोंके लिये प्रकृतिने अन्दाजसे ही उत्पन्न किये हैं तब उसमेंसे अगर कोई अधिक खाजावे, या न खानेकी चीज भी खा जावे, तो औरोंको लिये अवश्य ही कमी

पड़ेगी और परिणाममें कोई न कोई भूखा मरकर अकाल मृत्यु पावेगा ही। यह बात अटल है। अब यदि हम अपने पदार्थोंको स्वाद बनाकर प्रकृतिके दिये हुए हमारे भागसे अधिक खा जाते हैं तो हम प्रकृतिके नियमको तोड़कर अपने दूसरे भाईका प्राण हरण करते हैं। भूलिये मत, जितना अन्न हम स्वादके लिये खाते हैं, वह कच्चा पारा है, किसी न किसी रूपमें वह फूट निकलेगा। हमारा स्वास्थ्य खराब हो जावेगा और हम दुखी हो जावेंगे। हमारे इतने लिखनेका तात्पर्य यह है कि मिर्च मसाले हमारी खुराक नहीं हैं—केवल अन्नको सुस्वाद बनाकर उसे अधिक परिणाममें खाने और पचानेके लिये हम मसाले खाते हैं। हम भारतवासी जितना मिर्च मसाला खाते हैं, उतना किसी भी दूसरे देशके निवासी नहीं खाते !! हमारा मसाला, अगर हम अफ्रीकाके हवशियोंको खानेके लिये दें तो शायद ही खा सकें !! कितने आश्चर्य्यकी बात है, कि हम भारत जैसे सभ्य देशके रहनेवाले मिर्च मसालोंके स्वादमें फँस कर बर्बाद हो रहे हैं। स्वास्थ्य खो रहे हैं और अल्पायु हो रहे हैं !!!

शक्कर भी हम लोगोंकी खुराकमें है। हमारे बहुतसे भाई तो मिठाई इतनी ज्यादः खाते हैं कि उसके सामने दूसरी खुराक नाम मात्रको ही कही जा सकती हैं। भारतवर्षमें मिठाई एक बड़ी ही उत्तम खुराक समझी जाती है। विवाह शादी, उत्सव त्योहार, नुकते, आतिथ्य सत्कार बिना मिठाईके हो नहीं सकते। देवताओंके प्रसाद बाँटनेमें और

भावतामें मिठाई जरूर होनी चाहिये। वह भले ही गुड़ क्यों न हो? अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करनेके लिये प्रेम प्रदर्शनार्थ हम बच्चोंके हाथमें मिठाई देते हैं। अतएव जिसका ऐसा प्रचार हो, और जिसके बिना भोजन ही उत्तम नहीं समझा जावे, उस मिठाई पर भी थोड़ा बहुत यहाँ विवेचन होना जरूरी ज्ञात पड़ता है। शक्कर, गुड़, और शहद ये तीन चीजें मुख्य हैं—इनसे ही मिठाइयाँ बनती हैं। देशमें आजकल शक्करके दो भेद हैं, एक विदेशी और दूसरी बनारस या स्वदेशी। इनमेंसे पहिली शक्कर स्वास्थ्यको बिगाड़ने तथा विविध रोगोंको उत्पन्न करने वाली है। विदेशी समझकर हमने इसके विषयमें ऐसा लिख दिया है, ऐसा समझना भूल है। वास्तवमें यह विघातक और भयङ्कर रोगोंकी जननी है।* जो लोग स्वदेशी शक्कर खाते हैं, वे स्वास्थ्यरक्षा कर सकते हैं। इस विषयमें भी सावधानी की जरूरत है, क्योंकि बहुतसे धूर्त्त व्यापारी, विदेशी शक्करमें गुड़ प्रभृति मिलाकर उसका रङ्ग बदल देते हैं और बनारस शक्करकी जगह लोगोंको बेचते हैं। ऐसे नीचोंसे हमें सावधान रहना चाहिये।

मिठाई खानेवाले व्यक्ति कदापि स्वस्थ नहीं रह सकते।

---

* विषयान्तर हो जानेके भयसे हम शक्कर पर अधिक नहीं लिख सक्ते। जिन्हें पूर्णज्ञान प्राप्त करना हो, वे मेरी लिखी हुई 'भारतमें दुर्भिक्ष' नाम्नी पुस्तकका विदेशी खांड प्रकरण पढ़ लें। उक्त पुस्तक किसी भी अच्छे पुस्तक विक्रेताके यहां से १) रु० में प्राप्त हो सकती है। लेखक—

मिठाई स्वास्थ्यका शत्रु है। जहाँ कहीं हमारे भोजनमें मिठाई रखी जाती है, वहाँ हम सबसे पहिले मिठाई भर पेट खाते हैं। जब उससे पेट ठसाठस भर जाता है और एक रत्ती भर भी मिठाई खानेकी इच्छा नहीं रहती, तब हम नमकीन पदार्थोंको खाते हैं। इस तरह हम इतना खा जाते हैं, कि हाजमेकी गोली खाने तककी जगह पेटमें नहीं रहने पाती। जो लोग बाजारू मिठाइयाँ खाते हैं—हलवाइयोंके दोने चाटते हैं, वे कदापि दीर्घायुषी नहीं हो सकते। जिन्हें हमारे कहनेमें विश्वास न हो, वे एक दिन भर किसी हलवाईकी दूकानपर बैठकर देख लें। मिठाई बनानेमें वे ऐसी शक्करका मैल भी उबाल डालते हैं जिसमें सैकड़ों मक्खियाँ, मकोड़े, चींटियाँ, बर्रे, ततैये आदि पड़े होते हैं। जिस घृतमें वे मिठाइयाँ बनाते हैं, वह बदबूदार, सम्भवतः चर्बी मिला हुआ होता है। ऐसी मिठाइयाँ खाकर कौन तन्दुरुस्त रह सकता है? अधिक मिठाई खानेसे कोठा खराब हो जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है, दाँत कमजोर पड़ जाते हैं और वीर्य सम्बन्धी कोई भयङ्कर रोग हो जाता है। मिठाईके चटोरे प्रायः चोर, जुआरी, व्यभिचारी, झूठ बोलनेवाले और दुराचारी हो जाते हैं। हमारे देशमें बहुतसे बच्चोंकी मृत्यु इस मिठाईके कारण ही होती है—अज्ञानी मा बाप प्रेमके कारण मिठाई खिला खिलाकर उन्हें मृत्युके मुखमें डाल देते हैं। तात्पर्य यह है, कि मिठाई सब तरहसे हमारा नाश करने-वाली है। अतएव, यह त्याज्य वस्तु है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि मिठाई खानी चाहिये या नहीं? इसका उत्तर यही है कि रक्त शोधनार्थ अधिकसे अधिक ५ तोला शक्कर एक मनुष्यके लिये एक दिन भरमें काफ़ी हैं। फल भोजियोंको शक्कर अथवा नमककी आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रकृतिने फलोंमें लवण, शर्करा, आदि सभी मनुष्य-जीवनके योग्य तत्व रख दिये हैं। इसी तरह वनस्पतिमें भी नमक, शर्करा आदि तत्व उचित प्रमाणमें प्रकृतिने रखे है, इतने पर भी यदि मनुष्य मीठा खाये बिना नहीं रह सकता तो एक तन्दुरुस्त व्यक्तिको अपनी तन्दुरुस्ती ठीक रखनेके लिये एक छटाँकसे अधिक शक्कर नहीं खानी चाहिये। कोरी शक्कर कदापि लाभदायक नहीं है। इसलिये किसी वस्तुके साथ ही खानी चाहिये। पानीमें घोलकर शर्बत बनाकर पीनेवालोंकी जठराग्नि मन्द हो जाती है—आँव हो जाती है। यदि कहीं मिठाई खानेका मौका आ जावे तो बहुत सोच समझकर खानी चाहिये। जिस प्रकार मिर्च मसाले वगैरः खानेमें भारतवर्ष अन्य देशोंकी अपेक्षा बढ़ा है, उसी तरह मिठाई खानेमें भी यह पृथ्वीपरके समस्त देशोंमें अव्वल नम्बर है। अन्य देशोंमें भी लोग मिठाई खाते हैं, किन्तु कम मीठा और बहुत कम परिमाणमें खाते हैं। भारतवर्षकी तरह शक्करमें लतपत और ठूंस ठूंसकर नहीं खाते। हमें हमारे मिठाई-सेवनमें शीघ्र ही सावधान होकर अपने स्वास्थ्यको सुधार लेना चाहिये।

गुड़ भी रक्त शोधक और उष्ण प्रकृति पदार्थ है। भारतमें

गरीब प्रजा प्रायः गुड़से ही अपनी मिठाईकी गरज पूरी करती हैं। गुड़ खानेवाले लोग, बाजारू मिठाई खाने वालोंसे सैकड़ों गुण अच्छे हैं। गुड़में क्षार भाग अधिक रहता है। इसलिये यह पेटमें विकार पैदा करता है। गुड़ भी शक्कर की भाँति बहुत ही कम खाना चाहिये। मिठाई खानेका भी यही मतलब है कि किसी तरह अन्न पेटमें अधिक पहुंच जावे। "हमारा रक्त शुद्ध होगा।" इस दृष्टिसे मिठाई खाने वाले लोग हमारे देशमें बहुत ही कम निकलेंगे।

हम पीछे शहद्को भी मिठाईमें गिन आये हैं। शक्कर और गुड़से यह अति उत्तम वस्तु हैं। आजकल बाजारोंमें नकली मधु भी बिकता है, अतएव बहुत जाँच पड़तालके बाद ही शहद लेना चाहिये। वसन्त ऋतुका मधु अत्यन्त गुण दायक और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। शहद महँगी वस्तु भी नहीं है, वगरियों, भीलों और जङ्गली लोगोंसे पवित्र, शुद्ध, और सस्ता शहद प्राप्त किया जा सकता है। जैनी लोग मधुको अपवित्र समझते हैं, लेकिन हमारे विचारसे यह शक्करसे अपवित्र नहीं है— आप स्वयम् विचार देखिये। जो लोग शक्कर नहीं खाते और शहद्से ही अपनी मिठाईकी गरज पूरी करते हैं, वे सदैव स्वस्थ, मोटे, ताजा, बलवान और दीर्घजीवी होते हैं। गुजराती भाषामें "मधु अनेतेनो उपयोग" नाम्नी एक छोटी सी पुस्तक है, उसमें शहद विषयक बहुत सी बातें लिखी हैं। जो लोग अपने बच्चोंको मोटे ताजा, और दीर्घजीवी बनाना चाहें उन्हें चाहिये शक्कर

या उससे बनी हुई मिठाई तथा गुड़ न खिलाकर शहद खिलाया करें। शहद खानेवाले बच्चे मोटे, ताजे, बुद्धिमान, और दीर्घजीवी होते हैं। जिनके बालक नहीं जीते हों, उन्हें चाहिये कि अपने बच्चोंको मधु सेवन करा देखें। हमारे दीर्घायु चाहने वाले पाठकोंको एकदम मिठाई छोड़कर उसके स्थानमें यथावश्यक शहद प्रयोग आरम्भ कर देना चाहिये।

दूध यद्यपि पेय पदार्थ है, तो भी हम इसे खुराकमें ही लेंगे; क्योंकि केवल दूधपर ही मनुष्य वर्षों जीवित रह सकता है। इसमें शरीरके पोषक तत्व अच्छे परिमाणमें हैं। दूधके बराबर उत्तम पदार्थ इस भूलोकमें दूसरा नहीं है। इसके महात्म्यमें हमारे ग्रन्थोंके असंख्य पृष्ठ रँगे हुए हैं। दुग्ध, मृत्यु लोकका अमृत है और इसीके लिये गऊको माता कहते हैं। यद्यपि यह बात बिलकुल सही है, कि दुग्ध अमृत है तथापि इस वर्त्तमान समयमें बात उलटी हो गई है। अमृत विष हो गया है। आज हमारे देशके दुधारू पशु केवल दूध पीनेके लिये रखे जाते हैं, उनके स्वास्थ्य तथा आहार विहारकी बिलकुल परवाह नहीं की जाती। देशकी करोड़ों गौएँ वधिकोंके हाथ मर चुकी है, अब जो कुछ बची खुची हैं, वे बिना सार सँभारके मरती जा रही हैं। कलकत्तेमें ग्वालोंका गोपालन देखकर निर्दयता भी रो देगी। इसी प्रकार देशमें घूम फिरकर देखनेसे पता लगता है, कि लोग दुधारू पशुओंका और खास करके गौओंका पालन अच्छी तरहसे नहीं करते। बैलोंको आप मोटे-ताजे देखेंगे

उनकी सार सँभाल होती पावेंगे, लेकिन बैलोंको उत्पन्न करने वाली गौएँ क्षय, रोगी और हीन दशामें दृष्टि आवेंगी। प्राचीन कालमें गौओंका आदर था, वे उन्नत दशामें थीं, तभी उनका दूध अमृत भी था। महाभारत ग्रन्थमें एक कथा है, कि एक राजा एक ऋषिको अपना समस्त राज्य अर्पण करने लगा। लेकिन उसने राज्य लेकर राजाको क्षमा नहीं किया बल्कि उससे एक गऊ लेकर उसे क्षमा कर दिया। जिस समय गऊका ऐसा मान था, उसी समय दुग्ध भी अमृत था। आज कलका गोपालन गायोंका वंश नाश कर रहा है। यही कारण है कि एक डाक्टरने तो यहाँतक लिख दिया है कि "दूध से कालज्वर उत्पन्न होता है।"

इस बातको सभी जानते हैं कि माताके स्वास्थ्यका, उसके खानपानका असर उसके दूध पीनेवाले बालक पर तत्काल ही होता है। बच्चेके लिये जो औषधि देनी होती है, वह उसे न देकर उसकी दूध पिलानेवाली माताको दी जाती है। हमारे इस लिखनेका आशय पाठक समझ ही गये होंगे। हमारी गौओंको भरपेट चारातक भी नसीब नहीं है। गोचर भूमि कोई नहीं छोड़ता, टेक्स और करोंके मारे नाकमें दम है। अपने खानेके लिये ही अन्न नहीं प्राप्त होता, भला गौओंके लिये दाना कहाँसे आवे! धनी लोग बाजारसे दूध लाकर खा सकते हैं, उन्हें गऊ पालनेकी जरूरत ही नहीं। कुत्ते पालना, बिल्लियाँ पालना, हमारे बड़े आदमियोंको अच्छा लगता है। ग्वाले निर्धन होते

हैं, वे गायोंको दाना नहीं दे सकते, अतएव गायें विष्ठा, लीद आदि मैले पदार्थोंको खाती हैं। नमक नहीं मिलनेके कारण पेशाब पीती हैं। सड़ी गली घास खाती हैं, गन्देसे गन्दा पानी पीती है। अब कहिये, ऐसी गौओं और भैंसोंका दूध आप अमृत कहेंगे या विष? पशु-चिकित्साका ज्ञान न होनेके कारण गोपालक उनके रोगोंको नहीं जान सकते और उन रोगी पशुओंका दूध निकालकर काममें लाते हैं। प्रतिशत ९९ गौएँ हमारे उक्त कथनानुसार मिलेंगी। ऐसी गौओंका दूध पीकर कौन स्वस्थ रह सकता है। वर्षा आरम्भ होते ही साल-भर अच्छा खुराक न मिलनेके कारण हजारों गौएँ उठान आकर अकाल मृत्यु पा जाती हैं। ऐसी गौओंका ही हम दूध चूसते रहते हैं।

जब तक दुधारू पशुओंके स्वास्थ्यकी रक्षा न हो, तब तक उनका दूध पीना व्यर्थ है। लाभ होनेके बजाय उससे उलटे हानि होती है। जो बीमारियाँ पशुको होती हैं, वे उनका दूध पीनेवालेको अवश्य होंगी। क्षय रोगसे पीडित गऊका दूध पीकर मनुष्य क्षयसे कदापि नहीं बच सकता! बिलकुल तन्दु-रुस्त गायका मिलना कठिन है। जिन दिनों श्रीमान् पञ्चम जार्ज महोदय विलायतसे यहाँ दिल्ली दरबारके लिये तशरीफ लाये थे, उन दिनों उनके लिये स्थान स्थानपर अच्छी जातिकी गौएँ तीन महीने पहिलेसे ही अच्छे अच्छे पौष्टिक पदार्थ खिला-कर, दूध पिलानेके लिये रखी गई थीं। उन्हें उत्तम घास और

खूब दाना दिया जाता था। खुली हवा और शुद्ध प्रकाशमें रखा जाता था। हफ्तेमें एक बार उन्हें स्नान कराया जाता था, इत्यादि अनेक तरहकी सेवा सुश्रूषा द्वारा रखी हुई गौओंका दुग्ध श्रीमान् पञ्चम जार्जको पीनेके लिये दिया जाता था। यहाँ कोई कहे कि उनकी बराबरी नहीं हो सकती, वे तो राजाधिराज हैं इ०।" किन्तु स्वास्थ्यरक्षाके लिये न तो कोई राजा है और न कोई गरीब है—इस विषयमें सब समान हैं। जितनी राजाको स्वास्थ्यरक्षाकी जरूरत है, उतनी ही एक गरीबको भी है। प्रकृतिकी सरकारमें राजा और रङ्कका भेदभाव नहीं है। वहाँ सब समान हैं। तात्पर्य यह कि स्वस्थ्य पशुका दुग्ध पीकर ही मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। जिस दूधके पीनेसे स्वास्थ्य नष्ट हो, ऐसा दूध पीना मूर्खता है। हमें यदि अमृत समान दूध पीनेकी इच्छा है, तो पहिले हमें हमारे दुधारू पशुओंके दूधको दोष रहित बनाना चाहिये। उत्तम पशुओंका उत्तम दूध पीनेसे ही स्वास्थ्य उत्तम रह सकता है। आजकलका दूध हमें बलवान, पुष्ट और दीर्घायु नहीं बना सकता। पाखाना और लीद खानेवाली, मूत पीनेवाली, गन्दा और सड़ा पानी पीकर गली सड़ी घासपर जीवन व्यतीत करनेवाली, एक दुर्बल कमजोर गऊका दूध पीकर हम पुष्ट नहीं हो सकते। हमें दूध पीकर पुष्ट होना है तो अपने घरमें गौएँ पालकर ही उनका दुग्ध सेवन करना चाहिये या जिन गौओंका अच्छे ढङ्गसे लालन पालन होता हो उनका दूध पीना चाहिये।

हम लोग दूध जैसे उत्तम पदार्थको अपनी लापरवाहीसे दिनोंदिन नष्ट कर रहे हैं और गोपालनको भार समझ कर गोवंशके नष्ट होनेमें सहायक बन रहे हैं। इधर हम भारत-वासियोंकी, जहाँ पर कि गौएँ माता गिनी जाती हैं, और जिन्हें स्वर्गदायिनी माना है, यह हालत है तो उधर विलायत-वाले गोपालन इस ढङ्गसे कर रहे हैं कि हमें बड़े ही आश्चर्य सागरमें डूबना पड़ता है। देखिये कोलमना (कनाड़ा) में एक गऊ है, उसके विषयमें "प्रताप" कानपुर अपने १६ जोलाई १६२३ के अङ्कमें लिखता है—

"यह गऊ एक सालमें १६८० पौण्ड (२१ मन) घी और ३०८८६ पोण्ड (३८६ मन) दूध देती है। एक दिनमें ३०० आदमियोंने उसका दूध पिया है। इसका मूल्य ३२८०००) रु० (एक लाख डालर) है। यह गऊ इतनी सीधी है कि एक दस वर्षीया बालिका उसे रेशमके डोरेसे अन्दर लाती ले जाती है।"

हमारी कामधेनुकी कथाओंको सुनकर जो लोग उन्हें कोरी गप्प समझा करते हैं, उन्हें यह सम्वाद ध्यानसे पढ़ना चाहिये। विदेशोंमें ऐसी बहुतसी गौएँ हैं जो बहुत दूध देनेवाली हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने हम भारतवासियोंको मुरली बजा बजाकर गोदोहन सिखाया था, परन्तु हम तो "जै गोपाल" और "जै वंसी वालेकी" में ही रह गये और अमेरिका निवासी गोदोहनके समय अपनी गायोंको वंसीकी मीठी तान सुनाकर

उनका दूध दूहकर पीने लग गये। वंशीकी ध्वनिसे गौएँ बड़ी ही खुश होती हैं और दूध उत्तम और बहुत देती हैं। सारांश यह कि हमारी खुराक दूध है अवश्य किन्तु वर्त्तमान दूध जो बाजारोंमें मिलता है, सर्वथा त्याज्य है। यह दूध रोगोंका घर है और मनुष्यको अल्पायु बनाने वाला है। जब तक हमारे दुधारू पशुओंका उत्तम रीतिसे पालन न हो तबतक हमें दूध पीना छोड़ देना चाहिये।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि यदि दूध छोड़ दिया जावे तो उसकी जगह किस वस्तुके सेवनसे उतना ही लाभ हो सकता है। शक्ति देनेका जो गुण दूधमें है, वह बहुत सी चीजोंमें है। बादामकी मींगीको जलमें भिगोकर उनका छिलका निकाल दो—बादमें उन्हें पीसकर पानीमें एक रस कर लो। इसमें दूधके सारे गुण होते हैं और दूधमें पैदा होने वाली खराबियाँ नहीं होतीं। दूधमें तुरन्त ही हवाके जन्तु गिर जाते हैं और उसमें बढ़कर स्वास्थ्यके लिये बहुत ही हानि पहुँचाते हैं।

बहुतसे लोग कहते हैं कि दूध मनुष्यकी खुराक नहीं है। उनका कहना है कि "प्रकृतिने जबतक हमें दाँत नहीं दिये थे, तब तक हम दूधके अधिकारी थे किन्तु उसने दाँत देकर हमें इस बातकी सूचना दी है कि, अब से तेरी खुराक दूध नहीं है। बछड़ोंको देखिये दाँत आनेपर जब घास चरने लग जाते हैं तब दूध फिर उम्र भर नहीं पीते। प्रकृतिने पशुओंके नीचे

दूध हमारे लिये नहीं बनाया है बल्कि उसके बच्चेके लिये उत्पन्न किया है। यह हमारी अनधिकार चेष्टा है कि हम उसके बच्चेका भाग खुद पी जावें और उसे भूखा मरने दें, या घास चारे से लगादें। कुछ लोगोंका कहना है कि दुधारू पशु गाय और भैंसके चार स्तन इस बातको सूचित करते हैं कि दो स्तन उसके बच्चेके लिये हैं और दो उसके पालनेवालेके लिये हैं। यह प्राकृतिक नियम नहीं है—बकरीको देखिये दो बच्चे देती है और थन भी दो होते हैं—चार नहीं होते। सुअरी १२ बच्चे देती है, उसके २४ थन नहीं होते इत्यादि। ऐसी बातें तो केवल दूध पीनेके लिये बहाना मात्र है।"

जो कुछ भी दूधके विषयमें हम जानते थे वह पाठकोंके आगे ला रक्खा था। दूध पीना चाहिये या नहीं? इसका उत्तर हमारे पाठक इसको पढ़कर स्वयम् सोच लें। हम अपनी तरफसे कुछ भी नहीं लिखना चाहते। जो कुछ भी लिखना था, पीछे लिख आये हैं। बहुतसे मादक पदार्थ भी हम लोगोंकी खुराक बन गये हैं अतएव इनके विषयमें भी हमें यहाँ विचार करना पड़ेगा।

हमारे भारतीय बन्धु अधिकांश मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं। यह उनकी खुराक है—ऐसे लोगोंको अन्न आदिकी उतनी परवाह नहीं होती जितनी कि इस मादक पदार्थके व्यसनकी होती है। मादक पदार्थोंमें मुख्यतः शराब, अफीम भाँग, गाँजा, चण्डू, चरस, कोको, चाय, काफी, तम्बाकू आदि

वस्तुएँ लोग खाते पीते हैं। नशा करनेकी हरेक धर्ममें मनाही होते हुए भी लोग खाते पीते हैं। इसके लिये शायद ही कोई आज्ञा दे। शराबसे कुटुम्बके कुटुम्ब नष्ट हो गये, हजारों घर बरबाद हो गये। शराबीको नशेमें अपनी माता और पत्नीका कुछ भी ध्यान नहीं रहता! मोरियोंमें—गटरोंमें पड़े हुए अपनी इज्जतको बरबाद कर देते हैं। उनके मुखपर कुत्ते मूतते हैं। इस प्रकार शराबी पृथ्वीपर भाररूप हो, अपना जीवन व्यतीत करता है। शराबी हमेशा सुस्त और निर्बल रहता है—अनेक रोग उसे आ घेरते हैं और अकाल-मृत्यु पाता है। बहुतसे लोगोंका कहना है कि शराब दवाके रूपमें ली जा सकती है परन्तु इसकी आवश्यकता ही क्या है? पहिले बहुत सी बीमारियोंमें शराब दवाके रूपमें दी जाती थी लेकिन अब वह बिलकुल बन्द हो गई है। शराबी लोग अपना दोष छुपानेके लिये ही दवाका बहाना ढूँढ़ते हैं। परन्तु जरा सोचना चाहिये कि संखिया दवामें काम आती है किन्तु उसे कोई दैनिक खुराक नहीं बना लेता! कदाचित शराब किसी बीमारीमें लाभदायक हुई हो परन्तु जितना इससे नुकसान होता है, उसके सामने लाभका होना न होनेके बराबर है। भले ही शराब किसी दृष्टिमें लाभदायक वस्तु हो लेकिन यह अत्यन्त बुरी और त्याज्य खुराक है। स्वास्थ्य और दीर्घायु इसकी बदबूसे ही नष्ट हो जाते हैं।

अफीमका नशा शराबसे भिन्न प्रकारका है, किन्तु इससे

होनेवाले दोष शराबसे किसी प्रकार कम नहीं है। जो लोग अफीम खाते हैं, उनकी दशापर ध्यान देनेसे उसके दोष अच्छी तरहसे मालूम हो जाते हैं। अफीम खानेवालेका मुहँ काला, स्याह हो जाता है! मुखकी कांति नष्ट हो जाती है। आँखें पीली और भीतर घुस जाती हैं। जिन्हें अफीमखानेकी आदत पड़ जाती है, उनसे बिना अफीम खाये कुछ भी काम नहीं होता। अफीमसे अग्निमांद्य हो जाता है—दस्त साफ नहीं होता। हमारे देशमें प्रायः बूढ़े मनुष्य इसे खाने लगते हैं, जिससे उनका शरीर बिलकुल निकम्मा हो जाता है। इसकी आदत पड़ जानेपर इसको छोड़ना कठिन हो जाता है। हमारी मूर्ख माताएँ अपने नन्हें नन्हे बच्चोंको उनके रोनेसे घबराकर अफीम खिलाती हैं; बच्चे उसके नशेमें सुस्त होकर पड़े रहते हैं। यह बहुत ही बुरी बात है। इससे कई बच्चोंकी मृत्यु हो जाती है। जिन बच्चोंको बचपनमें अफीम खिलाई जाती है, उनके ज्ञान-तन्तु नष्ट हो जाते हैं और बुद्धिका विकास बन्द हो जाता है। अफीम शराबसे किसी बातमें कम नहीं है। अफीमकी वशवर्त्तिनी चीनी प्रजा स्वतन्त्र होते हुए भी सुस्त और निर्बल हैं। इस अफीम और पोस्तके कटोरेमें हमारे कई बड़े बड़े जागीरदार आज भिखमंगे बन गये हैं। जिन्हें दीर्घ जीवन तथा उत्तम स्वास्थ्य की इच्छा हो, उन्हें अफीम खानेवालेकी सङ्गतिमें भी नहीं बैठना चाहिये।

भाँग भी बड़ा बुरा नशा है। इसे बड़े बड़े सभ्य कहाने

वाले लोग भी बूँटी, ठण्डाई नामसे खाते पीते हैं। भाँग कहते उन्हें भी लज्जा आती है। इसको पढ़े लिखे और समझ-दार कहलाने वाले लोग भी पीते हैं। अतएव भय है, कि हमारे लिखने पर सम्भवतः उन्हें बुरा लगे। परन्तु किसीके भयसे सत्य बातको छुपाना भी विश्वासघात है। इस भङ्गने भारतकी बुद्धिको भङ्ग कर दिया! महात्मा गान्धीजीने अपनी "आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान" नाम्नी पुस्तकमें भाँगको शराबके साथ साथ लिखा है। भाँग पीनेवालेकी बुरी दशा होती है, बोलने चालने-की सुधि जाती रहती है। अपने जीवनका बहुत सा समय सोनेमें खो देता है। मुँह तेजोहीन होकर शरीर सुस्त और कम-जोर हो जाता है। भाँगका नशा दूर होते ही शरीर मिट्टी जान पड़ता है। जठराग्नि कम हो जाती है और वीर्यदोष हो जाता है। बहुतसे अज्ञानियोंने "इसे शङ्कर सेवन करते हैं।" कहकर अपने देवताके नामको कलङ्कित कर रखा है। यद्यपि लोग इस बातको किसी भी शास्त्रसे प्रमाणित नहीं कर सकते कि "शङ्कर इसे सेवन करते थे या करते हैं।" तो भी अपनी भङ्गकी तरङ्गमें अपनी ही बातको सिद्ध करनेकी मूर्खता करते रहते हैं। कुछ भी हो, हमें इन बातोंसे कुछ प्रयोजन नहीं। हमें केवल यहाँ यही लिखना है, कि भाँग हमारी खुराक नहीं है, इसे स्वप्नमें भी नहीं सेवन करना चाहिये। इससे आयु और स्वास्थ्य धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं। लोग यदि कहें, कि इससे क्षुधा प्रदीप्त होकर शरीरमें नवीन रक्त उत्पन्न होता है,

तो आप कदापि उनकी इस मीठी बातमें न फँसें। क्योंकि भाँग पीने वालोंकी अग्निप्रदीप्त और शरीरमें बल सा मालूम होता है; किन्तु वास्तवमें भङ्गसे अग्निमांद्य और उदर सम्बन्धी कई रोग हो जाते हैं।

गाँजा भी भाँगका भाई बन्धु ही है। इसके पीनेवालेका कोठा जल जाता है। फेफड़े खराब हो जाते हैं। मुखसे अत्यन्त बदबू आती है। भाँग, गाँजा पीनेवाले पागल तक हो जाते हैं। व्यभिचारी, चोर, झूठे, निन्दक, परछिद्रान्वेषी भाँग गाँजाके सेवन करनेवाले प्रायः देखनेमें आते हैं। सज्जनोंका तथा अच्छी बातोंका विरोध करना, ये लोग अपना मुख्य धर्म मानते हैं। गाँजा पीनेवाले भी इसे शङ्करके नामपर दूषण लगाते हुए सेवन करते हैं। इस भँगेड़ी समुदायने अपनी प्रशंसाके कई श्लोक और छन्द आदि बना रखे हैं। उन्हें सुनकर लोगोंको उनका दोष रहित होना नहीं मान लेना चाहिये। ऐसे लोग अपना ऐब छुपानेके लिये ही अच्छी अच्छी कविताएँ बना लेते हैं और शास्त्रों तकमें उन्हें घुसेड़कर अपने पक्षका मण्डन करते हैं। पाठकोंको इन नाशकारी नशोंसे बचकर स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त करना चाहिये।

चण्डू-मदक और चरस, ये दोनों अफीम और गाँजे के ही रूपान्तर हैं। इनके लिये इतना ही लिखना बस है, कि ये अफीम और गाँजेसे भी बुरे हैं। तम्बाकू एक बहुत ही बुरी वस्तु है, किन्तु इसका साम्राज्य इतना बढ़ गया है, कि उसे

हटानेमें बड़े ही परिश्रम और समयकी आवश्यकता है। राव, रङ्क, छोटे बड़े, मूर्ख विद्वान, सभी इसके चक्ररमें आ गये हैं। आजकल इसने इतना आदर पाया है, कि आगन्तुक मेहमानोंके आतिथ्य सत्कारमें भी यह काम आने लगी। इसके प्रचारमें कमी नहीं होकर नित्यप्रति वृद्धि ही हो रही है। मामूली बुद्धिके लोग या यों कहिये कि अधिकांश लोग जानते भी नहीं हैं कि बीड़ी, सिगरेट बनानेवाले व्यापारी उसकी बनावटमें सैकड़ों युक्तियाँ करते हैं, जिससे कि लोग तम्बाकूके व्यसनमें फँसते ही रहें और उनका माल धड़ाधड़ खपता रहे। बीड़ी सिगरेटवाले जर्देमें अनेक प्रकारके सुगन्धित तेजाब छिड़कते हैं, संखिया और अफीमका पानी डालते हैं। इस प्रकारसे तय्यार किये हुए जर्देकी बनी चुरुट, बीड़ी, सिगरेट, हमपर अपना अधिक प्रभाव जमाते हैं। कई कम्पनियोंके सिगरेटोंमें पारा मिलाया हुआ पाया गया है और कितनोंहीमें और भी कई दूसरे पदार्थ! तात्पर्य यह, कि तम्बाकू सेवन करने योग्य वस्तु नहीं है।

हिन्दुओंके पुराणोंमें तो इसकी उत्पत्ति ही गोरक्तसे मानी है! इतने पर भी अफसोस और शर्मकी बात है कि सनातन-धर्म नामधारी, और शिखाधारी हिन्दू इसको ग्रहण करके अपनेको पवित्र ही समझते हैं!! विदेशोंमें इसकी रोकका प्रबन्ध हो रहा है परन्तु भारतमें अभी तक लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित ही नहीं हुआ है। यदि कोई तम्बाकूका विरोध

करनेके लिये उठता है तो बदमाशोंका एक बड़ा भारी दल उसका सामना करनेके लिये तैयार होता है। ऐसा मौका इस पुस्तकके लेखकके साथ कई बार आया है। धर्मके लिहाजसे ही नहीं, बल्कि धनके लिहाजसे भी, इस व्यसनने देशका इतना धन फूँक दिया कि जिसका आँकड़ा बाँधा जाना भी असम्भव है। तम्बाकूके सेवक दुराचारी भी हो जाते हैं—बच्चे अपने घरसे या किसी दूसरेके पैसे चुराकर तम्बाकू पीते हैं। कैदी लोग जेलमें बड़ी जोखम उठाकर भी चुराई हुई बीड़ीको छुपा रखते हैं। किसी व्यक्तिसे पीनेके लिये बीड़ी माँगनेमें किसी प्रकारकी लज्जा नहीं होती—इसके लिये भीख माँगनी पड़ती है। तम्बाकू पीनेवाले इतने ज्ञान शून्य हो जाते हैं कि हर कहीं, दूसरोंके घरोंमें, देवालयोंमें, पवित्र स्थानोंमें भी बिना इजाज़तके ही चुरुट जलाने लगते हैं और दिलमें जरा भी नहीं शर्माते। नाटक घरोंमें, सभा भवनोंमें, बड़े बड़े कारखानोंमें, बीड़ी सिगरेट पीनेकी मनाही होती है लेकिन लोग उनके नियमोंकी कुछ भी पर्वाह नहीं करते। हम उदाहरणार्थ यहाँ यह दिखलाते हैं कि रेलमें तम्बाकू पीना जुर्म है। देखिये—

"Any person smoking without the consent of his fellow-passengers, in a compartment or in a carriage not specially provided for the purpose is liable to a fine which may extend to Twenty

Rupees. Any person who persists in so smoking after being warned to desist may be removed by any Railway servant from any such carriage and from the premises of the Railway (See 110 of Railway Act.)

यद्यपि रेलके डिब्बेमें विना साथियोंकी आज्ञाके तम्बाकू पीनेवाले पर २०) रु० जुर्मानेका विधान रेलवे एक्टमें है, तथापि हम देखते हैं कि यह एक्ट पुस्तकमें ही है, कोई भी इसकी पर्वाह नहीं करता। तात्पर्य यह कि इसके पीनेवाले ज्ञान शून्य हो जाते हैं, उन्हें इसकी धुनमें भला बुरा कुछ भी नहीं सूझता !! बीड़ी चुरुट पीनेवालेको यदि कुछ समयके लिये बीड़ी तम्बाकू न मिले तो वे किसी कामके नहीं रहते। स्वर्गीय टाल्सटायने लिखा है कि—

"एक मनुष्यने अपनी स्त्री का खून करनेका इरादा किया। उसने छुरी निकाल ली, मारनेको तय्यार हुआ, अन्तमें पछताकर पीछे हट गया। फिर चुरुट पीने बैठ गया, उसके विषसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और उसने उठकर अपनी स्त्रीको छुरी मारकर मार डाला।"

उक्त महाशय तो यहाँ तक लिखते हैं कि "तम्बाकू एक ऐसा सूक्ष्म नशा है कि वह कितने ही अंशमें शराबसे भी बुरा माना जाना चाहिये।" डाक्टर आर० टी० ट्राल एम० डी० लिखते हैं—"मेरी सम्मतिमें वह मनुष्य जो तम्बाकू सेवन

करता है कदापि पति या पिता बननेके योग्य नहीं है। अपनी स्त्रीके सामने इस प्रकार वेश्या और निर्लज्ज होनेका उसे कुछ भी अधिकार नहीं है, और अपने बच्चोंको निर्बल, तथा चिर-रोगी बनानेका भी उसे कोई हक नहीं है। शराबसे भी अधिक भयानक और नवयुवकोंमें अधिक प्रचलित तम्बाकू सेवनकी आदत है। तम्बाकू सेवनसे जो चुस्ती मालूम होती है, अन्तमें वह उसके सेवन करनेवालेको मिट्टीमें मिला देती है।"

डाक्टर अल्नस साहबका कहना है कि—"तम्बाकू सेवन करनेवालोंको पाण्डुरोग हो जाय और उनका रुधिर सूख जावे तो कोई आश्चर्य नहीं। तम्बाकूसे अजीर्ण होता है—रक्त सूख जाता है और शरीर काँटासा हो जाता है। रुधिर ही जीवनका कारण है, जिसके कम होनेसे निर्बलता होकर यदि क्षय बन बैठे तो आश्चर्य ही क्या?"

डाक्टर एडवर्ड साहब लिखते हैं—"तम्बाकूसे मृगी, स्वर-भङ्ग, जीर्णज्वर, छाती और सिरमें दर्द, कम्पवात, शिरोविभ्रम, अजीर्ण, नाड़ीव्रण, उन्माद आदि कई रोग हो जाते हैं।"

डाक्टर ब्राउन साहब कहते हैं—"तम्बाकू पीने या सूँघनेसे मन्द-दृष्टि, शिरः शूल, मूर्छा, अफरा, निर्बलता, गलापड़ना, कम्पवायु, भूतोन्माद, तथा कई ऐसे ही रोग होनेका भय है।"

डाक्टर कार्न एम० डी० लिखते हैं कि—"तम्बाकूके साथ शराबका ऐसा सम्बन्ध है, जैसा कि दिनके साथ रातका।"

डाक्टर काविन साहिब लिखते हैं—"रोगोंको पैदा करनेवाली बहुत सी आदतोंमेंसे शराब और तम्बाकूकी टेव मुख्य है। ... जो शराब और तम्बाकू पीते हैं, उनसे कदापि विवाह मत करो यह मेरा, मेरी बहिनोंको उपदेश है।...सुस्ती, रोगोंका होना, बुरी हालत रहना, शोक, अचानक मृत्यु, जिगर और फेफड़ोंके रोग, तम्बाकू और शराब पीनेवालोंके साथ छायाकी तरह रहते हैं। बहिनो! यदि आमरण अविवाहित रहनेका मौका आवे तो सहर्ष रहो, लेकिन तम्बाकू और शराब पीनेवालेके साथ कदापि अपना विवाह सम्बन्ध मत होने दो।"

न्यूयार्क (अमेरीका) की तम्बाकू विरोधिनी सभाने प्रकाशित किया है कि—"तम्बाकू खाने पीनेसे थूककी वे थैलियाँ सूख जाती हैं जिनमें कि थूक बनकर तय्यार होता है। इस कारण तम्बाकू सेवनके बाद अन्य किसी मादक द्रव्यके पान करनेकी इच्छा होती है।"

डाक्टर अलसनने लिखा है कि—"तम्बाकू मुखके थूकको सुखा देती है और जब प्यास लगती है तब किसी नशेदार पेयको पीकर तृष्णा शान्त करनेकी इच्छा होती है।"

आयुर्वेद महामहोपाध्याय श्री० शङ्करदासजी शास्त्रीने अपनी "आर्यभिषक" पुस्तकमें लिखा है कि—"तम्बाकू सेवनसे मनुष्यको बहुत हानि होती है लेकिन वह समझमें नहीं आती। तम्बाकू खानेसे मुखमें बदबू उत्पन्न हो जाती है और दाँतोंको हानि पहुँचती है। बलगम उत्पन्न होता है, आँखोंको हानि

होती है और पित्त भड़कता है। छातीमें कफ पैदा होता है और कलेजा जल जाता है।"

धार्मिक दृष्टिसे मादक पदार्थोंका सेवन प्रत्येक धर्ममें मना है। पुराणोंमें इसे गोरक्तसे उत्पन्न बताकर पौराणिकोंके लिये निषेध है। जैनियोंके धर्म-ग्रन्थोंमें तमाकू सेवन पाप है। आठवें पोप आवर्त और नवें पोप अनफेएटने तम्बाकूके विरुद्ध कठोर नियम बनाये हैं अतएव ईसाई धर्ममें तम्बाकू सेवन धर्म नहीं है। तुर्किस्तान और बर्लिनमें तमाकू सेवन एक बड़ा भारी पाप है। पारसी धर्ममें इसका सेवन पाप माना गया है। सिक्खोंमें तो तम्बाकू छूना भी बड़ा भारी पाप माना है। लिखनेका तात्पर्य यह, कि तम्बाकू, जिसका कि पृथ्वीपर इतना प्रचार है, अत्यन्त बुरी तथा आर्थिक, धार्मिक और आयुर्वेदीय दृष्टिसे अस्पृश्य एवं त्याज्य वस्तु है। भारत-वर्ष जैसे उष्ण देशमें तम्बाकू हमारे देशवासियोंके स्वास्थ्यको बर्बाद कर रही है। नये नये रोगोंकी सृष्टि करके मौतके मुखमें डाल रही है। वीर्य सम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करनेवाली यह तम्बाकू ही है। यदि स्वास्थ्यरक्षा करना चाहते हो तो सबसे पहिले तम्बाकू आदि मादक पदार्थोंका सेवन छोड़ो।

यद्यपि चाय, काफी, कोको प्रभृति मादक पदार्थ हैं किन्तु इन्हें खराब ठहराकर लोगोंको समझा देना असम्भव है। लोग भले ही मानें या न मानें परन्तु ये वस्तुएँ दूषित अवश्य हैं। आश्चर्यकी बात है कि चाय आदि पदार्थोंका हमारे उष्णदेशमें

भी इतना अधिक प्रचार हो गया, कि मेहमानी और मित्रता भी आजकल चायकी पत्तियोंमें ही समाई हुई है। कोई मेहमान आया या दोस्त मिला, तुरन्त ही चायके एक प्यालेसे उसका सत्कार किया जाता है! चायकी पार्टियाँ दी जाती हैं! लार्ड कर्जनके जमानेसे तो चायने हमारे देशमें खूब अच्छी तरहसे पञ्जा जमा लिया है। यदि चायमें दूध और शक्कर न डाली जावे तो उसमें पोषक तत्व बिलकुल नहीं हैं। चाय एक प्रकारका नशा है किन्तु इसे बाप बेटे खूब आनन्दसे निर्लज्जता पूर्वक पीते हैं। मातापिता अपने बालकोंको जबरदस्ती पिलाते देखे गये हैं। लोग कहते हैं कि इससे शरीरमें गर्मी रहती है, सर्दीके दिनोंमें पीनेसे जुकाम, बुखार वगैरः का भय नहीं रहता। इसके पीनेसे शरीरमें फुर्ती रहती है इत्यादि। ये सब बातें पीनेके लिये गढ़ी गई हैं। परन्तु थोड़े वर्षों पहिले जब हमलोग चायको जानते तक भी नहीं थे तब क्या लोग रातदिन जुकाम, बुखार और सुस्तीमें ही पड़े रहते थे? हमारे पूर्वज धन्य थे, जिनके समयमें तम्बाकू चाय, काफी, कोको आदि निकृष्ट पदार्थोंका यहाँ नामोनिशान भी नहीं था। हमलोग इतने अविद्याके चङ्गुलमें फँसे हुए हैं कि बिना अपना हानि-लाभ विचारे ही पश्चिमीय लोगोंकी देखादेखी बुरी से बुरी वस्तुको भी काममें लाने लगते हैं।

जितना प्रचार चायका हुआ उतना काफी और
नहीं हुआ। इसका कारण यह है, कि हमारे भाग्यसे ये

महँगे हैं, परन्तु बड़े बड़े घरोंमें इनका अधिक आदर सत्कार होता है। चाय एक प्रकारका नशा है, क्योंकि जिन्हें इसका व्यसन हो जाता है, उनसे फिर यह छूट नहीं सकती। और समय पर यदि नहीं मिले तो वे किसी कामके नहीं रहते—मुर्देसे हो जाते हैं। चायसे पाचन-शक्ति खराब हो जाती है, सिर दर्द होने लगता है, मुँह पीला पड़ जाता हैं, संग्रहणी और अतिसार हो जाता है, निर्बलता हो जाती है। चायके व्यसनीका वीर्य पतला पड़ जाता है। इंग्लैण्डके वेटरसी म्यूनीसिपैलिटीके डाक्टरने बड़े अनुभवके बाद यह बात जानी है कि "उसके मुहल्लोंमें हजारों स्त्रियोंके ज्ञान तन्तु चाय पीनेके कारण खराब हो गये हैं।" लोग भले ही मानें या न मानें किन्तु इतना तो निश्चय है कि चाय, काफी, और कोको मनुष्यके समीपवर्त्ती पक्के शत्रु हैं। इन्हें सेवन करके कोई भी व्यक्ति आरोग्य और दीर्घायुकी आशा स्वप्नमें भी न करे।

चायकी जगह यदि आप चाहें तो दूधमें खौलते समय तुलसीके २ पत्ते डालदें—आगसे नीचे उतार कर उन पत्तोंको दूधमें मसल दें। यह चायसे भी उत्तम गुण रखनेवाला पेय है। चायके भक्त इसे आजमा कर देखले। महात्मा गान्धीजी अपनी "आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान" नाम्नी पुस्तकमें लिखते है कि—"गेहुओंको खूब साफ कर लेना चाहिये। फिर उन्हें कढ़ाईमें डाल कर आगपर सेंकिये, जब वे अत्यन्त सुर्ख होकर

कुछ कुछ काले पड़ जावें, तब उन्हें साधारण बारीक (काफीकी चक्कीमें) दल लेना चाहिये। इस दलियेको एक चम्मच भर लेकर उसमें खौलता हुआ पानी डाल दीजिये; यदि इसे एक मिनिट तक चूल्हे पर रखा जावे तो बहुत ही अच्छा होगा। यदि इच्छा हो तो आवश्यकतानुसार दूध शक्कर मिलाकर, नहीं तो वैसे ही पी सकते हैं। यह चाय, काफी और कोकोकी गरज पूरी करेगा। इससे पैसा भी बचेगा और तन्दुरुस्ती भी बचेगी। यह अत्यन्त पुष्टिकारक है और चाय तथा काफीके स्वादसे इसका स्वाद भी बहुत कुछ मिलता है।

चाय, काफी और कोको अधिकांश शर्त्त बन्धोंके बन्धनमें फँसे हुए हमारे भारतीय मजदूरोंकी मेहनतसे पैदा होते हैं। जहाँ ये पैदा होते हैं वहाँके मजदूरोंके साथ जैसा अन्याय होता है, उसे यदि हम अपनी आँखोंसे देख लें, तो हम इन चीजोंका स्वप्नमें भी नामतक न लेवें। इनपर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गये हैं। हिन्दी भाषामें "प्रवासी भारतवासी" नामकी पुस्तक पढ़-कर इस विषयका ज्ञान सम्पादन किया जा सकता है। तात्पर्य यह कि चाय, काफी और कोको सब तरहसे त्याज्य वस्तुएं हैं।

खुराक कितनी बार और कितनी खानी चाहिये? इस विषयपर विचार करनेकी भी जरूरत है। इसमें डाक्टरोंके अलग अलग विचार हैं। शारीरिक श्रम करने वाले जिस खुराकको पचा सकते हैं मानसिक श्रम करनेवाले उस

खुराकको कदापि नहीं पचा सकते। यह बात एक मानी हुई है, कि सबल और निर्बल मनुष्यकी खुराकका वजन बराबर नहीं हो सकता। बलवान व्यक्ति दिनमें कई बार खाकर भी अपनी खुराक हज्म कर सकता है, परन्तु दुर्बल एक बार खाकर भी अच्छी तरह नहीं पचा सकता। स्त्री और पुरुषोंके आहारमें भी अन्तर है। स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम खाते हैं। बड़ों और बच्चोंके आहारमें भी भेद होता है। ऐसी स्थितिमें खुराकका परिमाण बता देना कठिन बात है।

एक डाक्टर महाशयने शरीरके वजन परसे खुराकका वजन बताया है। यह बात भी कुछ अनुचित सी ही जान पड़ती है। डाक्टरोंका कहना है कि निन्यानवे प्रतिशत मनुष्य आवश्यकतासे ज्यादा खुराक खा लेते हैं। इसका कारण हमारे मसालेदार स्वादुयुक्त पदार्थ हैं। वास्तवमें मनुष्यको अपनी अपनी पाचनशक्तिके अनुसार अपनी खुराक कायम करनी चाहिये। इसमें डाक्टर, वैद्य, हकीम और पण्डितोंकी सम्मति लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। नमक मिर्चसे रहित, साधारण खुराकको अपनी जठराग्निमें पचाकर अपनी खुराकका अन्दाज लगा लेना चाहिये। जिस प्रकार अधिक भोजनसे स्वास्थ्य नष्ट होता है, उसी तरह अल्प भोजनसे भी मनुष्य निर्बल हो जाता है। हमें हमारी खुराकके लिये, देश और कालका ध्यान रखना भी बहुत जरूरी है। कई स्थान ऐसे होते हैं, जहाँ अग्नि मन्द पड़ जाती है और कई स्थान ऐसे हैं जहाँके जल-वायुसे अग्नि

प्रदीप्त हो जाती है। शीत ऋतुमें अग्नि प्रदीप्त रहती है तो वर्षा और ग्रीष्ममें मन्द हो जाती है।

सबसे पहिली बात तो हमें यह याद रखनी चाहिये, कि हमें अपनी खुराक खूब चबाकर खानी चाहिये। यह दीर्घायुका मूल मन्त्र है। खुराक खूब चबाकर खानी चाहिये—यह आज्ञा निम्न वेद-मन्त्र भी दे रहा है—

"यद्गिरामि सं गिरामि समुद्रइव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य संगिरामो अमुं वयम्।"

अथर्व ६। १३५। ३

अर्थात्—"जो कुछ वस्तु मैं खाता हूं, उसे वैसे पचा लेना चाहिये जैसे समुद्र पचा सकता है। (अमुष्य) उस पदार्थके (प्राणान्) जीवन तत्वोंको (संगीर्य) चबाकर (अमुम्) उसको (सम्) विधिपूर्वक (वयम्) हम (गिरामः) खावें।" तात्पर्य यह कि खुराक खूब चबाकर खानी चाहिये। चबानेका तात्पर्य दो चार दांत मारनेसे नहीं है बल्कि खुराक-को इतना चबाना चाहिये कि वह मुखमें घुलकर बिलकुल थूक बन जावे। इस तरह चबाकर खाई हुई वस्तु अत्यन्त पौष्टिक, गुणदायक और स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। जिन्हें हमारे इस कथनमें सन्देह हो, वे पहिले अपनेको तौल लें और हमारे लिखे मुआफिक एक महीने चबाकर खानेके बाद अपनेको तौलें तो अवश्य ही शरीरका वजन बढ़ जायगा। थूकमें पाचन करनेकी शक्ति है। अतएव अपनी खुराकमें थूक खूब मिल जावे इस

बातका ध्यान रखना चाहिये। जो लोग अपनी खुराकको कम चबाकर खाते हैं वे लोग दाँतोंका काम आँतोंसे लेते हैं। आँतोंका काम केवल इतना ही है, कि खुराकको पचाकर उसका रस बनादें। आँतोका काम उसे फोड़ना, कूटना, पीसना, या कुचलना नहीं है। आँतें सिर्फ खुराकको मथकर उसमेंसे सार भाग ग्रहण करके शेषको मल बना देती हैं। यदि आप बिना चबाये किसी अन्नको खालेंगे तो वह पाखानेमें ज्योंका त्यों निकल आवेगा। इससे सिद्ध होता है कि आँतोंका काम केवल रस निकालनेका है, न कि चबानेका। इसलिये हमें चाहिये कि हम अपनी खुराकको इतनी चबाकर आँतोंको दें कि उन्हें कुछ भी परिश्रम न हो और वे सहजहीमें उत्तम रस निकाल कर शरीरको दे सकें। बड़े बूढ़े लोग कहा करते हैं कि अन्नको ३२ दाँतोंसे खाना चाहिये अर्थात् कमसे कम बत्तीस बार चबानेके बाद ही ग्रासको गलेके नीचे उतारना चाहिये। चबाकर खानेवालेको कम खुराक ही उतना बल प्रदान करती है जितना कि बिना चबाये, लोग खाकर प्राप्त करते है। जो लोग खूब चबा चबाकर खाते हैं, उनका दस्त दुर्गन्ध रहित, चिकना, सूखा, बँधा हुआ, थोड़ा और काले रंगका होता हैं। जिनका ऐसा दस्त न हो उन्हें समझना चाहिये कि पेटमें उत्तम पाचन नहीं होता है। दस्तसे भी अधिक या कम खुराकका अन्दाज लगाया जा सकता है। परिमाणसे अधिक खानेवालेको अच्छी नीन्द नहीं आती, बुरे स्वप्न आते

हैं, और प्रातःकाल नींदसे उठनेपर जिह्वाका स्वाद बिगड़ा हुआ रहता है। बहुतसे लोगोंके श्वासोच्छ्वासमें बदबू रहती है, ये सभी अधिक खुराक खानेकी निशानियाँ हैं।

जो लोग अधिक खाते हैं, उनके मुँह पर फोड़े फुन्सी, मुहाँसे, कीलें आदि हो जाती हैं। रक्त बिगड़ जाता है, उदर सम्बन्धी अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। खट्टी खट्टी डकारें आती रहती हैं। शरीर सुस्त रहता है, पाद बहुत आता है, पेट भारी रहता है और दर्द करता रहता है। पेटका बोलना भी अधिक खुराकको सूचित करता है। जिन लोगोंकी ऐसी हालत हो, उन्हें यह समझ लेना चाहिये, कि हमारा पेट बिगड़ गया है और हम बीमार हैं। जिन्हें अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनी हो, उन्हें दावतें और ज्योनारोंकी बातें नहीं करनी चाहियें। हमें हमारे पेटके चार भाग करके दो हिस्से भोजनके लिये, एक हिस्सा जलके लिये, और एक हिस्सा श्वासोच्छ्वास-की क्रियाके लिये खाली रखना चाहिये।

हमारे पूर्वजोंने हम अधिक भोजियोंके लिये उपवास, रोजे, आदि मुकर्रर कर दिये हैं। उपवास स्वास्थ्यके लिये बड़ी ही आवश्यक वस्तु है। प्रति सप्ताह एक दिन अवश्य उपवास करना चाहिये। उपवासका अर्थ सिवाय जलके कुछ भी नहीं खाना है। फलाहार, कलाकन्द खाना, दूध पीना, शर्बत ठण्डाई पीना उपवास नहीं है। ऐसे उपवास कभी नहीं करने चाहियें; क्योंकि इनसे स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। उपवासका अर्थ

लङ्घन है—लंघनोंसे ही लाभ होता है! एक अंग्रेज प्रति सप्ताह उपवास करता था। जिससे उसने १०० वर्षसे अधिक आयु पाई। आज कल उपवास-चिकित्सा द्वारा बड़े बड़े रोग हटाये जाते हैं और उपवासपर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गये हैं। आरोग्यके लिये उपवासकी बड़ी ही आवश्यकता है। वर्षाऋतुमें हिन्दू लोग एक बार ही खानेका व्रत लेते हैं, यह बड़ी ही अच्छी बात है। इस बातमें आरोग्यता भरी हुई है। जब हवामें नमी होती है और सूर्य नहीं दिखाई पड़ता, तब जठराग्नि मन्द हो जाती है—अतएव ऐसे ऋतुमें जरा सोच समझकर ही खाना अच्छा है!

कितनी बार खाना चाहिये, अब इस विषयपर यहाँ विचार करना चाहिये। हिन्दुस्थानी लोग, मजदूरोंको छोड़कर प्रायः चौबीस घण्टोंमें केवल दो बार ही खाते हैं। अंग्रेज लोग दिनमें कई बार भोजन करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। अब तो अमेरिका और इंग्लैंण्डमें ऐसी सभाएँ स्थापित हो गई हैं जो मनुष्योंको दो बारसे अधिक भोजन करनेके लिये रोकती हैं। इस विषयपर डाक्टर ड्यूईने एक उपयोगी पुस्तक भी लिखी है। भोजन प्रातःकाल १० और ११ बजेके भीतर ही कर लेना चाहिये और सायंकालको ७ और ८ बजेका समय ठीक होता है। सुबह बहुत जल्दी और रात्रिको बहुत देरसे भोजन नहीं करना चाहिये। खास करके रात्रिका भोजन देरसे नहीं करना चाहिये क्योंकि निद्रितावस्थामें जठराग्नि भी शिथिलता पूर्वक

कार्य करती है। जो कुछ भी खाना हो, दो ही वक्तमें खा लेना चाहिये। भोजनके पश्चात् दिन भर मुहँ चलाते रहनेसे स्वास्थ्य खराब हो जाता है—पाचन शक्ति कम हो जाती है। दिनभर कुछ न कुछ खाते रहनेकी आदत बहुत ही बुरी है--यदि ऐसी आदत पड़ गई हो, तो उसे शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये। भोजन नित्य एक ही समयपर करना चाहिये। एक दिन नौबजे, दूसरे दिन दस बजे और तीसरे दिन १२ बजे इस प्रकार नहीं खाना चाहिये। भोजनके बाद काममें लग जाना चाहिये। सोना, दौड़ना, गाना, इत्यादि ठीक नहीं है। लोगोंको भोजन—खुराकके विषयमें अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये; क्योंकि स्वास्थ्य और दीर्घायु इसीपर अवलम्बित हैं।
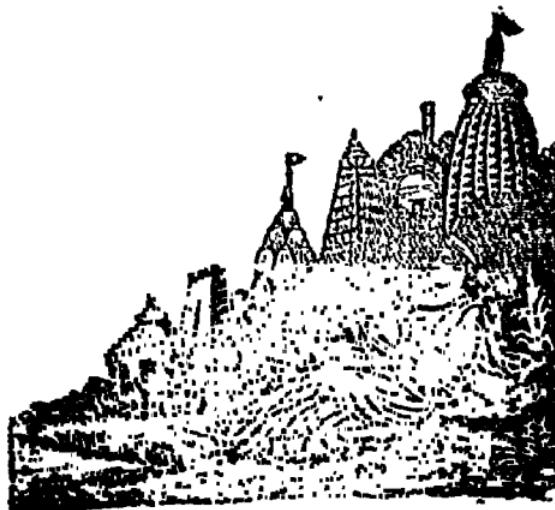
वस्त्राभूषण

जिस तरह खुराक पर हमारी आरोग्यता निर्भर है, उसी तरह वस्त्रोंसे भी हमारे स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज कल लोग वस्त्र अपने स्वास्थ्यके लिये नहीं पहनते हैं, बल्कि फेशन और शोभाके लिये पहिनते हैं। बहुतसे लोग गर्मोंके दिनोंमें इतने कपड़े लादे फिरते हैं, कि जाड़ेके दिनोंमें भी उन्हें पहिननेसे शायद पसीना आ जावे। बहुतसे महीन कपड़ेके शौक़ीन पौष और माघके खूब जाड़ेमें भी मलमलका कुरता पहिनकर इधर उधर अपना फेशन दिखाते फिरते हैं। यद्यपि इस तरहके महीन वस्त्रोंमें लोग ठिठुर कर ठाकुर बन जाते हैं तथापि मोटे वस्त्र नहीं पहिनते क्योंकि फेशनमें बट्टा आता है!! बाजारमें जितने भी वस्त्र मिलते हैं, उन सबोंमें अधिकतया फेशनसे ही भरे हुए हैं। स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टिसे अधिकांश वस्त्र नहीं बनाये जाते हैं। फेशन नहीं बिगड़नी चाहिये, स्वास्थ्य भले ही बिगड़ जावे। हड्डी और चर्बीका कलप शरीरको स्पर्श करके विविध रोग उत्पन्न करता है। रङ्गीन कपड़े भी स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकारक होते हैं, क्योंकि रङ्ग प्रायः ऐसी वैसी वस्तुओंसे ही तय्यार होते हैं। आज संसार फेशनके लिये लाखों रुपये व्यर्थ ही खर्च रहा है

लेकिन स्वास्थ्यके लिये कुछ पैसा लगाना लोगोंको अच्छा नहीं लगता। एक आदमी कपड़ेवालेकी दूकान पर जाकर अपने पहिननेके लिये कपड़े खरीद रहा है—उसमें उसे खूबसूरतीका ध्यान रहेगा। खूबसूरत वस्त्रके लिये कुछ अधिक पैसे भी दे डालेगा, किन्तु उस वस्त्रसे स्वास्थ्यको हानि होगी या लाभ—इस बातका उसके दिलमें खयाल तक भी नहीं होगा।

विदेशी स्त्रियाँ शोभाके लिये ही इस तरहके कपड़े धारण करती हैं कि जिनसे कमर और पैर कसे हुए रहें। चीनी स्त्रियोंके पैर इतने छोटे कर दिये जाते हैं, कि हमारे बच्चोंके पैर भी उनसे कहीं बड़े होते हैं। भारतवर्षमें भी हमारी बहिनें ऐसे वस्त्र और आभूषण पहिनती हैं कि जो उनकी तन्दुरुस्तीको नष्ट करते रहते हैं। पैरोंमें ऐसे मोटे मोटे कड़े पहिनती हैं जिनसे टखनेके पास पाँव बिलकुल पतला रह जाता है और ऊपर नीचे मोटा हो जाता है। हाथोंमें जो चूड़ियाँ पहिनती हैं, उनकी स्वच्छता न रहनेसे अधिकांश स्त्रियोंकी चूड़ियोंमें बदबू आती रहती है। शोभाके लिये नाकमें छेद किया जाता है और बहुतेरी औरतोंके कान बालियाँ पहिननेके लिये चलनी बना दिये जाते हैं। राजपूताना, मालवा, तथा पञ्जाबकी स्त्रियाँ सिरमें आभूषण पहिनती हैं, जिनके लिये उन्हें अपने सिरको बाँध जूड़कर रखना होता है। इसलिये कितने ही दिनोंतक सिर नहीं धोया जाता और उसमेंसे सड़ाँध आने लगती है। सारांश यह

कि हमें वस्त्राभूषण धारण करते समय अपने आरोग्यका कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

वस्त्र पहिननेकी मनुष्यको आवश्यकता है या नहीं—यह बात सबसे पहिले विचार करने योग्य है। प्राकृतिक नियमोंको देखते हुए, यदि वस्त्र पहिननेकी आवश्यकता है तो केवल इतनी ही है कि स्त्री पुरुष अपने गुह्य भागको ढाँक लें। बाकी सारा शरीर हवामें खुला रहना चाहिये। जो खुले बदन रहते हैं, उनका चमड़ा सहनशील और मजबूत बन जाता है। हमारे शरीर पैदा होनेके समयसे ही वस्त्रोंमें लपेट दिये जाते हैं। इस-लिये हम वस्त्रोंके इतने गुलाम हो गये हैं कि हम अपने शरीरको नंगे रखना आज असभ्यता समझते हैं। जो लोग सदा उघाड़े शरीर रहते हैं उन्हें ग्रीष्म, वर्षा, शीत आदि कोई ऋतु हानि नहीं पहुँचा सकती। हम अपने "वायु" प्रकरणमें पीछे लिख आये हैं, कि नाकके अतिरिक्त हमारे शरीरमें रोम-कूपोंके द्वारा भी हवा जाती आती है। ईश्वरने त्वचामें इन छिद्रोंको इसीलिये बनाया है, कि मनुष्य इनके द्वारा भी शरीरमें हवा पहुँचने दे। कितने आश्चर्यकी बात है, कि हमलोग कपड़े पहिनकर त्वचाके इस कार्यमें बाधा उपस्थित करके अपने स्वास्थ्यको बरबाद कर रहे हैं। जो लोग मेहनती हैं, उन्हें वस्त्र पहिननेकी कोई जरूरत नहीं है—उन्हें शीत और घाम कष्ट नहीं पहुँचा सकते। आलसी मनुष्योंको अपने शरीर ढँकनेकी आवश्यकता होती है। सारांश यह कि हमारे वस्त्रोंने हमें

आलसी बना दिया था यों कहिये कि हम आलसी होकर वस्त्र धारण करने लगे। अब भी आप देखेंगे, कि जो लोग मेहनती हैं वे अधिक वस्त्र नहीं पहिनते और जो आलसी हैं, वे ही अधिक कपड़े पहिनते हैं।

कोई यह कहे कि बिना वस्त्रके शीत, ग्रीष्म आदि ऋतुएँ नहीं निकल सकतीं। यह कपड़े पहिननेके लिये एक बहाना है। आप बहुतसे लोगोंको और अधिकतर साधु सन्तोंको देखेंगे कि वे हरेक ऋतुमें उघाड़े शरीर रहते हैं। उनके शरीर भी हम वस्त्र धारियोंसे पुष्ट, दृढ़ और स्वस्थ्य देखते हैं। जो लोग बिलकुल उघाड़े शरीर नहीं रह सकते, उन्हें चाहिये कि ऋतुओंकी परवाह न करते हुए अपने शरीरको किसी एक वस्त्र से ढकें। अभ्यास हो जाने पर अच्छा आनन्द मिलता है। शरीर पर जिस वस्त्रको आप धारण करें, वह ढीला होना चाहिये ताकि हवा रोम-छिद्रों द्वारा भी शरीरमें अच्छी तरह प्रवेश कर सके। इस पुस्तकके लेखकको भी आजसे कुछ वर्ष पूर्व बहुत वस्त्र पहिननेकी आदत थी। उस समय अनुभव किया गया, कि इतने वस्त्र पहिननेसे सिवा हानिके लाभ बिलकुल नहीं है। अब वह एक कुरतेमें और एक धोतीमें बिना किसी कष्टके सब ऋतुओंमें रहनेका अभ्यासी हो गया है। खूब कड़ाकेके शीतमें, जेठ वैशाखकी धूपमें और बरसते पानीमें नंगे सिर और नंगे पाँवों सिर्फ दो वस्त्रोंमें वह बहुत समय तक रहकर भी कोई कष्टका अनुभव नहीं करता। अभ्यास बड़ी

वस्तु है। जो लोग अधिक वस्त्र पहिन कर सुखी बने हुए हैं, वास्तवमें वे दुखी हैं, तभी इतने वस्त्र ओढ़ पहिनकर अपने जीर्णशीर्ण स्वास्थ्यकी रक्षा करनेमें लगे रहते हैं। ऐसे लोग वर्षा, ग्रीष्म और शीतसे बड़े ही भयभीत रहते हैं। यह उनकी निर्बलताका सूचक है। यदि सबल और स्वस्थ रहनेकी इच्छा हो तो अधिक वस्त्र पहिननेकी आदतको धीरे धीरे छोड़ दीजिये। संक्षिप्तमें हमारे इस लिखनेका यह सारांश है, कि गुह्य स्थानोंको छुपाकर नग्न रहना सबसे उत्तम दशा है। इस दशाको ही हमलोग ऋषि-जीवन, पवित्र-जीवन मानते हैं। मध्यम दशा उन लोगोंकी है जो बहुत कम वस्त्र धारण करते हैं। और ऐसे लोग जो बहुत कपड़े पहिनते हैं, स्वास्थ्य संसारमें उनका दर्जा तीसरा है। जिन्हें उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवनकी इच्छा हो, उन्हें पोशाक बहुत सोच समझकर ही पहिननी चाहिये। घरमें अधिकांश उघाड़े बदन रहकर, और बाहिर जाते समय वस्त्र धारण करनेवाले व्यक्ति भी उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। अगर उघाड़े बदन घरके बाहिर जाना असभ्यता है तो घरमें अधिकतर उघाड़े शरीर रहना चाहिये। इससे भी शरीर बहुत कुछ स्वस्थ्य रहता है।

वास्तवमें देखा जावे तो प्रकृतिने हमें चर्मरूपमें उत्तम पोशाक प्रदान की है। यह बात हँसी उड़ानेकी नहीं है बल्कि बहुत ही विचारने की है। हमारे घरू कुत्तोंके शरीरपर बाल कम होते हैं और जङ्गली कुत्तोंके बाल बहुत बड़े होते हैं।

न्योलेके शरीरपर बड़े बड़े बाल हैं तो बिल्लीके शरीरपर छोटे छोटे रोम हैं। शेरके शरीरपर छोटे छोटे पश्म होते हैं तो रीछके बदन पर चार चार छः छः अंगुल लम्बे बाल पाये जाते हैं। बकरीको देखिये, उसके शरीरपर छोटे छोटे बाल हैं, परन्तु भेड़ीके लम्बे लम्बे बाल हैं। इसका क्या कारण है? क्या आपने कभी इस विषयपर बुद्धि दौड़ाई है? इस प्रकारकी रचना व्यर्थ नहीं है, प्रकृतिके कार्योंमें पोल और अन्धेर नहीं है। जब कि अन्य प्राणी बिना कपड़े लत्ते पहिने ही अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत करते हैं, तब मनुष्यका वस्त्रोंमें अपने शरीरको छुपाना मानों ईश्वरकी रचनामें दोष बताना है। ज्यों ज्यों हम लोगोंके पास रुपया पैसा बढ़ता जाता है त्यों त्यों हम अपनेको कपड़े लत्तोंसे तथा जेवरोंसे सजाते जाते हैं। खूबसूरतसे खूबसूरत वस्त्र-भूषण पहिनकर—अपनेको रूपवान बनाकर, अपने रूप लावण्यका बड़ा ही गर्व करते हैं। वास्तवमें देखा जावे तो जो कुछ रूप लावण्य नग्नावस्थामें है, वह सजावटमें नहीं है। जो प्रकृतिके नियमोंको लाँघकर, वस्त्र-भूषण, मांगपट्टी, तिलक टोपीसे अपने शरीरको खूबसूरत बनाते हैं, वे अपने रूपको बदरूप बनाते हैं। इस बातको साधारण आदमियोंकी अपेक्षा कवि, चित्रकार कुछ शीघ्र ही समझ सकेंगे। जितने भी सजधजके प्रेमी आप देखेंगे उन्हें अत्यन्त निर्बल पावेंगे। ऐसे लोग अपने जीवनको भार समझकर जैसे तैसे व्यतीत करते रहते हैं। जो मनुष्य उघाड़े शरीर रहता है वसे

अपने शरीरके सौन्दर्य वर्द्धनार्थ ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य रक्षाका ध्यान रखना पड़ेगा। जो लोग वस्त्राभूषणोंकी भड़क दिखानेमें रहते हैं, उन्हें अपने शरीरकी उतनी अधिक चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि वह कपड़े लत्तोंके भीतर छुपा रहता है। मुहँको, तेल फुलेल लगाकर—मांगपट्टो काढ़कर, तिलक छापे लगाकर खूबसूरत वनाये रहते हैं, लेकिन प्राकृतिक सौन्दर्यका उनके मुखपर नामोनिशाँ भी नहीं होता! यहाँ यह वात न भूलिये कि—

"नाराणाम् भूषणं रूपम् रूपाणाम् भूषणं गुणं।"

जो वात हम पोशाकके विषयमें लिख आये हैं। वही वात जेवरोंके विषयमें भी है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक आभूषण पहिनती हैं। धनाढ्य लोग यदि सोने चाँदीके जेवर पहिनते हैं, तो गरीव लोगोंकी स्त्रियाँ पीतल और काँसेके ही पहिनती हैं। पुरुष अधिकांश हाथोंमें कड़े, पैरोंमें लङ्गर, कानोंमें मुरकी, झेले, गलेमें डोरे कण्ठी और हाथोंमें अँगूठियाँ पहिनते हैं। ये सव अपवित्रताके घर हैं। औरतें जेवर क्या पहिनती हैं, वे अपने शरीरपर मैल वढ़ाती हैं। कितने खेदकी वात है, कि उन्होंने इस गन्दगीको ही अपना शृङ्गार मान लिया है!!! प्रायः देखा गया है कि कान पक गये हैं लेकिन स्त्रियोंने वालियाँ नहीं निकालीं। हाथमें फोड़े फुन्सी हो गई हैं, बुरी तरह सड़ रहे हैं, लेकिन चूड़ियाँ नहीं निकल सकतीं! अँगुली पककर कीड़े भले ही पड़ जावें परन्तु क्या मजाल जो अँगूठी

निकाली जावे। ऐसे लोग भी आज भारतमें बहुत मिलेंगे। सबसे पहिला और अच्छा काम है तो, वह यह है कि आवश्यकतासे अधिक वस्त्र और जेवरोंका पहिनना छोड़ दिया जावे। आरोग्यताका यही मुख्य मन्त्र है।

आजकल तो पोशाकके विषयमें कुछ कह देना ही असम्भव नहीं तो अशक्य है। लोगोंकी एक पोशाक नहीं है। भारतमें कई पोशाक पहिनी जाती हैं क्योंकि सारे देशका जलवायु समान नहीं है। अपनी अपनी आवश्यकताके अनुसार लोगोंने अपनी अपनी पोशाकें तैयार की थीं। परन्तु पश्चिमीय लहरने लोगोंको दूसरी ओर ही बहा दिया। अपना रोब जमानेके लिये तथा मान प्राप्तिके लिये लोग कमीज वेस्टकोट, कोट, पेंट, और हैट तक पहिनते हैं। इन कपड़े लत्तोंके पहिननेवालोंके लिये ही जेण्टलमेन (Gentleman) शब्द काममें लाया जाता है। हमें यहाँ इस विषयपर अधिक लिखनेका अधिकार नहीं है, अतएव सिर्फ इतना ही लिख देना समझदारोंके लिये काफी होगा कि योरोप जैसे ठण्डे देशकी पोशाक भारत जैसे उष्णदेश तथा धार्मिक देशके लिये कदापि लाभप्रद नहीं हो सकती। पतलूनको ही हम यहाँ उदाहरणार्थ लेते हैं। सबसे पहिली दिक्कत तो यह है, कि उसे पहिन कर जमीन पर बैठ जाना बड़ा ही मुश्किल है। दूसरे पेशाब करनेमें बड़ी ही कठिनाई होती है। योरोपियन लोग तो हाथमें एक बरतन लेकर उसमें खड़े खड़े मूत लेते हैं परन्तु भारतका कोई भी हिन्दू या मुसलमान

इस कार्यको अच्छा नहीं कहेगा। खड़े होकर पेशाब करनेसे छींटे उड़ते हैं, जो हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी दृष्टिमें अपवित्रता हैं। भारतवर्षकी प्रत्येक जातिका पहनावा अलग अलग था किन्तु इस योरोपके पहिनावेने तो गजब ढा दिया है। ब्राह्मण, क्षत्री आदि वर्ण और हिन्दू, मुसलमान आदि सभी जातियोंने इसे थोड़े बहुत रूपमें अपनाया है। कमीजपर वास्कट, अङ्गरखी पर कोट, कमीज और कोट पर पगड़ी, पतलून पर देशी जूते; धोतीपर अंग्रेजी टोप पहिने भी बहुतसे मूर्ख लोग हमारी दृष्टिमें आये हैं। यह न जाने कहाँका फैशन है? इन सब परिस्थितियों पर विचार करते हुए यही तात्पर्य निकलता है कि भारत वर्षके लिये किसी एक प्रकारकी पोशाकको निश्चित कर देना बिलकुल असम्भव है!

हमलोग अधिकांश अपने सिरको ढके रहते हैं। देशमें मूर्खता इतनी बढ़ गई हैं, कि नङ्गे सिर रहना अशकुन गिना जाता है। सिरपर जो चीज रहती है उसे ही "इज्जत" कहते हैं। जिसके सिरपर कुछ नहीं होता, वह बेइज्जत गिना जाता है। यह कितनी अज्ञानता है! मानसिक निर्बलताके कारण यदि हमेशा नंगे सिर रहना आपकी शक्तिके बाहिर हैं तो, जहाँ भी मौका मिले वहाँ सिर उघाड़ा ही रखिये, इसीमें फायदा है। यदि बचपनसे सिरपर बड़े बाल रखनेका अभ्यास हो तो फिर सिरके बाल नहीं कटाने चाहियें। सिरपर बाल रखनेवाले यद्यपि आजकलकी पुरुष-सभ्यतामें जङ्गली गिने जावेंगे तथापि बाल रखना

बड़ा ही उत्तम है। आजकलकी यह नवीन सभ्यता सच्ची सभ्यता नहीं है। यहाँ यह वेदमन्त्र विचार करने योग्य है।

"दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीय सस्कृधि।"

अथर्व ६। १३६। २

(प्रत्नान्) पुराने बालोंको (दृंह) दृढ़कर (अजातान्) बिना हुओंको (जनय) पैदाकर और (जातान) जो हैं उन्हें (वर्षीयसः) बहुत लम्बे (कृधि) कर। इसके बाद यह मन्त्र देखिये—

"अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः।

केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि॥"

अथर्व ६। १३७। २

(केशाः) बाल (अभीशुना) अँगुलीसे नापनेयोग्य और फिर (व्यामेन) दोनों भुजदण्डसे (अनुमेया) नापने योग्य (आसन्) हो गये हैं। वे (असिताः) काले रहकर (ते) तेरे (शीर्ष्णः) सिरसे (नडाइव) नरकट घासकी भाँति (परिवर्धन्ताम्) अच्छी तरह बढ़ें।

वेदमें बालोंका बढ़ाना उत्तम माना है। साथ ही वेदमें हजामत बनानेकी आज्ञा भी है। देखिये—

"यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा, वप्ता वपसिकेशश्मश्रुः!

शुभं मुखं मान आयुः प्रमोषीः॥" अथर्व ८। २। १७

(यत् सुतेजसा मर्चयता क्षुरेण) जब तेज और उत्तम तथा खर्र खर्र शब्द करनेवाले उस्तरेसे (वप्ताकेशश्मश्रु वपसि) तू नाई बालोंको काटता है तब हमारा (शुभं मुखं) खूब सूरत

मुख बनता है। परन्तु हजामतके साथ (नः आयुः मा प्रमोषीः) हमारी आयुका नाश मत करो।"

वेदमें दोनों बातोंकी आज्ञा हैं परन्तु वाल मुँडानेसे आयुका घटना माना है। और वाल रखनेमें किसी तरहका झगड़ा नहीं है। मूर्ख नाइयों द्वारा हजामत बनवाने वाले दाद, खाज, फोड़े फुन्सी, गंज आदि रोगोंमें फँस जाते हैं, यह एक मानी हुई बात है। हम इस विषयमें अपना अधिक अनुभव नहीं रखते। हाँ, इतना कह सकते हैं कि हमारे ऋषि मुनि जटाधारी होते थे और वे दीर्घायु क्या परमायु पाते थे! यदि बाल न कटाये जावें तो अच्छी बात है बशर्ते कि बाल रखनेसे शरीरको कोई हानि न हो। बहुतसे लोगोंको जिन्हें लम्बे बाल रखनेकी आदत नहीं होती, उन्हें बाल रखनेपर सिर दर्द, नकसीर, दृष्टि-मांद्य आदि रोग हो जाते हैं। इसलिये लोगोंको अपनी शारीरिक प्रकृतिके अनुसार ही इस बातका निश्चय कर लेना चाहिये। बाल बढ़ाकर उन्हें कटवा कर ठीक बनवाते रहना और उनमें पट्टियाँ पाड़ना जङ्गलीपनही मालूम होता है। बढ़ाये हुए बालोंमें धूल, मैल और जूँ लीख आदि जीव नहीं होने पावें इस बातका अधिक विचार रखना चाहिये। पगड़ी बाँधनेवाला व्यक्ति अंग्रेजोंकी तरह बाल बढ़ावे और माँगपट्टी पाड़े यह मूर्खता का चिह्न है!

पैरोंमें जूते पहिनने चाहियें या नहीं यह बात भी विचारणीय है। बूट वगैरः पहिननेवालोंके पैर कोमल हो जाते हैं।

उनमेंसे पसीना निकलता है और दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। बूट और मोजे पहिननेवालोंको यह वास उतनी कष्टप्रद नहीं होती जितनी कि एक शुद्ध वायुमें रहने वालेको सिर दर्द पैदा कर देती हैं! इस तरहके जूते पहिनना अपने हाथों अपने स्वास्थ्यको नष्ट करना है। जहाँतक हो सके पावोंको सदा नंगे रखना ही उत्तम है। यदि काँटों, भाटोंमें तथा ग्रीष्मकालकी तपती हुई पृथ्वी पर चलनेका काम पड़े तो पादुका—खड़ाऊँ तथा पगरखियोंका उपयोग अवश्य अवश्य, केवल पाँवके तलवोंकी रक्षाके लिये प्रबन्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकारकी जूतियाँ बाजारसे तलाश करके काममें लाना चाहिये। पैरोंमें पसीना आना स्वास्थ्यके लिये बहुत ही बुरा है। जिन्हें सिर दर्द रहता हो, या निर्बलता अधिक हो, उन्हें कुछ दिनतक नंगे पावों चलकर अनुभव कर लेना चाहिये। लकड़ीकी खड़ाऊं बहुत अच्छी वस्तु है। बूट, लाँग बूट आदि पहिनना भारत-वर्षके लिये आर्थिक और शारीरिक हानि पहुंचाना है। हाथोंमें दस्ताने, पैरोंकी जुर्रावें भारतवासियोंके कामकी वस्तु नहीं हैं। इन्हें त्यागना ही उत्तम है। जिन्हें दीर्घायु तथा उत्तम स्वास्थ्यकी आवश्यकता है, उन्हें हमारे इस लिखनेपर अच्छी तरह विचार करनेके पश्चात् अपने वस्त्राभूषणोंमें यथावश्यक सुधार शीघ्र ही करना चाहिये।*

---

*वस्त्र विषयक अधिक बातें जाननेकी इच्छा हो तो मेरी लिखी हुई "खादीका इतिहास" नाम्नी पुस्तक पढ़िये। लेखक—

किसी दूसरेके पहिने हुए वस्त्र और जूते नहीं पहिनने चाहियें। गौतम स्मृतिमें लिखा है कि—

"अन्य धृतं वासोन विभृयात्।" दूसरेका पहिना हुआ वस्त्र नहीं पहिनना चाहिये। मनुजी कहते हैं—

"उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्नधारयेत्।
उपवीत कलङ्कार स्रजं करक मेवच॥" ६६ श्लो० ४ अ

दूसरोंके पहिने हुए जूते और वस्त्र नहीं पहिनने चाहिये। यही बात भीष्मजीने महाभारतमें अपनी दीर्घायु पानेके अन्य कारणोंके साथ गिनाई है। मैले वस्त्र कदापि नहीं पहिनने चाहियें। पोशाक भले ही फटी हुई हो, लेकिन स्वच्छ और पवित्र होनी चाहिये। मैले कपड़े पहिनने वालेको चर्मरोग हो जाते हैं। वहुतसे लोग ऊपरका वस्त्र अत्यन्त साफ सुथरा पहिनते है और शरीरको स्पर्श करनेवाला अत्यन्त गन्दा रखते हैं। यह स्वास्थ्यके लिये वड़ी वुरी वात है। कपड़ा भलेही मैला न हो, परन्तु शरीरसे जो दूषित वायु निकलता हैं उससे वह २।३ दिनमें खराव हो जाता है। अतएव दूसरे तीसरे दिन उस वस्त्रको जो शरीरको स्पर्श करनेवाला है, अवश्य धो डालना चाहिये। जो वहुत वस्त्र रख सकते हैं वे लोग धोवीसे धुलालें और जिनके वस्त्र कम हों उन्हें अपने हाथों धो डालना चाहिये। थोड़ासा आलस्य त्यागनेसे यह काम अच्छी तरह हो सकता है। वस्त्रोंको खौलते हुए पानीमें डाल देना और भी अच्छा है। आशा है, पाठक इस वातका हमेशा ध्यान रखेंगे।

आरोग्यताकी परिभाषा सर्वसाधारणकी समझमें एक नये ढंगकी हो है। लोगोंने अच्छी तरह खाने पीने और चलने फिरनेको ही आरोग्यता समझ ली है। लेकिन आरोग्यता इन शब्दोंमें सीमाबद्ध नहीं हो चुकी है। यह तो कुछ और ही वस्तु है। बहुतसे लोग आप ऐसे पावेंगे जो रोगसे पीड़ित हैं, किन्तु उन्हें हम स्वस्थ समझ रहे हैं। कुछ लोग रोगकी परवाह नहीं करते और रोगी दशामें ही अपनी जिन्दगी व्यतीत करते रहते हैं। कुछ लोग रोगी होनेपर भी अपने रोगको लोगोंपर प्रकट नहीं होने देते! यदि यह कह दिया जावे तो अनुचित न होगा कि इस लोकमें शायद ही कोई मनुष्य तन्दुरुस्त हो!

रोग शब्दका अर्थ :—दोष, बीमारी, ऐब, इल्लत, उपद्रव, धातु अथवा दोषोंके वैषम्यमें उत्पन्न व्याधि इत्यादि हैं। रोग दो प्रकारके होते हैं—शारीरिक और मानसिक। एक अंग्रेज कहता है कि—"निरोग वही कहा जा सकता है, जिसके शुद्ध शरीरमें शुद्ध मन हो।" यह बिलकुल सत्य है। शरीर और मनका घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि यह शरीर पुष्प है तो सुगन्ध

आत्मा हैं। शरीर तो स्थूल पदार्थ हैं, इसके भले बुरे होनेसे मनुष्यका भला या बुरा होना नहीं पाया जा सकता; अत्यन्त बदसूरत भी बड़े बड़े महापुरुष पाये जाते हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्यका चरित्र ही उसके भले बुरेकी पहिचान है। मान-लीजिये कि शरीर बिलकुल स्वस्थ है और उसका मन दुर्व्यसनोंमें संलग्न है, तो क्या हम ऐसे मनुष्यको नीरोग मान सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। और यदि मन पवित्र है परन्तु शरीर व्याधि मन्दिर है, तो वह भी स्वस्थ नहीं है। जो लोग चरित्र-वान होते हैं, और शरीरसे भी नीरोग होते हैं, वे ही वास्तवमें नीरोगी कहे जा सकते हैं। टेसूका फूल बड़ा ही मनमोहक तथा नयनाभिराम होता है, किन्तु उसे कोई भी पसन्द नहीं करता। इसी तरह जो मनुष्य शरीरसे सुन्दर हो किन्तु दुश्चरित्र हो तो उससे कोई भी प्रेम नहीं करता।

यह एक बात बिलकुल मानी हुई है, कि जिसका मन स्वस्थ है, उसीका शरीर भी स्वस्थ है और जिसका शरीर स्वस्थ हैं उसीका मन भी स्वस्थ है। दोनोंका रात और दिनकी तरह घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। परन्तु इन दोनोंमें शरीरकी अपेक्षा मनका महत्व बहुत है अतएव सबसे प्रथम आरोग्य मनकी जरूरत हैं। यदि शरीर अस्वस्थ भी रहा तो स्वस्थ और बलवान मन बिना किसी औषधके उसे नीरोग कर सकता है। सारांश यह कि जिसे स्वस्थ रह कर दीर्घायु पानेकी इच्छा हो, उसे सबसे पहिले अपने मनको स्वस्थ—दोष रहित बना लेना चाहिये।

मनकी शक्ति कोई साधारण शक्ति नहीं है! यह बात मत भूलिये कि—

मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयोः।" मै० उ०६।३४

किसी कविने ठीक ही कहा है कि, बिगड़े हुए मनकी आज्ञामें कभी नहीं रहना चाहिये क्योंकि—

मन लोभी, मन लालची, मन चञ्चल, मन चोर।
मनके कहे न चालिये, पलक पलक मन और।"

जिसका मन, लोभी, लालची, चञ्चल और चोर हो, उसे अपने ऐसे अस्वस्थ मनके कहनेमें नहीं चलना चाहिये। येही मनकी बीमारियाँ है। एक मनुष्य चोर है—क्या ऐसा मनुष्य नीरोग कहा जा सकता है। क्रोधी मनुष्यको कोई भी स्वस्थ नहीं कहेगा; क्योंकि उसके मनको क्रोध रूपी भयङ्कर रोग लगा हुआ है। ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व, मात्सर्य, आलस्य, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, जुआ, कुसङ्ग, परनिन्दा, मूर्खता, वैर, भय, चिन्ता, आदि बहुत सी बीमारियाँ मनकी हैं। जिसका शरीर बिलकुल स्वस्थ हो और मन ऊपर लिखे हुए मानसिक रोगोंसे अथवा किसी अन्य रोगसे बीमार हो तो वह मनुष्य स्वस्थ है, ऐसा कदापि नहीं माना जा सकता।

स्वस्थ मनुष्य वही हैं, जिसका शरीर न तो भङ्ग है और न जिसके अधिक शरीरमें अधिक अङ्ग हैं। आँख कान दुरुस्त हैं, नाकसे अधिक श्लेष्मा, रातदिन न बहता हो, शरीरसे निर्गन्ध पसीना निकलता हो, दाँत साफ हों, मुखमेंसे बदबू न

आती हो, पैर गन्दे नहीं हों, हाथ पाँव आदि सबल हों, विषया सक्त न हो, इन्द्रियाँ अधीन हों, चोरी, व्यभिचार, क्रोध आदि न हो। इस प्रकारका स्वास्थ्य ही दीर्घायुका देनेवाला है।

औषधियाँ खा पीकर स्वास्थ्य सुधारने वाले लोग भूल करते हैं। औषधियोंसे शरीर आरोग्यता प्राप्त कर सकता है ऐसा मानना ही भ्रम है। देखिये डाक्टर लोग क्या कहते हैं!

डाक्टर मेजेन्डी—"वैद्यक कोरा ढोंग है।"

डाक्टर बेकर—"रोगसे जितने रोगी मरते हैं, उससे अधिक रोगी उसकी दवासे मरते देखे जाते हैं।"

डाक्टर टामस वाटसन—"बहुतसे ऐसे प्रश्न हैं, कि जिनका उत्तर हमारा डाक्टरी सिद्धान्त नहीं दे सकता।"

डाक्टर मेसनगुड—"प्लेग, हैजा, महामारी, शीतला आदि रोगोंसे जितने लोग नहीं मरते, उतने इन रोगोंकी दवाओंसे मरते देखे गये हैं।"

डाक्टर फ्रेंक—"हमारे इन औषधालयोंसे सहस्रों मनुष्योंकी मृत्यु होती रहती है।"

डाक्टर एस्टली—"वैद्यक शास्त्र केवल अटकल पच्चू ही चल रहा है।"

इत्यादि! बहुतेरे डाक्टरोंका कहना है कि औषधसे रोग हटाया नहीं जाता बल्कि दबाया जाता है। जो लोग दवाओंके प्रेमी हैं, उन्हें दवादारूसे सर्वथा बचनेका ध्यान रखना चाहिये। यह देखा गया है, कि एक बार जिसके घरमें दवाको उदरमें

धारण करके श्रीशीतल देवीने पदार्पण किया कि फिर उस घरसे वह बाहर नहीं निकलतीं !

आप लोग यह अच्छी तरह जानते है कि "नीम हकीम खतरे जान।" इतना जान बूझकर भी हकीमों, वैद्यों और डाक्टरोंके घर हम लोग ढूंढ़ते फिरते हैं, यह कैसी मूर्खता है ? आज हमारी दृष्टिमें सभी "नीम हकीम" हैं। क्या आप किसी डाक्टर, वैद्य, या हकीमपर पूर्ण विश्वास रखकर कह सकते हैं कि "यह पूरा वैद्य है।" मेरा तो ऐसा अनुमान है कि भले ही आप दवा खा रहे हैं लेकिन आपको भी उस दवापर पूरा विश्वास नहीं होता। आज संसारमें पूर्ण वैद्य तो कोई नहीं दिखाई देता। तभी तो कहा है कि—

"भेषजं जाह्नवी तोयम् वैद्यो नारायणो हरिः।"

यह बड़ा ही उत्तम उपदेश है। लोगोंको वैद्योंसे उतना ही भय मानना चाहिये जितना कि शेर, चीते, भेड़िये आदि हिंसक जन्तुओंसे। आज हमारे देशमें ऐसे पाखण्डी वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंकी कमी नहीं है, जिन्हें शारीरिक ज्ञान बिलकुल नहीं है और झूंठ मूँठ लोगोंकी नाड़ी देखकर उन्हें मनमानी दवा दे डालते हैं, जिससे बेचारा रोगी मृत्युके मुखमें पहुंच जाता है। आज जितने भी वैद्य हैं सब ९९ प्रतिशत धन कमानेके लिये वैद्य बने हुए हैं। रोगी भारत हतबुद्धि सा हो कर मूर्ख वैद्योंकी तरफ मृग तृष्णाकी भाँति दौड़ कर दिन दिन रोगी होता जा रहा है। विज्ञापनबाजोंके तूफानमें देश तबाह

हो रहा है। एक एक पैसेकी चीजके लोग दस दस रुपये ले रहे हैं !! तात्पर्य यह कि हमारे भाइयोंको अब इन वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंके जालसे बचना चाहिये और प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा तथा हमारे बताये हुए नियमों द्वारा सदैव आरोग्य रहकर पूर्णायु प्राप्त करना चाहिये। दवाओंसे डरते रहिये, इन्हें अपना जानी दुश्मन समझ कर त्याग दीजिये। जल चिकित्सा, उपवास चिकित्सा, और मिट्टी आदिके उपचारोंसे रोगोंको हटाइये। इन चिकित्साओंकी अलग अलग पुस्तकें आप बाजारसे मोल ले सकते हैं, इसलिये यहाँ हम इन चिकित्साओं पर कुछ नहीं लिखते। यदि थोड़ा बहुत लिखें तो पुस्तकके बहुत बढ़ जानेका भय है अतएव अब हम इतना लिखकर ही अपनी पुस्तकको समाप्त करते हैं कि इस पुस्तकके अनुसार नियम पूर्वक चलनेसे आपको डाक्टरों, हकीमों, और वैद्योंके घर नहीं जाना पड़ेगा तथा जीवन भर स्वस्थ और निरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त कर सकेंगे।

(१) सूर्योदयके चार घड़ी पहिले उठ खड़े होना चाहिये।

(२) उठते ही बिछौनेमें बैठकर ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें शुभमार्ग पर चलनेकी सद्बुद्धि दे।

(३) शौचके लिये जङ्गलमें गाँवसे बहुत दूर जाइये।

(४) जिधरकी हवा हो, उस ओर मुख करके पाखाना बैठना चाहिये।

(५) चौबीस घण्टे अर्थात् १ दिनमें २ बार से अधिक शौच नहीं जाना चाहिये। क्योंकि दो बार से अधिक रोगकी निशानी है।

(६) पाखाना जाते वक्त सिरको रूमालसे या किसी अन्य वस्त्रसे बाँध लेना चाहिये।

(७) पाखानेमें जोर लगाकर मल त्यागना अच्छा नहीं है।

(८) पाखाना जाते समय मुहँ बन्द रखना चाहिये।

(९) अपवित्र हाथोंको तथा मलमूत्रके द्वारोंको, मलत्या-गनेके बाद खूब मिट्टी लगाकर धोना चाहिये।

(१०) पाखानेसे आकर भोजन नहीं करना चाहिये। पाखानेमें और भोजनमें आध घण्टेका अन्तर अवश्य होना चाहिये।

(११) पेशाब करनेके बाद मूत्रेन्द्रियको जलसे धोकर शुद्ध करना चाहिये ।

(१२) व्यायामके बादमें पेशाब कर देना चाहिये ।

(१३) पेशाबके बाद जल नहीं पीना चाहिये, बल्कि जल पीना हो तो पहिले जल पीलेना चाहिये ।

(१४) रात्रिको सोनेके पहिले जल पीकर तथा पेशाब करके सोना चाहिये ।

(१५) प्रातःकाल शय्या त्यागते ही आधसेरके करीब जल पीलेना चाहिये ।

(१६) सूर्योदयके पूर्व, अथवा सायंकालके ठण्डे समयमें दूर तक वायु सेवनके लिये जाना चाहिये ।

(१७) वृक्ष शाखाकी दतूनसे अच्छी तरह दांत साफ करने चाहियें ।

(१८) दाँत, जीभ, तालू, और दाँतोंकी जड़को हमेशा शुद्ध रखना चाहिये ।

(१९) कसरत नित्य बिला नागा करनी चाहिये ।

(२०) आसनोंका अभ्यास भी नित्य करना चाहिये ।

(२१) योगाभ्यास नित्य करना चाहिये ।

(२२) शुद्ध वायुमें नियम पूर्वक नित्य प्राणायाम करना चाहिये ।

(२३) इन्द्रियोंको वशमें करना चाहिये ।

(२४) अपनी आत्मापर प्रभुत्व स्थापित करो ।

(२५) शुद्ध जलमें अच्छी तरह रगड़ मसलकर स्नान करो।

(२६) सिरपर गर्म जल मत डालो।

(२७) सिरमें मैल मत जमने दो। रीठे, आँवले, नीबू तथा काली, मुलतानी या अन्य किसी प्रकारकी क्षार रहित मिट्टीसे धो डालना चाहिये।

(२८) शरीरपर या सिरपर साबुन मत लगाओ। महीनोंमें यदि साबुन लगानेकी इच्छा हो तो, लगानेके बाद विपुल जलमें अच्छी तरह धो डालो।

(२९) भोजन २४ घण्टोंमें सिर्फ २ वक्त ही करना चाहिये।

(३०) दिन भर कुछ न कुछ खाते रहनेका अभ्यास ठीक नहीं है।

(३१) अपनी खुराकको खूब चबा चबाकर ही खाइये।

(३२) अत्यन्त भूख लगनेपर ही, थोड़ी भूख रखकर भोजन करो।

(३३) हमेशा सादा भोजन करो।

(३४) मिर्च मसालेदार अत्यन्त चटपटा भोजन मत करो।

(३५) इतना ही खाइये कि पाचक, औषध अथवा जुलाब लेकर पेट साफ न करना पड़े।

(३६) हफ्तेमें एक बार निराहार उपवास अवश्य करना चाहिये।

(३७) उपवासके दिन, शर्बत, कलाकन्द, पेड़े, मिठाई,

फल आदि कुछ मत खाओ। आवश्यकता पड़ने पर उनमें ८। १० बूँदें नींबूके रसकी डालकर पीओ।

(३८) फल हमेशा अधिक खाइये।

(३९) शुद्ध छना हुआ जल पीना चाहिये।

(४०) वर्षा ऋतुमें तो अवश्य ही जलको उबाल कर पीना चाहिये।

(४१) चा, तम्बाकू आदिसे लगाकर शराब तक कोई भी नशा मत करो।

(४२) तङ्ग वस्त्र कदापि मत पहिनो।

(४३) मैले वस्त्रोंको बिना साफ किये काममें मत लाओ।

(४४) शरीरको छूनेवाले वस्त्रको नित्य नहीं तो दूसरे दिन अवश्य धो डालना चाहिये।

(४५) उतरे हुए—दूसरोंके पहिने हुए, कपड़े और जूते मत पहिनो।

(४६) रूमालसे नाक साफ कर उसे जेबमें मत रखे फिरो।

(४७) घरको झाड़ बुहार कर हमेशा शुद्ध रखो। मकड़ी छिपकली, खटमल, पिस्सू, मच्छर, मक्खी, साँप, बिच्छू, घुन, तलैचे, चूहे, मेंढक आदि प्राणियोंको घरमें नहीं आने देना चाहिये।

(४८) जहाँतक हो सके चूनेके बने मकानोंमें ही रहो। यदि निर्धनता इसमें बाधक हो तो मकानोंको चूनेसे पुताओ।

(४९) घरके आँगनमें तुलसी या अरण्ड (एरण्ड) के वृक्ष लगाने चाहियें।

(५०) घरमें पाखाने और पेशाब करनेकी जगह मत बनाओ। यदि हो तो, उन्हें पानीसे नित्य धोकर दुर्गन्ध रहित रखना चाहिये।

(५१) घरमें चूहे, मेंढक आदि प्राणियोंके रहनेसे कभी कभी उन्हें खानेके लिये साँप घरमें आ जाता है। अतएव चूहे मेंढक आदिको घरमेंसे भगा देना चाहिये।

(५२) सूर्यके शुद्ध प्रकाशमें रहनेका हमेशा ध्यान रखो।

(५३) शुद्ध वायुमें ही निवास करो।

(५४) घरके आसपास कीच, कूड़ा, कचरा, गोबर, घास फूस आदि मत रहने दो।

(५५) हमेशा नाकसे ही सर्पकी तरह दीर्घ श्वासोछ्वासकी क्रिया करो। मुखसे कदापि साँस मत लो।

(५६) खुली हवामें सोनेसे मत डरो।

(५७) मुहँ ढक कर कभी मत सोओ।

(५८) एक वस्त्रमें दो तीन मनुष्य घुसकर कभी मत सोओ।

(५९) तङ्ग जगहमें बहुतसे आदमी मत रहो।

(६०) स्त्री पुरुषोंके पहिनने ओढ़नेके वस्त्र अलग अलग रखो।

(६१) सिर सदैव नंगा रखना चाहिये। अत्यन्त आवश्यकता आ पड़नेपर ही ढकना चाहिये।

(६२) तङ्ग जूते मत पहिनो। बन सके तो नंगे पाँव रहो।

(६३) शरीरको हमेशा कपड़ोंमें छुपाये मत रहो। इसे धूप और हवा भी लगने दो।

(६४) जङ्गलकी शुद्ध हवामें बीस पचीस बार नित्य दीर्घ श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करो।

(६५) पहाड़ों पर तथा पहाड़ियोंपर नित्य वायु सेवनके लिये जाना चाहिये।

(६६) हफ्तेमें एक दिन बिलकुल छुट्टी रखो।

(६७) मिट्टी तथा अन्य किसी वनस्पति-विशेषके रङ्गमें रंगे हुए कपड़ोंके अतिरिक्त अन्य रंगीन वस्त्र मत पहिनो।

(६८) आवश्यकतासे अधिक, अनावश्यक वस्त्र कदापि मत पहिनो।

(६९) वर्षाऋतुको छोड़ कर शेष ऋतुओंमें छाता नहीं लगाना चाहिये।

(७०) बासी पदार्थोंको मत खाओ।

(७१) बासी पदार्थोंको फिरसे गर्म करके नहीं खाना चाहिये।

(७२) ब्रह्मचर्य कालमें अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन करो।

(७३) गृहस्थाश्रम पालन करते समय ऋतुगामी रहो।

(७४) पुरुष परस्त्री को मातृ-दृष्टिसे, तथा स्त्रियाँ पर-पुरुषको पिता एवं भाईकी दृष्टिसे देखें।

(७५) बाल-विवाह नहीं करना चाहिये।

(७६) जीवन भर वीर्य रक्षा करनी चाहिये।

(७७) कच्चा दूध मत पियो।

(७८) बलवान, निरोग और अच्छी खुराक खानेवाले पशुका ही शुद्ध दूध पिओ।

(७६) मिठाई, खटाईका अधिक सेवन मत करो।

(८०) हलवाइयोंके दोने मत चाटो।

(८१) सिर पर बोझा मत लादो।

(८२) कमर झुकाकर मत बैठो! पृष्ठवंशको सदैव सम रेखामें रखो।

(८३) चलते वक्त गर्दन, पीठ झुकाकर मत चलो। हमेशा सीधे रहकर चलनेका ध्यान रखो।

(८४) प्रत्येक ऋतुमें शीतल जलसे स्नान करना चाहिये।

(८५) मिट्टीके तेलसे धूआँ, पत्थरके कोयलेका धूआँ, चिताका धूआँ तथा अन्य ऐसे ही स्वास्थ्य नाशक धूआँसे अपनेको दूर रखो।

(८६) नित्य दो बार नहीं तो दिनमें एक बार प्रातः समय शीतल जलसे अवश्य नहाना चाहिये।

(८७) स्नानके पश्चात् किसी मोटे खुरदरे वस्त्रसे शरीरको खूब रगड़ कर पोंछ डालना चाहिये।

(८८) मक्खियोंको दूर भगाओ।

(८६) जिन पदार्थों पर मक्खियाँ बैठती हों, उन्हें मत खाओ।

(९०) मामूली रोगोंको हटानेके लिये दवा मत खाओ। बल्कि खान पान तथा प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही अपने रोगोंको हटाओ।

(९१) बाजारू हेअर ऑयल (Hair oil) बालोंमें मत लगाओ। क्योंकि हेअर ऑयल प्रायः सफेद तेल (White oil) पर तैयार किये जाते हैं।

(९२) दवा खाकर रोग हटानेका प्रयत्न मत करो, बल्कि बिना दवाके ही अन्य उपायोंसे उसे हटा दो।

(९३) सड़े बासे फल मत खाओ।

(९४) खटमल, पिस्सू, मच्छर, आदि रक्तमें विष उत्पन्न करनेवाले जीवोंको भगा दो।

(९५) मांस कदापि मत खाओ।

(९६) प्राकृतिक नियमोंका ध्यान रखो और उन्हें भङ्ग न करो।

(९७) चिन्तामें मत पड़ो।

(९८) दुष्कर्मोंसे अपनेको दूर रखो।

(९९) भयभीत मत रहो।

(१००) दुखोंको आनन्द पूर्वक हँसते हुए सहन करनेका अभ्यास करो।

(१०१) किसीकी जूठन मत खाओ।

(१०२) बाजारू पेय जैसे, सोडा, लेमोनेड, शर्बत, आइस्क्रीम आदि नहीं पीने चाहिये।

(१०३) भोजन और स्नानमें तीन घण्टेका अन्तर होना चाहिये।

(१०४) क्रोध नहीं करना चाहिये।

(१०५) दूसरेकी बढ़ती देखकर चित्तको कदापि दुखी मत करो।

(१०६) कसरतके आध घण्ट बाद ही कुछ खाना पीना चाहिये।

(१०७) दिनमें स्त्रीप्रसंग कभी न करो।

(१०८) रजस्वला स्त्रीसे मैथुन न करो।

(१०९) मैथुनोपरान्त पुरुषको पेशाब करना चाहिये।

(११०) दिनमें नहीं सोना चाहिये। ग्रीष्म ऋतुमें यदि थोड़ी देर सो लेवें तो कोई हानि नहीं।

(१११) अधिक न सोओ। रात भर न जागकर नित्य ठीक समय पर सो जाना चाहिये। यह याद रखो कि—"Early to bed and early to rise, makes the man healthy, wealthy and wise." अर्थात् जल्दी सोओ और जल्दी उठो।

(११२) नित्य कोई मनोरञ्जक खेल अवश्य खेलो।

(११३) हँसते रहो, लेकिन बहुत और बनावटी हास्य मत हँसो।

(११४) नित्य नहीं तो प्रति सप्ताह घरमें कोई सुगन्धित पदार्थ जलाकर हवा शुद्ध रखनी चाहिये।

(११५) पाखानेकी हाजत और पेशाबकी जरूरतको कभी मत रोको।

(११६) गर्म वस्तु खाकर या पीकर फौरन ही ठण्डा जल मत पियो।

(११७) कठोर शय्यापर ही शयन करो।

(११८) ठाले मत बैठो। यह याद रखो कि—"ठाले न बैठो, कुछ किया करो। काम न हो तो पाजामा उधेड़कर सिया करो।"

(११९) मनको अपने वशमें करो।

(१२०) हमेशा प्रसन्न रहो।

> "शुभ मस्तु सर्वजगतां, सर्वो भद्राणि पश्यतु।
> लोका समस्ताः सुखिनो भवन्तु!"